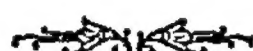
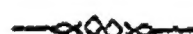
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजका ३१ वाँ ग्रन्थ ।

आयर्लैण्डका इतिहास ।



अँगरेजी 'मराठा' और मराठी 'केसरी' के सुप्रसिद्ध सम्पादक
श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकर बी ए. एल एल बी के
मराठी ग्रन्थका अनुवाद ।



अनुवादकर्त्ता,
श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा ।



प्रकाशक,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई ।

ज्येष्ठ १९७५ विक्रम ।



प्रथमावृत्ति] जून १९१८ । [मूल्य १॥।=)

कपड़ेकी जिल्दसहितका मूल्य सवा दो रुपये ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी, मालिक
हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगांव—बम्बई ।



मुद्रक—
चिंतामणि सखाराम देवळे,
बम्बईवैभव प्रेस, सँढहर्स्ट रोड,
बम्बई ।

निवेदन ।

आयर्लैण्डका इतिहास डेढ दो हजार वर्षका है, परन्तु भारतवासियोंके लिए अधिक शिक्षाप्रद उसका बारहवीं शताब्दीसे इधरका इतिहास ही है । क्यों कि उसी समय उस पर इंग्लैण्डका अधिकार हुआ था । लेकिन अठारहवीं शताब्दीसे पहलेका आयर्लैण्डका पूरा और ठीक इतिहास मिलता ही नहीं । पहले पहल अठारहवीं शताब्दीमें ही आयरिश लोगोंमें राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय हुआ था और तभीसे लेखकोंने उसका ठीक ठीक इतिहास लिखा है । इस पुस्तकमें वही संक्षिप्त राजकीय इतिहास, आयरिश लोगोंके स्वतन्त्रता-सम्बन्धी आन्दोलनोंका वर्णन और उनके सम्बन्धमें तात्त्विक विवेचन किया गया है और राजनीतिक दृष्टिसे आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानकी तुलना की गई है । आयरिश लोगोंका इतिहास कुछ विषयोंमें भारतवासियोंके लिए उपमान स्वरूप हो सकता है । इसी लिए सन् १९०९ में सुप्रसिद्ध देशभक्त और सुलेखक श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकरने अपने पत्र मराठी केसरीमें इस सम्बन्धमें पहले कुछ लेख चौदह अंकोंमें प्रकाशित किये थे और उसीमें कुछ परिवर्तन करके तथा लेखोंका क्रम सुभीतेके अनुसार बदल कर पीछे उन्हें पुस्तकाकार छपवाया था । प्रस्तुत पुस्तक उसीका अनुवाद है ।

देशभक्त केलकरका यह ग्रन्थ किसी आयरिश या अँगरेज लेखकके विचारोंका अनुवाद नहीं है, किन्तु अँगरेजीके विविध लेखकोंके लिखे हुए लगभग ४० ग्रन्थोंका गहरा अध्ययन तथा मनन करके और हिन्दुस्तानकी परिस्थितियोंको हृदयस्थ करके बिलकुल स्वतन्त्र रीतिसे लिखा हुआ प्रकृत इतिहास है और इस लिए यह भारतवासियोंके लिए बहुत ही महत्त्वकी चीज है ।

मूल पुस्तक ठीक आठ वर्ष पहले लिखी गई थी । इधर आठ वर्षोंमें संसारमें बहुत कुछ परिवर्तन और उन्नति हुई है, और फलत आयर्लैण्ड तथा भारतवर्षने भी बहुत कुछ आगे पैर बढाये हैं । दोनों देशोंमें इधर जो कुछ नई उल्लेखयोग्य बातें हुई हैं, उन सबको भी मैंने इस अनुवादमें समाविष्ट करनेका प्रयत्न किया है । इस प्रयत्नमें मुझे कहाँतक सफलता हुई है इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही कर सकते हैं ।

आयर्लैण्डके अपने उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचनेमे अब बहुत ही थोड़ी कसर जान पड़ती है। भारतवर्ष भी वहाँतक पहुँचनके लिए जोर मार रहा है और आशा की जाती है कि थोड़े दिनोंके अन्दर ही भारतवासियोंकी भी बहुत कुछ कामनायें पूर्ण हो जायँगी। लेकिन इन थोड़े दिनोंमें ही उन्हें बहुत कुछ प्रयत्न करनेकी भी आवश्यकता होगी। यह प्रयत्न जितना ही वैध और अधिक होगा, सफलताकी मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। ऐसी दशामे बहुत सम्भव है कि इस अनुवादसे लोगोंको अपने प्रयत्नमे भी थोड़ी बहुत सहायता मिले और उनके लिए यह उपयोगी हो। इसी विचारसे इस समय यह अनुवाद प्रकाशित किया जाता है। ईश्वर करे, भारतवासियोंका अभीष्ट शीघ्र ही सिद्ध हो और उनके प्रयत्नोंमें शीघ्र ही सफलता हो। तथास्तु।

काशी,
दीपमालिका १९७४।

निवेदक—
रामचन्द्र वर्म्मा।

कृतज्ञता-प्रकाश।

हम इस अपूर्व ग्रन्थके मूल लेखक श्रीयुक्त केलकर महाशयके बहुत ही कृतज्ञ हैं जिन्होंने बड़ी ही प्रसन्नता और उदारतासे हमें इस अनुवादग्रन्थको प्रकाशित करनेकी आज्ञा दी है।

—प्रकाशक।

विषय-सूची ।

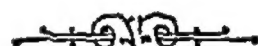
इतिहास ।

चरित्रमाला ।

आयर्लैण्डका इतिहास।



१ विषयोपन्यास।



सन् १९०७ के नवम्बर मासमें, शिमलेमें, भारतीय व्यवस्थापक सभामें राजद्रोहीसभासम्बन्धी एक कानून पास हुआ था। उस अवसर पर जो वादविवाद हुआ था उसमें माननीय डा० रासबिहारी घोषने स्वय वाइसराय साहबके सामने स्पष्ट रूपमे कह दिया था कि–" भारतवर्ष दूसरा आयर्लैण्ड हुआ जाता है, सँभल जाइए, आयर्लैण्डकी तरह यहाँ भी दमनशील नियमोके बल पर राज्य करनेका सरकारका इरादा दिखाई देता है। लेकिन उसे अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि आयर्लैण्ड पर सुखसे राज्य करनेके प्रश्नको अँगरेज लोग केवल निग्रहकारक नियमोंकी सहायतासे आज तक हल नहीं कर सके है और उस उपायसे भारतवर्षमे भी इस प्रश्नका समाधान नहीं हो सकता। " दिसम्बर सन् १९०८ में बगालमे कुछ लोगोंको द्वीपातरवासका दड दिया गया था और विशिष्ट अपराधोंकी जांच विशिष्ट रीतिसे करनेके सबधमें जो नया कानून बनाया गया था, उस प्रसग पर मराठी केसरीमें " हिन्दुस्तान आयर्लैण्ड झालें " (हिन्दुस्तान आयर्लैण्ड हो गया) शीर्षक एक लेख निकला था।

हमारा विश्वास है कि, इसी प्रकार ऐसे विचारशील इतिहासज्ञोंके मनमें भी जो वोलकर अथवा लिखकर अपने विचार प्रकट नहीं करते सन् १९०७-८ में होनेवाली अघटित घटनायें देखकर समय समय पर आयर्लैण्डका ध्यान आया होगा। इस देशमें इस प्रकार आयर्लैण्डका स्मरण होनेका मुख्य कारण यह है कि सन् १८८० से भारतवासियोंका राजनीतिक विषयोंसे विशेष अनुराग हुआ और सन् १८८० के लगभग ही आयर्लैंडके राजनीतिक प्रश्नों और कार्य्योंमें पार्नेलके कामोंके कारण जोर आया। तबसे भारतीय राजनीतिप्रेमी पुरुषोंको सूक्ष्म निरीक्षणसे आयर्लैंड और भारतके आन्दोलनमें एक प्रकारका साधर्म्य दिखाई देने लगा, और यह बिंबप्रतिबिंबभाव अबतकके अनुभवसे बराबर दृढ होता गया है। आगे चलकर भारतीय समाचार पढकर आयरिश लोगोंका लक्ष भी भारतवर्षकी ओर हुआ। सन् १८९४ मे मद्रासमें जो दसवीं राष्ट्रीय सभा हुई थी, उसके सभापति श्रीयुक्त आलफ्रेड वेब बनाये गये थे, जो एक आयरिश सज्जन थे। उस अवसर पर उन्होंने जो व्याख्यान दिया था, उससे यह बात अच्छी तरह व्यक्त हुई थी कि आयरिश लोगोंको भारतीय प्रजाके विषयमें एक प्रकारका ममत्व जान पडने लगा है। प्राय बीस वर्ष पहले जब (स्वर्गीय) मि० गोखले आयर्लैंड गये थे, तब आयरिश लोगोंने उनकी बातें बडे ध्यानसे सुनीं थीं, और यह बात प्राय सभी लोग जानते है कि माईकेल डेविट और डिलन आदि लोगोंके साथ उनकी जो भेट हुई थी, उससे यह बात अच्छी तरह प्रगट हुई थी, कि आयरिश लोग बडे चावसे हमारे सुख-दु:खकी बातें सुनते है। लोकमान्य तिलकके राजद्रोहसम्बन्धी दोनों मुकद्दमोंके अवसर पर आयरिश समाचारपत्रोंमें जो लेख छपे थे, उनसे भी यही प्रकट हुआ था कि, भारतीय राजनीतिक झगडोंमें जिन लोगोंको दु:ख भोगने पडते है, उनके साथ आयरिश लोगोंकी सहानुभूति है और उनके उद्योगकी सराहना करनेकी

ओर उनकी प्रवृत्ति है। इस प्रकार इन दोनों राष्ट्रोंका संबंध दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।

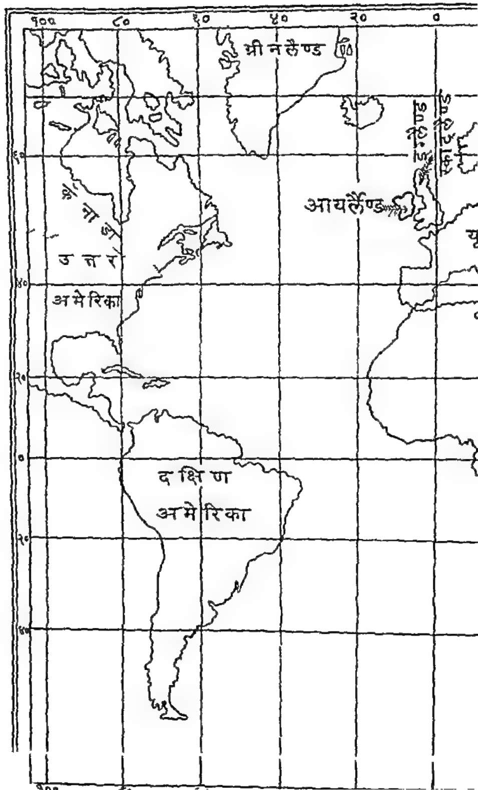
वास्तवमें आयर्लेण्ड और भारतवर्षमें कोई संबंध नहीं है। दोनोंमें तीन चार हजार कोसका अंतर है, दोनोंके धर्म्म अलग अलग हैं और यदि ऐहिक दृष्टिसे देखा जाय तो ऐसी कोई बात नहीं मिलती, जिसके कारण दोनोंमेंसे कोई एक दूसरे पर अवलंबित हो। तब केवल विश्वकुटुंबके अवयवके नातेसे उत्पन्न होनेवाला दूरान्वय भला सदा कैसे मनमें रह सकता है? अर्थात् यदि ये दोनों राष्ट्र इंग्लैंडके आधीन न होते तो दोनों राष्ट्रोंके लोगोंको एक दूसरेके संबंधमें कभी कुछ भी ध्यान न होता। जिस बातसे हमारा कोई संबंध नहीं होता, उसे सुनते ही हम तुरंत भूल जाते हैं, अथवा यदि बहुत हुआ तो केवल इतिहासकी दृष्टिसे हम उसे अपने ध्यानमें रखते हैं। लेकिन इंग्लैण्डका साम्राज्य आयर्लेंड और भारतवर्ष इन दोनों राष्ट्रोंके सुखदुखका एक साधारण अधिष्ठान अथवा उत्पत्तिकारण बन गया है, इसलिए यह बात बहुत ही स्वाभाविक है कि उनमेंसे एक राष्ट्रमें होनेवाली बातें दूसरे राष्ट्रके लोगोंको केवल इतिहासकी अपेक्षा कुछ अधिक चित्ताकर्षक जान पड़ें। सन् १९०८ में पार्लमेंटमें एक वादविवादके समय सर हार्डविन्सेण्ट नामक एक सभासदने बड़ी ही निर्लज्जतासे और ढीठतासे कहा था—“लाला लाजपतरायको द्वीपान्तरित करनेके बदले गोली ही क्यों न मार दी गई?” उस समय रेडमंड आदि आयरिश नेता उस पर क्रुद्ध होकर टूट पड़े थे और उन लोगोंने उसे अपनी बात लौटा लेनेके लिए विवश किया था। दूसरी ओर इस बातका अनुभव सभी लोगोंको है कि, पार्लमेण्टमें जब आयरिश होमरूल (स्वराज्य) का प्रश्न उठता है तब भारतवासियोंके कान तुरंत ही कैसे तीव्र हो जाते हैं, किंवा आयरिश लोगोंका दुःख निवारण करनेवाला अथवा उन्हें नवीन अधिकार देने-

वाला कोई नया कानून जब पास होता है तब भारतवासियोंको स्वभावत कैसा आनन्द होता है। स्वराज्य, अर्थात् अपने तन्त्रसे चलनेवाली पार्लमेण्ट मिलना कई स्वाधीन तथा कई पराधीन बातोंकी सिद्धि पर अवलवित रहता है। इस कारण जब हम सुनते है कि, तुर्कों ईरानियों या चीनियोंको पार्लमेंट मिली अथवा मिलनेवाली है तब हमें ज्ञान होता है कि, हमें किस प्रकार कार्य्य करना चाहिए। इसी प्रकार आयर्लैण्डके स्वराज्यकी प्रगति अथवा प्रतिगतिके सबधमें जब कोई बात हमे सुनाई पडती है, तब भारतवर्षके राजकीय नेताओंको यह अनुमान करनेका अवसर मिलता है कि, इस समय ब्रिटिश सरकारकी प्रवृत्ति कैसी और किस ओर है। "कुटुम्बके सभी लोग अपना अपना भाग्य साथ लेकर उत्पन्न होते है, पर तो भी कुटुंबका भवितव्य कुछ निराला ही होता है और उसीके जालमें सब लोगोंके फसे होनेके कारण घरके सब लोगोंको परस्पर एक दूसरेके लिए अभिमानसा होने लगता है।" कुछ कुछ ऐसी ही दशा आयर्लैंड और भारतवर्षकी भी दिखाई पडती है। समसुखी जीव चाहे एक दूसरेसे प्रेमभाव न रक्खे, पर इसमे सदेह नहीं कि समदु खी जीव आपसमे एक दूसरेके साथ प्रेमभाव अवश्य रखते हैं। और इस नातेसे आयर्लैंड और भारतवर्ष ये दोनों परावलबी राष्ट्र जिस प्रकार एक दूसरेका वृत्तान्त सुनकर अपना दु ख थोडा बहुत भूल जायेंगे उसी प्रकार एक दूसरेके चरित्रमे ज्ञान प्राप्त करके उन्हें नये नये विचार भी सूझेंगे। लेकिन इतना होने पर भी इन दोनों राष्ट्रोंको एक दूसरेका पूर्व वृत्तान्त उतना अधिक मालूम नहीं है जितना वास्तवमें होना चाहिए। तिस पर आयर्लंडकी स्थिति भारतवर्षकी अपेक्षा कुछ अच्छी है, अर्थात् राजकीय बातोंमें आयर्लैंडका कदम भारतकी अपेक्षा कुछ अधिक आगे है, इस लिए हम लोगोंका सविस्तर वृत्तान्त जाननेकी कदाचित् आयरिश लोगोको उतनी

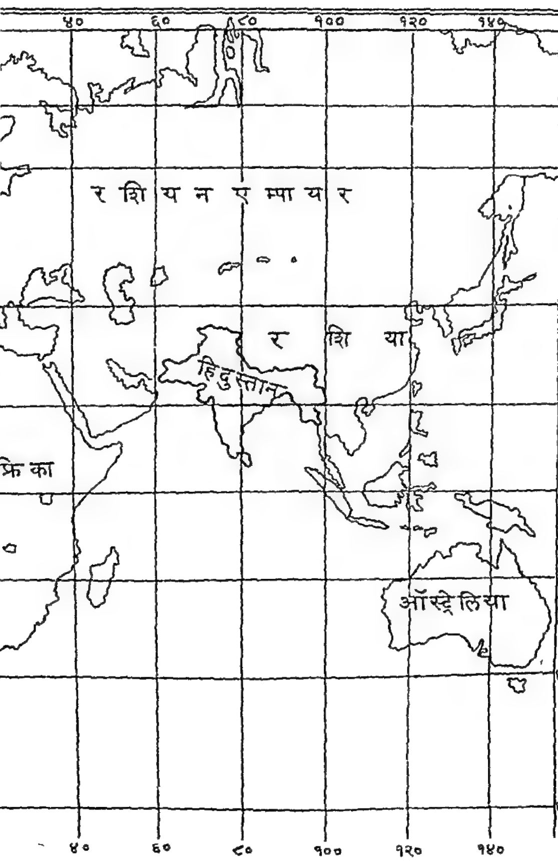
गरज न होगी। लेकिन आयर्लैंड राष्ट्र जिन कई राजकीय स्थितियोंसे होकर वर्तमान स्थितिमें पहुँचा है, उनमेंसे कई स्थितियोंमें हम अभी जाना है, अत आयर्लैंडका वृत्तान्त जान लेना हमारे लिए अधिक आवश्यक है।

यह बात आरंभमें विपयोपन्यासमें ही बतला देना अधिक उत्तम होगा कि, पाठकोंके सामने उक्त वृत्तान्त उपस्थित करनेमें हमारा मुख्य हेतु क्या है। हमारा हेतु यह है कि हम अपने देशके लोगोंको इस बातका ज्ञान करा दें कि कुछ विषयोंमें हमारी ही जैसी स्थितिके एक युरोपियन राष्ट्रके पाँच सौ वर्षोंके इतिहाससे हम भारतवासियोंको क्या सीखना चाहिए अथवा हम लोग क्या सीख सकते हैं। भारतवर्षकी स्थितिके समान यदि किसीकी स्थिति है तो वह केवल आयर्लैंडकी ही है। इन दोनों राष्ट्रोंमें वैधर्म्य कुछ कम नहीं है, पर वैधर्म्यकी तरह साधर्म्य भी बहुत है, आगेके विवेचनसे यह बात सिद्ध हो जायगी। यदि ऐसे राष्ट्रका चार पाँच सौ वर्षोंका इतिहास देखा जाय तो उससे अनेक उपयुक्त और व्यापक सिद्धान्त निकाले जा सकते हैं। नवीन परिस्थितिमें भारतवर्षका इतिहास अभी हालमें ही आरम्भ हुआ है। इस इतिहासका वास्तविक प्रारंभ केवल ७०–८० वर्षोंसे ही है। केवल इतनेसे ही उसकी भावी स्थितिके सबधमें जो अनुमान किया जायगा वह भ्रमपूर्ण होगा। इतिहासका मुख्य उपयोग भविष्यकथन है और उस भविष्यको सत्य ठहरानेके लिए जितने ही अधिक दिनोंके इतिहासको आधार बनाया जाय उतना ही अच्छा है। आयर्लैंडके इतिहासमें जितने वादग्रस्त प्रश्न हैं, उनमेंसे प्रत्येकका इतिहास कमसे कम १००–१५० वर्षोंका है। दूसरी बात यह है कि, जहाँ गहरे और शान्त विचारोंका प्रश्न आता है वहाँ ऐसी ही विचार-सामग्रीका ग्रहण अधिक उत्तम होता है, जिसके साथ अपना सबध यथासाध्य कम हो। यह बात सभी विद्यार्थी जानते हैं कि

योंमेंसे ३२½ लाख कैथोलिक, ५¾ लाख प्रोटेस्टेण्ट, ४½ लाख प्रेसबिटरेनियन्स, ६२ हजार मेथोडिस्ट और बाकी फुटकर धर्म्मपन्थोंके हैं। लोकसंख्याकी दृष्टिसे देखते हुए आयर्लैण्डके समान छोटा प्रान्त भारतमें मिलना कठिन है। क्योंकि छोटा नागपुर या उडीसा प्रान्तकी जनसंख्या भी आयर्लैण्डकी संख्यासे चार पॉच लाख अधिक होगी। गुजरात प्रान्तसे कुछ अधिक और मध्यप्रान्तके छ जिलोंसे कुछ कम आयर्लैण्डकी जन-संख्या होगी। ऐसे इस छोटेसे देशके सबधमें एक दो बातें विशेष उल्लेखयोग्य और महत्त्वपूर्ण है। एक तो आयर्लैण्डमें शिक्षाका प्रचार हिन्दुस्तानको देखते हुए बहुत अधिक है। क्योकि वहॉ १६ कालेज है, जिनमें साढे चार हजारसे अधिक विद्यार्थी पढते हैं। और सारे समाजमेंसे लगभग ७० प्रति सैकडा लोग लिख पढ सकते है। राजनीतिमें भी आयरिश लोगोंका प्रवेश इसी हिसाबसे है। भारतके किसी प्रदेशकी व्यवस्थापक सभामें जितने बडे प्रान्तसे केवल दो सभासद चुने हुए रहते हैं, उतने ही विस्तारके आयर्लैण्डसे ब्रिटिश पार्लमेण्टमें प्राय सौ सभासद चुने हुए रहते है। इससे पता लग जायगा कि राजनीतिमें वहाँवाले हम लोगोंसे कितने आगे है। अब हम यह दिखलायेंगे कि, इस देशका पूर्वेतिहास क्या है, इस समय इग्लैण्डके साथ उसका कैसा सम्बन्ध है, उसने अपने सामने कौनसा ध्येय रक्खा है, उसे प्राप्त करनेके लिए उसने कौनसे उपाय किये है और कहॉ तक उसे प्राप्त किया है।



१००
८०
६०
४०
२०
०
ग्रीनलैण्ड
आयर्लैण्ड
उत्तर
अमेरिका
दक्षिण
अमेरिका



४०
६०
८०
१००
१२०
१४०
र शि य न ए म्पा य र
र शि या
हिंदुस्तान
फ्रिका
ऑस्ट्रेलिया
४०
६०
८०
१००
१२०
१४०

२ आयर्लैण्डका प्राचीन इतिहास।



पूश्चिमी युरोपके निवासी समुद्रयात्रा करनेमें बडे कुशल और साहसी थे, इस लिए ग्यारहवी शताब्दीके अततक चारों ओरसे समुद्री डाकुओंके झुडके झुड आकर इस टापू पर उतरा करते थे। और इस प्रकार बहुत प्राचीन कालसे आयर्लैण्ड अनेक जातियोंके लोगोंका निवास हो रहा है। प्राचीन दतकथाये और भाटोंके पॅवारे यदि देखे जायॅ तो उनमे आयर्लैण्डका इतिहास ठेठ आद्य जलप्रलयतक ले जाकर भिडाया हुआ मिलता है। ईसाईयोंके पुराणोंमें वर्णित जलप्रलयमे हजरत नूहकी 'तुआथ यानान' नामकी जो भतीजी बचगई थी और जिसने सारे ससारमें घूमकर सब प्रकारके प्राणियोंको वसाया था, वह पहले पहल आयर्लैण्डके किनार पर ही उतरी थी और इस प्रकार वहींसे मनुष्योंकी आबादी शुरू हुई। इससे पहले पौराणिक कालमें, उन्हीं कथाओके वर्णनके अनुसार, इस उजाड टापूमें अमानुष योद्धा, राक्षस, तात्रिक और जादूगर आदि वसते थे। मनुष्योंकी वस्तीके समय पहले यहां अग्नि और सूर्यकी उपासना और नरयज्ञ आदि अघोरपथी कर्म्म हुआ करते थे।

ईसवी सनके आरभसे चौदहवीं शताब्दी तक 'मारलेशियस' नामके एक पौराणिक योद्धाने आयर्लैण्ड पर अधिकार करके उसमें अपने अनुयायियोंको वसाया था और उनके लिए उसे उपनिवेश बनाया था। अब भी आयरिश लोगोंके काव्योंमें यह 'मारलेशियस' नाम लगा हुआ मिलता है। मारलेशियसके लडके हेबरके नाम पर ही आयर्लैण्डको 'अयवेरियन' टापू कहते है। आगे चलकर मारलेशियसके हेबर और हेरियन नामक दोनों लडकोंने आयर्लैण्डको दो भागोंमें विभक्त

करके आपसमें बाँट लिया था। प्राय: ईसवी शताब्दीके आरभके समय रोमन लोगोंने पश्चिम युरोपके बहुतसे अशोंको दबा कर उनमें अपनी फौजी चौकियाँ बैठाई थीं। लेकिन आयर्लैण्डमें उनका कुछ अधिक प्रवेश नहीं हुआ था। यह द्वीप युरोपके बिलकुल सिरे पर था, इसलिए रोमन लोगोंसे दब कर पीछे हटनेवाली अनेक जातियोंके लोग आयर्लैंडमें ही आश्रय लेकर रहते थे। इन लोगोंमें गाल्स, सेल्टस, पिक्स, स्काट्स आदि प्रधान थे। कुछ दिनों बाद इन्हीं लोगोंको आयर्लैण्ड स्वदेशसा जान पडने लगा और आगे चलकर मध्य युगतक आयर्लैण्डमें जो अनेक लडाइयाँ हुई उनमें बीचबीचमें स्वदेश-भक्ति और स्वराज्यसस्थापनाके हेतुकी झलक दिखाई पडती है। सभ्य युगके आरभमें एक ऐसा समय भी हो गया है जिसमें इग्लेण्डके निवासियोंकी अपेक्षा आयर्लैण्डके निवासी ही अधिक सभ्य और लडाके होते थे और जिस समयमें उन्होंने बीचबीचमें इग्लैण्ड पर आक्रमण भी किये थे। चौथी और पाँचवाँ शताब्दीमें फिडक और नियाल नामक आयरिश राजाओंने इग्लैण्ड पर अपनी फौजें उतारी थीं, और इन बातोंका प्रमाण इग्लैण्डके पश्चिमी समुद्रतटके कुछ स्थानोंके नामोंसे मिलता है। लेकिन आयरिश लोग स्थिर होकर सदाके लिए कभी इग्लैण्डमें नही रहे। प्राचीनकालके आयरिश राजकुलोंमें अनेक वीरपुरुष होगये हैं और आजकल भी आयरिश लोग उन पूर्वकालीन वीरपुरुषोंके पँवारे बडे प्रेमसे गाते हैं। जैसे मराठोंमें शिवाजी, बगालियोंमें प्रतापादित्य अथवा अँगरेजोंमें अल्फ्रेड दि ग्रेट हो गये है वैसे ही आयरिश लोगोंमें कारमक और ब्रायन नामक वीर होगये हैं। कारमक जैसा वीर था वैसा ही भारी राजनीतिज्ञ भी था। उसने सैनिक शिक्षाके लिए तीन महाविद्यालय स्थापित किये थे और उसके बनाये हुए कायदे कानून आगे सैकडों वर्षों तक अमलमें आते रहे थे। हिंदुस्तानमें जिस प्रकार पाण्ड-

वोंका वीरकुल प्रसिद्ध है उसी प्रकार आयर्लैंडमें ओनील नाम वीरकुल प्रसिद्ध है। इस कुलकी हर पीढीमें एकसे एक पराक्रमी पुरुषोंने जन्म लिया था। लेकिन उनकी सारी शूरता अपने देशके अन्दर ही अनेक शत्रुओंके साथ लडनेमें खतम हुई थी, उसका और कोई विशेष उपयोग नहीं हुआ। मराठोंके लिए जिस प्रकार रायगढ और मुसलमानोंके लिए दिल्ली है उसी प्रकार आयरिश लोगोंके लिए 'तारागढ' ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वका स्थान है। पहले पहल इसी 'तारागढ' पर आयरिश लोगोंका स्वराज्यका झंडा खडा किया गया था और बहुत दिनों तक वह यहाँ फहराता भी रहा था। इसी तारागढमें स्वदेशी राजाओंके राज्यारोहणका समारंभ बडे ठाठसे होता था। छठी शताब्दीमें तारागढका महत्त्व सदाके लिए नष्ट हो गया, और तबसे अब तक वह स्थान बराबर उजाड पडा है। लेकिन अब भी जब जब आयरिश कवियों या देश-भक्तोंके मुखसे भावी स्वराज्यके संबंधमें उज्वल भक्तिसे प्रेरित उद्गार निकलते हैं तब तब उनमें किसी न किसी प्रकार 'तारागढ' का प्रेमपूर्वक उल्लेख अवश्य होता है। तो भी यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि आयर्लैंडके बहुत ही छोटे टापू होने पर भी, विदेशी शासकोंके अधिकारमें आनेके समय तक, उसमें कभी किसीका एकच्छत्र राज्य नहीं हुआ। जान पडता है कि आयर्लैंडको अंत:कलहका कुछ शाप ही है। क्योंकि स्वदेशियों अथवा विदेशियोंके राजकालमें आयर्लैंडमें कभी शांति या एकता नहीं हुई।

पाँचवीं शताब्दीके लगभग आयर्लैंटमें ईसाई धर्मका प्रचार प्रारंभ होने लगा। पेलेडिअस, पेट्रिक, कोलंबा आदि अनेक ईसाई साधु और धर्मोपदेशक आयर्लैंडमें हो गये हैं। उनके परिश्रमसे आयरिश लोग ईसाई अर्थात् पोपके अनुयायी बने और तबसे रोमन कैथोलिक पंथका आयरिश लोगों पर इतना दृढ अधिकार जम गया है कि प्रोटेस्टंट

पथको आयर्लैण्डमें कभी जगह ही नहीं मिली । आयर्लैण्डके उत्तरी भागमें अँगरेज राजाओंने प्रोटेस्टेंट वस्तियाँ वसानेके लिए सब प्रकारके प्रयत्न किये थे, लेकिन इतना होने पर भी आज वहाँके निवासियोंमेंसे प्रति सैकडा ७५ और दक्षिणी भागम प्रति सैकडा ८० आदमी रोमन कैथोलिक ही है । स्काटलैड इग्लैड आदि आसपासके देशोंमें धर्म्म परिवर्तन हो गया, वहाँ प्रोटेस्टेंट पथकी सदाके लिए स्थापना हो गई, परतु आयरिश लोगोंने कभी पोपका स्वामित्व नहीं छोडा । इतना ही नहीं बल्कि जिस धर्म्मको उन्होंने एकवार हृदयसे मान लिया उसके लिए उन्होंने आजतक अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ और राजकीय दण्ड भी सहे है। सेण्ट पेट्रिक नामक एक विख्यात सिद्ध पुरुष हो गये हे । आयरिश राजा नियालने जिस समय फ्रास पर आक्रमण किया था उस समय बोलोन नगरमे पेट्रिक (वेट्रिशियस) नामक एक लडका आयरिश सिपाहियोके हाथ लगा था । वह आयर्लैण्डमें लाया गया और वहाँ गुलाम बनाकर वेचा गया। वहाँ वह २२ वर्षकी अवस्था तक अपने स्वामीके गोरू चरानेका काम करता रहा । इसके उपरात एक दिन भागकर उसने अपना छुटकारा करा लिया । वह चारों तरफ यह कहता हुआ फिरने लगा कि मुझे ईश्वरके दर्शन हुए है और आज्ञा हुई है कि मै ईसाई धर्मका प्रचार करूँ । शीघ्र ही बहुतसे लोग उसके शिष्य हो गये और जिस आयर्लैण्डमें उसने पहले गुलामीमें अपने दिन विताये थे, उसी आयर्लैण्डमें जाकर उसने धर्म्मोपदेश करनेका साहस किया । सन् ४४५ ई० में वह आयर्लैण्डके किनारे जा उतरा । उन दिनों ड्रुइड लोग वहाँके धर्म्माध्यक्ष थे । उन लोगोंको चमत्कार दिखलाकर अतमें नियाल राजाके लडके थियोडोरको उसने ईसाई धर्म्मकी दीक्षा दी । धीरे धीरे और भी बहुतसी मडलियोंके नेताओंने उसका शिष्यत्व स्वीकार किया और इस प्रकार

थोड़े ही समयमें वह सारे आयर्लैण्डका धर्म्मगुरु बन गया। पुराने जंगली ड्रुइड लोगोंका अधिकार उठ गया और उसके स्थानपर सुसंस्कृत ईसाई धर्ममण्डल स्थापित हुए। इन मण्डलोंको धीरे धीरे अच्छी आमदनीकी जमीनें मिलीं। उस आमदनीसे पलनेवाले धर्मोपदेशकोंने पाठशालायें खोलीं और थोड़े ही समयमें शिक्षाके प्रचारके साथ साथ देशमें धार्मिक जागृति भी इतनी अधिक हो गई कि आसपासके राष्ट्रोंमें धर्म्मोपदेशक भेजकर और धर्म्मदीक्षा देकर पावन करनेका काम आयर्लैण्ड करने लगा। उन दिनों जहाँ जहाँ ईसाई धर्म्मका प्रचार होता था वहाँ वहाँ रोमके धर्म्मगुरु (पोप) का स्वामित्व स्वीकृत होता था। लेकिन आयर्लैण्डमें पोपका प्रत्यक्ष अधिकार आगे कई शताब्दियों तक नहीं हुआ। स्थानिक धर्म्मगुरुने ही एक प्रकारसे स्थानिक स्वराज्यका भोग किया।

आठवीं और नवीं शताब्दीमें आयरिश लोगोंके धार्मिक चरित्रने बहुत ही उज्वल स्वरूप प्राप्त किया। यहाँ तक कि आयरिश धर्म्मगुरु और उपदेशक दूसरे देशोंमें जा-जाकर भी उस ओर कीर्ति प्राप्त करने लगे। धर्म्म और विद्याकी जोड़ी प्राय सब देशोंमें अखण्ड दिखाई देती है। जिस प्रकार भारतवर्षमें ऋषि थे उसी प्रकार ईसाई देशोंमें धर्म्मगुरु थे। प्राचीन और मध्ययुगमें दोनोंने ही धर्म्मकी रक्षा और विद्याका प्रचार समान उत्साहसे किया था। इन दो शताब्दियोंमें आयर्लैण्डमें मठधारी धर्मोपदेशकोंका वर्ग बहुत बढ़ा। प्राचीन कालमें बौद्ध धर्म्मके प्रचारके समय भारतवर्षमें गृहस्थाश्रम पिछड़ गया था और स्त्रियाँ और पुरुष जोगिन और जोगी बनकर धर्म्मका प्रचार करनेके लिए स्वदेश और विदेशमें घूमने लगे थे। उन दिनों आयर्लैंडकी भी ठीक यही दशा थी। प्राय उन्हीं दिनों आयर्लण्डके 'डरो' और 'आरमा' के विश्वविद्यालयोंकी कीर्त्ति बहुत दूर दूर तक फैली थी, और युरोपके

विद्यार्थी और स्वातन्त्र्यप्रेमी लोग विद्या पढनेके लिए वहां आ-आकर रहने लगे थे। जगली युरोपियन लोगोंने अपने बाहुबलके पराक्रमसे आयरिश लोगों पर विजय तो अवश्य प्राप्त कर ली थी, लेकिन धर्म्मसुधार और विद्याके बलसे विजित आयरिश लोगोंने उलटे अपने जेताओं पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपना दास बनाया था। लेकिन दुर्भाग्यवश यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं रही।

आठवीं शताब्दीतक आयर्लैण्डमें धर्म्मकी वृद्धिके साथ ही साथ अत कलहकी भी वृद्धि होती गई। आठवीं शताब्दीमें नार्थमेनोंके—जिन्हें डेन्स भी कहते है—आयर्लैण्ड पर आक्रमण होना आरभ होगये। ये लोग ईसाई नहीं थे, और आयर्लैण्डमे उतरनेके साथ ही इन्होंने ईसाई धर्म्म-मण्डलों पर शस्त्रप्रहार करके लूटमार और अत्याचार आदिकी पराकाष्ठा कर दी थी। इस बाहरी सकटके कारण आयरिश लोगोंकी ऑखें कुछ खुलीं और उन लोगोंने आपसका लडाई झगडा रोककर और एका करके डेन्स लोगोंके विरुद्ध बलवा किया और एक दो स्थानों पर उन्हें परास्त भी किया, लेकिन यह ऐक्य थोडे ही समयतक टिका। इसके बाद फिर टेन्स लोगोंके जहाज आयर्लैण्ड पहुँचे और इन विदेशियोंने फिर चारों ओर अपना अधिकार जमा कर देशको मुट्ठीमें कर लिया। यह स्थिति सौ वर्षतक रही। इसके उपरात ब्रायन और मेलेक्लिन नामक स्वदेशी शूरराजाओंने नेता बनकर डेन्स लोगोंको परास्त किया और उन्हें कतल करके सदाके लिए उनका उपद्रव शात कर दिया। लेकिन शीघ्र ही ब्रायन और मेलेक्लिनमें झगडा खडा हो गया और फिर आपसमें ही खटपट होने लगी। अतमें ब्रायनकी जीत हुई और सन् १००१ ई० में सारे आयर्लैण्डके राजाकी हैसियतसे तारागढमें उनका राज्याभिषेक हुआ। डेन्स लोगोने फिर एकबार उपद्रव खडा किया। सन १०१४ ई०में क्लाटार्फमें भारी युद्ध हुआ जिसमें डेन्स लोग परास्त

हुए। वे समुद्र किनारेकी ओर भाग गये और आयरिश लोग विजयी हुए। लेकिन शूर राजा ब्रायन मारा गया, और इस कारण, उसके पीछे फिर आपसके झगडे बखेडे होने लगे। धीरे धीरे आयर्लैण्डके धर्मका स्वरूप भी मलीन हो चला। अत कलहरूपी दुष्ट पिशाच द्वारा पछाडे हुए आयरिश लोगोंने आपस में खूब लडाई झगडे किये। उनके समस्त वैभव और सुखका लोप हो गया, और इस फूटसे लाभ उठाकर आयर्लैंड पर आक्रमण करनेवाले किसी नये शत्रुके लिए यशस्वी होनेमें शका करनेका कोई कारण ही नहीं रह गया। ऐसी स्थितिमें बारहवीं शताब्दीमें इंग्लैण्ड और आयर्लैण्डका पहले पहल सबध हुआ। और वह सबध जो एकबार हुआ सो आठसौ वर्षपर्य्यन्त अर्थात् आज दिनतक आयर्लैण्डके सब कुछ करने पर भी नहीं टूटा।

बारहवीं शताब्दीके आरभमें आयर्लैंडमें अलस्टर, लेनस्टर, मनस्टर और कनाट ये चार अलग अलग राज्य थे और उन सबमें अलस्टर राज्य प्रधान था। लेकिन इन चारों राज्योंके राजा सदा आपसमें लडा झगडा करते थे। इस खराबीमें ऊपरसे एक पाप कर्म्मका पट दिया गया। देखा जाता है कि परस्त्रीकी अभिलाषा इतिहासमें अनेक अवसरों पर बडे बडे राष्ट्रीय उलटफेर कर देती है, और प्राय ऐसा एक भी महाकाव्य न मिलेगा जिसमें मुख्य कथानकका सारा आधार परस्त्रीहरण-पाप और उसके प्रायश्चित्त पर न हो। लेनस्टर राज्यका राजा मेकडरमाट मेकमरो अत्यन्त कपटी और क्रूर था। सन् ११५२ ई० में वह एक रोरुर्क नामक सरदारकी स्त्रीको भगा ले गया। बेचारे रोरुर्कने थरलो ओकोनर नामक सामताधिपका आश्रय लिया और उससे सहायता माँगी। दोनोंने मिलकर मेकडर माटको आयर्लैंडसे भगादिया। इस प्रकार अनीति-प्रवृत्त मेकडर माटको कहीं आश्रय मिलना न्याय्य नहीं था, लेकिन आयर्लडके दुर्भाग्यमें इंग्लैंडके लोभका जोड मिल गया। मेकडर माट भट-

कता भटकता इग्लैण्ड पहुँचा (सन ११६७ ई०) और वहाँके राजा द्वितीय हेनरीको नया देश दिलवा देनेका लालच देकर उसने उससे सहायताका वचन लिया। उस समय इग्लैण्ड बहुत अच्छी दशामे था। देशमें शाति विराज रही थी। बहादुर सिपाहियो और नौजवानोंके लिए तलवार चला कर कीर्ति प्राप्त करनेके लिए स्वदेश पूरा नही था। नये मुल्क जीतने और इसी प्रकारके दूसरे साहसपूर्ण कृत्य करनेकी हवस अँगरेज सरदारोंको थी ही। अत आयर्लेंड पर आक्रमण करनेके लिए राजा हेनरीको स्वतत्र सेना भेजनेकी आवश्यकता नहीं पडी। उसने एक फरमान निकालकर लोगोंको सूचित कर दिया कि जो लोग चाहें वे अपने साथ सिपाही लेकर आयर्लैण्ड पर आक्रमण करके मेकमरोकी सहायता करें। जो लोग इस प्रकार आक्रमण करेंगे उनपर दरबारकी कृपा होगी और उन्हें सरदारी भी मिलेगी। इस फरमानसे लाभ उठाकर अनेक तरुण अँगरेज योद्धा फौज लेकर आयर्लैण्डके तटपर उतर पडे। जिसके लिए इतने झगडे बखेडे हुए थे उस पापी मेक-मरोका यद्यपि इस समय अत भी हो गया था, तथापि अँगरेजोंका पैर आयर्लेण्ड पर जो पडा वह सदाके लिए ही पड़ा। हेनरी राजाको अपने लिए नया राज्य प्राप्त करनेकी हवस थी ही, इसके सिवा उसी समय रोमकी गद्दी पर चतुर्थ हेड्रियन नामक अँगरेज पोप होकर बैठा था, उसने रोमन कैथोलिक मतका प्रसार करने और खजाना भरनेके उद्देश्यसे आयर्लैण्डको अपने अधिकारमें लानेके लिए राजा हेनरीसे विशेष आग्रह किया था। पहले जो युवक अँगरेज सरदार आयर्लैण्ड गये थे उन्होंने जब आयरिश राजाको युद्धमें परास्त कर दिया तब स्वय राजा हेनरी एक बडी भारी सेना लेकर आयर्लैण्ड पहुँचा। क्योंकि माडलिक 'फ्यूडल' पद्धतिके अनुसार अधीनस्थ सरदारोंके जीते हुए देश पर राजाका स्वामित्व रहना आवश्यक था।

हिन्दुस्तानमें भी सिताराके अधीनस्थ पेशवा, सिंधिया और होलकर आदि सरदार लडभिड कर जो देश जीतते थे, यद्यपि उनका सब काम-काज और सूबेदारी वे ही सरदार करते थे तो भी यह प्रसिद्ध ही है कि उसके मुख्य स्वामी सितारेवाले ही होते थे।

हेनरी राजाने आयर्लैण्डको नाम मात्रको जीता था, क्यों कि उसने किसी राजासे कर आदि नहीं उगाहा था। और इसी लिए उसका कोरा स्वामित्व स्वीकार करनेमें आयरिश राजमडलने भी विशेष आपत्ति नहीं की। लेकिन हेनरीके स्वदेश लौटते ही उसके पीछे आयर्लैण्डमें केवल डब्लिन नगर और उसके आसपासके थोडेसे प्रदेशको छोडकर बाकी और किसी भी स्थान पर अँगरेजोंका वास्तविक स्वामित्व नहीं रह गया। बीचमें छोटेसे टप्पेमें अँगरेजी अमलदारी थी और उसके चारों ओर समस्त देशमें स्वदेशी राजाओंका अधिकार था। यह स्थिति बराबर कई वर्षोंतक बनी रही, और अलस्टरके राजाने तो बहुत दिनोंतक पहलेकी ही तरह अन्य राजाओं पर अपना स्वामित्व चलाया। डब्लिनका 'लार्ड-डिपुटी' अथवा सूबेदार जैसा होता, अथवा स्वय इग्लैण्डकी जैसी राजकीय स्थिति होती, आयर्लैण्डमें भी अँगरेजोंका प्रभुत्व उतना ही कम या अधिक होता। यदि कोई सूबेदार बहादुर और पराक्रमी होता तो वह आसपासके प्रदेशों पर आक्रमण करके अपना अधिकार जमा लेता और कर वसूल करता, और नहीं तो फिर आयरिश लोग ही अँगरेजोंकी वस्तीकी ठेठ सीमातक पहुँचकर उन्हें दिक करते। यही दशा बहुत दिनोंतक बनी रही। इस बीचमें आयरिश लोगोंमें यदि कभी एकता हुई होती तो वे अँगरेज सूबेदारोंको कभीका इग्लेण्ड लौटा दिये होते, लेकिन उन लोगोंको कभी इस बातकी कल्पना भी नहीं हुई कि, आयर्लैण्ड हमारा देश है और उसके हितके लिए हम लोगोंको आपसका वैमनस्य भूल जाना चाहिए।

आयरिश लोग व्यक्तिशः ईमानदार होते है। लेकिन जिसका वे नमक खाते है, उसी साढ़े तीन हाथके देहधारी मूर्त व्यक्ति तक ही उनकी ईमानदारी, निष्ठा और तलवार काम करती है। यदि बहुत हुआ तो वह ईमानदारी उस व्यक्तिके घरानेतक पहुँच जाती है, और वे लोग इसी प्रकार कई पीढ़ियोंतक एक ही घरानेके ऋणानुबधी मित्र अथवा गुलाम बनकर रहते हुए दिखाई देते है। इसलिए केवल धन देनेसे विदेशियोंके लिए स्वदेशियोंके साथ लडनेवाले ऐसे बहुतसे आयरिश योद्धा मिल जाते थे, जो पहलेसे किसी घरानेके बधनमें नहीं होते थे। और आजतक आयर्लैण्ड पर अँगरेज राजाओंका अधिकार बहुतसे अशोंमें इसी प्रकारके आयरिश सिपाहियोंकी तलवारके बल पर रहा है, लेकिन हिंदुस्तानके लोगोंको इस बात पर आश्चर्य्य न करना चाहिए कि आयर्लैण्डमें ऐसा क्यों होता था। इसके अतिरिक्त यह बात भी नहीं थी कि उस समय यह स्थिति केवल आयर्लैण्डकी ही रही हो। स्काटलैण्डमें स्काच् लोग अँगरेजोंके लिए लडे थे, इँग्लैण्डमें कुछ सेक्सन लोगोंने प्लाटेजनेंट राजाओंकी ओरसे हथियार उठाये थे, फ्रासमें जूलियस सीजरने बहुतसे फ्रेंच सरदारोंकी सहायतासे पहले पहल रोमकी अमलदारी जमाई थी और स्पेनमें मूर लोगोंके झण्डेके नीचे बहुतसे 'सिड' लोगोंने लडकर स्वदेशको विदेशियोंके अधिकारमें भेजनेमें सहायता दी थी।

३ आयर्लैण्डका अर्वाचीन इतिहास।

आयर्लैण्ड पर अँगरेजोंका अधिकार हो जानेके उपरान्त यदि नारमन लोगोंकी उदार राजपद्धतिके अनुसार राजकार्य्य आरंभ हुआ होता, तो आयर्लैंडकी भारी विपत्ति टल जाती। लेकिन आयर्लैंडमे रहनेवाले अँगरेज अधिकारियोंने इग्लैण्डके अधिकारियोंको बराबर यही जतलानेका प्रयत्न किया कि यदि नारमन शासकोंकी सदाकी पद्धतिके अनुसार आयरिश लोगोंके साथ रिआयतें की जायँगी और दोनोंमें मेल होने दिया जायगा तो अँगरेजोंके लिए यह संबंध बहुत ही अहितकारक होगा। इस कारण अँगरेजोंकी खास अमलदारीमें रहनेवाले आयरिश लोगोंके साथ बहिष्कृत लोगोंकी तरह वर्ताव करनेकी प्रथा चल पडी। अँगरेज सरदारोंने नियमसा कर लिया कि हम केवल जमीन या धन प्राप्त करनेके लिए ही आयर्लैंड जायँगे, स्थायी रूपसे रहनेके लिए वहाँ नहीं जायँगे। शायद उन्हें इस बातका डरसा हो गया था कि आयर्लैंडमें रहकर वहाँके लोगोंके साथ संसर्ग रखनेसे हमारी श्रेष्ठ रीति-नीतिमें बट्टा लगेगा और कुछ दिनों बाद हमारा शुद्ध बीज नष्ट हो जायगा! इसी लिए वे नकद माल लेकर स्वदेश लौट आया करते थे और जो कुछ जमीन जायदाद उन्हें मिलती थी, उसकी देखरेखके लिए अपनी ही जातिका एक कारिन्दा नियत कर आते थे और जो कुछ उसके द्वारा वसूल हो सकता था उसीको लेकर अपने देशमें आनन्द करते थे। अंतमें यह पद्धति आयर्लैण्डके लिए बहुत ही घातक सिद्ध हुई। क्योंकि इसके कारण देशका धन घटने लगा और समस्त धन संपत्तिका मूलस्थान भूमि-धन धीरे धीरे दूसरोंके हाथोंमें चला गया, जिसके कारण उस जमीनका सुधार तो नहीं होता था, केवल ऊपरी लोगोंके द्वारा वह जोती-बोई भर जाती थी।

जो ॲंगरेज स्थायी रूपसे आयर्लैण्डमें रह गये उनके लिए सदा आयरिश लोगोंके साथ कठोर और अनुचित व्यवहार करके रहना प्रायः कठिन ही था। लेकिन आयर्लैण्डका राजकीय सूत्र इंग्लैण्डके हाथमें था और स्वय इग्लेण्डमें आयरिश लोगोंका अनादर था, इस लिए स्थायी रूपसे आयर्लैण्डमें बसकर रहनेवाले उन ॲंगरेजोंकी कुछ चलती न थी। कभी कभी उनमेंसे किसीके मनमें ये विचार भी आते थे कि आयरिश लोगोंके साथ स्नेह रक्खा जाय, उनसे ममता की जाय, सकटके समय उनकी सहायता की जाय, अपनी अच्छी अच्छी बातें उन्हे सिखाई जॉय और उनकी अच्छी अच्छी बातें स्वय ग्रहण की जायें। लेकिन उधर इस प्रकारके काम करनेवालोंको दण्ड देनेके लिए कायदे भी बनाये जाते थे। उदाहरणार्थ, सन् १३६३ ई० में महाराज तृतीय एडवर्डके राजत्वकालमें एक नियम बना था कि जो ॲंगरेज आयरिश भाषा सीखकर बोलेगा, अपने लडकोंके आयरिश नाम रक्खेगा, आयरिश स्त्रियोंके साथ विवाह करेगा, आयरिश दाइयोंसे अपने छोटे बच्चोंको दूध पिलवाएगा, आयरिश कपडोंकी या आयरिश रगकी पोशाक पहनेगा, अथवा आयरिश रीति-नीति अगीकार करेगा उसको फॉसीकी सजा दी जायगी और उसकी सारी जमीन-जायदाद जब्त कर ली जायगी। स्वय आयरिश लोगोंके व्यवहारके सबधमें भी इसी प्रकारके अन्यायपूर्ण नियम बनाये गये थे। आयरिश लोगोंको किलेबदीवाले नगरोंमें रहनेका अधिकार नहीं था। आयरिश लोग यदि ॲंगरेज निवासियोंका कोई अपराध करते तो उन्हें फॉसीकी सज़ा दी जाती, लेकिन कोई ॲंगरेज़ यदि किसी आयरिशको मार भी डालता तो उस ॲंगरेजको फॉसी नहीं हो सकती थी। क्योंकि आखिर वे लोग थे तो 'आयरिश' ही! यदि कोई ॲंगरेज किसी आयरिशकी मिलिकियत दबा बैठता, या किसी आयरिश खेतिहरके खेतमें ॲंगरेजी फौजका पडाव पडनेके

कारण उसकी फसल चौपट हो जाती और सालभरकी सारी मेहनत एकही रातमें अकारथ हो जाती, तो अदालतमें उसका दावा नहीं हो सकता था। इन सबका कारण यही था कि अँगरेजोंके मनमें यह बात अच्छी तरह जम गई थी कि आयरिश लोग जंगली हैं। अँगरेज लोग अभी विदेशी थे, और आयरिश लोगोंको जंगली समझनेके कारण उनके साथ किसी प्रकारका सम्बंध नहीं रखते थे। अँगरेज लोग यही सोचते थे कि कुछ दिनोंमें आयरिश लोगोंको नष्ट करके हम ही लोग इस नई भूमिके मालिक बन जायँगे। इसके अतिरिक्त आयर्लैण्डमें जिन विदेशियोंका राज्य था उनका राजा इंग्लैण्डमें रहता था, आयर्लैण्डमें कोई राजा ही नहीं था, इस लिए इन दोनोंका वैमनस्य बढ़ता जाता था और उसे रोकनेवाला कोई नहीं था। अर्थात् यदि एक बार लड़ाई शुरू हो जाती तो उसके खतम होने तक और खतम होनेके बाद भी झगड़ोंकी बहुत सी बातें बराबर होती ही रहती थीं। आयरिश पुरुषोंकी कौन कहे यदि अँगरेजोंके हाथ आयरिश स्त्रियाँ और बच्चे भी लग जाते तो उन्हें भी वे झट काट डालते थे। लड़ाईके उपरांत जब अँगरेजी सिपाहियोंकी टोलियाँ 'विजन' करने निकलती थीं, तब कोसों तक उन्हें जो जीता प्राणी मिलता था उसे वे मार डालती थीं। लेकिन एक ही हल्लेमें उनका काम पूरा नहीं होता था और लोग भाग भाग कर अपनी जान बचा लेते थे, इस लिए अँगरेजोंने विजनकी दूसरी युक्ति यह निकाली थी कि प्रतिवर्ष अँगरेज सिपाही कुछ निश्चित प्रांतोंमें घुस जाते थे और अन्न, घास, चारा वगैरह जो कुछ उन्हें मिलता था, उसे जला देते थे। अर्थात् सिपाहियोंकी तलवारसे जो लोग किसी प्रकार अपना बचाव कर लेते थे, वे इस प्रकार अन्न आदिके अभावके कारण कुछ दिनोंमें धीरे धीरे भूखों मर जाते थे। प्रसिद्ध अँगरेज कवि स्पेन्सरने आयर्लैण्डमें रह कर जो बातें

ऑंखों देखी थीं उसने उनका बहुत ही भयकर और हृदयद्रावक वर्णन किया है। वह कहता है—" जिधर जाओ उधर जगलों और झाडियोंमेंसे हाथों पैरोंके बल रेंगते हुए लोग बाहर निकलते हुए दिखाई देते थे। उनमें खडे होने तक की शक्ति नहीं होती थी। वे लोग यमराजके दरबारसे लौटे हुए जान पडते थे और जिस तरह कबरोंमेंसे भूत बोलते है उसी तरह वे लोग बोलते थे। कहीं थोडेसे कच्चे मासके दिखाई पडते ही वे झपटकर उसपर टूट पडते थे और चटपट दॉतोंसे चींथकर खा जाते थे, और अतमें भूखके कारण एक दूसरेके अगों पर दॉत लगाते थे। " होलिन शेडने लिखा है–" हालकी लडाईके बाद प्राय- सौ मील तक बडे बडे गॉंवोंको छोडकर और स्थानोंमें मनुष्योंकी कौन कहे मुझे जानवर तक नहीं दिखाई दिये। बहुतसे यात्रियोंने यहॉं तक देखा है कि स्त्रियॉं भूखके कारण अधमरी होकर पडी हुई है और उनके बच्चे उनके शरीरका मास नोच रहे हैं। "

राजकुमार जानके राजत्व कालमें आयरिश राजे-रजवाडे और भी अच्छी तरह यह बात समझने लगे थे कि अब ॲंगरेजोंने हम लोगोंको पूरी तरहसे जीत लिया। जान पागल और दुष्ट था, क्योंकि उसने आयरिश राजे-रजवाडोंकी दाढियॉं नोचवा ली थीं और उनके स्वॉंग निकलवाकर उनकी हॅंसी उडवाना शुरू कर दिया था। इसके उपरात राजा द्वितीय रिचर्डके राज्यासन पर बैठनेके समयतक आयर्लैण्डकी ओर ॲंगरेजोंका उतना ध्यान नहीं था। उन्हीं दिनोंमें स्वामी रूपसे बसे हुए ॲंगरेजोंका आयर्लैण्डमें अच्छा चक जम गया। ऊपर जिन कायदोंका जिक्र किया गया है वे आयर्लैण्डमें रहनेवाले ॲंगरेजोंको पसद नहीं थे और जहॉंतक हो सकता था वे उनका उल्लघन ही करते थे। इसलिए राजा रिचर्डने एक बार फिर (१३९४ ई० में) कुछ बधेज लगानेका प्रयत्न किया, लेकिन उसकी कुछ भी न चली। इसके बाद सातवें

हेनरीने इस कामकी ओर विशेष ध्यान दिया । आयर्लैण्डमें रहनेवाले अँगरेजोंने इससे पहले अपनी एक स्वतत्र पार्लमेंट' बनाई थी । इस पार्लमेण्टका प्रारम्भ तेरहवीं शताब्दीमें ही हुआ था और चौदहवीं शताब्दीके मध्यमें उसे एक अच्छा स्वरूप प्राप्त हो गया था-उसकी खूब उन्नति हुई थी । यद्यपि वहाँ अँगरेजोंकी आबादी थोड़ी ही थी, लेकिन पार्लमेण्ट एक प्रकारसे अँगरेजोंकी घुट्टीमें पडी है इस लिए अपने छोटेसे क्षेत्रमें ही उन लोगोंने अपनी सभाकी अच्छी व्यवस्था कर ली थी, और उस क्षेत्रमें उसी सभाके पास किये हुए नियमोंका पालन होता था । लेकिन यह पार्लमेण्ट लैम्बर्ट सिमनेल (सन् १४८७ ई०) और पर्किन वारबेक (सन् १४९२ ई०) सरीखे धूर्तोंको खूब चिथाडती थी और इग्लैंडके राजाओंको इससे बुरा मालूम होता था । अत इस छोटीसी पार्लमेण्टके कायदे कानून बनानेके अधिकारको परिमित करके उस सभाका महत्त्व घटानेके लिए अँगरेज सूबेदार सर एडवर्ड पाइनिंगने 'पाइनिगस एक्ट' नामक एक एक्ट पार्लमेण्टसे पास करा लिया (सन् १४९४ ई०)। इस एक्टसे यह निश्चित हुआ कि इग्लैण्डके राजा और उसके मन्त्रि-मडलकी पहलेसे सम्मति लिये बिना आयरिश पार्लमेण्टके सामने कोई बिल उपस्थित न हो सकेगा । इस पार्लमेण्टका अधिवेशन भी राजाकी आज्ञाके बिना न हो सकेगा। यह पार्लमेण्ट जो कायदे बनायेगी वे बिना अँगरेज राजाकी स्वीकृतिके ठीक नहीं समझे जायँगे और उसके अनुसार कार्य्य न हो सकेगा। तो भी इस एक्टसे आयर्लैंडवाले अँगरेजोंकी व्यावहारिक स्वतन्त्रतामें विशेष बाधा नहीं पड़ी । जो थोडेसे अमीर उमरा वहाँ स्थायी रूपसे बस गये थे उन्हें आयर्लैंड स्वदेशकी तरह मालूम होने लगा था और उनकी स्वामिभक्तिके बधन ढीले पड गये थे । आयरिश लोगोंके साथ उनका व्यावहारिक सम्बन्ध भी दिन-

पर दिन दृढ होता जाता था। इतने छोटेसे आयर्लैण्डमें उस समय कमसे कम साठ आयरिश राजा थे और वे अपने युद्ध और सधियाँ आदि अपनी ही जिम्मेदारी पर स्वतत्र रूपसे करते थे। उधर अँगरेजी आवादीमें भी तीस अँगरेज सरदार थे और उनमें स्वातन्त्र्यप्रेम अच्छी-तरह भर रहा था। ये सब लोग यद्यपि आपसमें लडते झगडते रहते थे, पर तो भी उनमेंसे कोई अपनी खुशीसे और स्थायी रूपसे अँगरेज राजाका सार्वभौमत्व स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं था। इस लिए उन दिनों आयर्लैण्ड पर अँगरेजी सार्वभौमकी प्रधानता निकृष्ट दशामें आ गई थी। अँगरेजी आवादियों पर आयरिश लोग बराबर आक्रमण किया करते थे और जिसने पहले पहल विदेशी सत्ताको आयर्लैण्डमें घुसाया था उस डरमाट मेकमरो राजाका ही एक वशज सयोगसे इन आक्रमणोंका एक नेता था। लेकिन आठवें हेनरीके इग्लैण्डके राज्यासन पर वैठनेके समयसे (सन् १५०० ई०) फिर रुख वदला। उसने आयर्लैण्ड-पर अपना वहुत कुछ अधिकार जमा लिया। इतना ही नहीं बल्कि रोमन कैथोलिक धर्मका उच्छेद और उसके स्थान पर प्रोटेस्टेंट धर्मकी स्थापना करनेका सकल्प करके उसने आयर्लैण्डमें प्रोटेस्टेंट अँगरेजोंको भरना और कैथोलिक लोगोंकी जमीनें छीनकर उन्हें देना शुरू किया। हेनरी हठी था, पर साथ ही कुछ समझदार भी था। उसने आयरिश राजाओंकी खुशामद करके और उन्हें अँगरेजी पदवियाँ तथा घूस आदि देकर अपनी ओर मिला लिया था। उन लोगोंसे उसने यह भी करार करा लिया था कि राज दरवारका वढिया रग ढग सीखने और अँगरेजी विश्वविद्यालयोंकी उच्च शिक्षाका लाभ उठानेके लिए आयरिश अमीर उमरा अपने लड़कोंको इग्लैड भेजेंगे, अँगरेजी भाषाका व्यव-हार करेंगे और अँगरेजी ढगके कपडे पहनेंगे।

इसी समय आयरिश लोगोंके धार्मिक कष्टोंका आरभ हुआ। इस समय

तक रोमन कैथोलिक धर्मोपदेशकोंने विद्याकला आदिका जो पालन पोषण किया था, उसकी शामत आगई। कैथोलिक लोगोंके मठ उजाड जाने लगे, उनमेंके कीमती सामान लूटे जाने लगे, मठमें रहनेवालोंकी दुर्दशा होने लगी, जिन लोगोंने प्रतीकार किया उन्हें जेलखाने भेजा गया, कैथोलिक पथकी मूर्तियाँ, प्रतिमायें और पवित्र वस्तुयें भरे चौरास्तों पर लाकर जलाई या बेची जाने लगीं। इन सब बातोंके कारण आयरिश लोगोंका जी अँगरेजी अमलदारीसे ऊब गया। लेकिन इन अत्याचारोंसे प्रोटेस्टेंट मतका प्रचार नहीं हुआ। रानी मेरीके राजत्वकालमें रोमन कैथोलिक पथ कुछ चमक उठा था, पर शीघ्र ही उसकी वह चमक जाती रही। रानी एलिजबेथके समयसे इग्लैण्डमें प्रोटेस्टेंट धर्मका प्रसार होने लगा, उसे स्थायीरूपसे आश्रय मिला, और तबसे राजनैतिक विषयोंके साथ धार्मिक पागलपन भी मिल गया जिससे अगरेजों और आयरिश लोगोंका झगडा और भी दूना हो गया। स्काटलैण्डकी तरह आयर्लैण्डवालोंके मनमें भी यदि केवल राजनीतिक बातोंका ही खटका होता तो वह कुछ समयमें निकल गया होता। एक तो धार्मिक बातें सभी देशवालोंको ज्यादा खटकती है। और तिस पर आयरिश लोग धर्मके विषयमें बडे ही निग्रही और हठी थे, इस लिए उन्हें वे और भी अधिक खटकीं।

रानी एलिजबेथके राजत्व-कालमें (सन् १५५८ई०) आगे कुछ दिनोंतक आयर्लैण्डमें अँगरेजी राजनीतिक बातोंको एक विशेष प्रकारका महत्त्व प्राप्त हुआ। इसका कारण यह था कि उस समय इग्लैण्ड और युरोपके अन्य कई राष्ट्र युद्धमें लगे हुए थे। ये युद्ध प्राय धर्ममूलक थे, इसलिए इग्लैण्डके रोमन कैथोलिक शत्रुओंको आयरिश लोग मित्र से जान पडने लगे। आयर्लेण्ड और इग्लैण्डमें केवल सत्तर मीलका अंतर था, इसलिए इग्लैण्ड पर आक्रमण करनेके समय शत्रुके जहाजोंको आय-

इनसे पूर्व जो पोर्चुगीज और डच आदि लोग आये थे उनके धर्म्म-सम्बन्धी व्यवहार और अँगरेजोंके व्यवहारमें जमीन आसमानका फरक है। लेकिन उनकी यह कीर्त्ति वहुत ही हालकी ओर केवल हिन्दुस्तानभरके लिए है। हिदुस्तानभरमें उन्होंने धर्म्मसंबंधी बातोंमें कभी विरोध नहीं किया। सरकारी खजानेसे प्रजाका थोडा वहुत धन यद्यपि आज भी ईसाईधर्म्ममण्डलोंके पालनमें खर्च होता है तो भी पुराने देशी राजाओंकी चलाई हुई वृत्तियॉ और देवस्थान वे अभी तक चला रहे है। इस लिए धार्म्मिक विषयोंमें आयरिश लोगोंके साथ उनके राजकर्म्मचारियोंने जो अत्याचार किये थे उनकी कल्पना हम हिन्दुस्तान-वालोंको होना कठिन है। आयर्लैण्डमें धार्म्मिक विषयोंमें राजकर्म्मचारियोंने जो व्यवहार किया था वह सर्वथा गर्हणीय था। यदि धर्म्मान्धताके कारण फिरे हुए दिमागवाला कोई आदमी कुछ अत्याचार करे, तो उसकी बात निराली है। लेकिन राजकर्मचारियोंका अत्याचार-पूर्ण नियम बनाकर और कडाईसे उनका पालन करके प्रजाकी धार्म्मिक बातोंमें व्यर्थ बलप्रयोग करना बडे ही लॉछनकी बात है। आयरिश लोगोंने अपने धर्म्म-मतकी बॉह कभी नहीं छोडी, और यद्यपि यह बात ठीक है कि उन्होंने कभी पोपका पक्ष लेकर और कभी रोमन कैथोलिक पथीय अँगरेज राजाओंका पक्ष लेकर विद्रोह किये थे तथापि उक्त विद्रोहोंके शान्त होने, अपराधियोंको कडा दड मिलने और शाति स्थापित होने पर भी उनके साथ जो अत्याचार हुआ वह बिलकुल व्यर्थ था। धार्म्मिक विषयोंमें आयरिश लोगोंके साथ व्यवहार करनेका अँगरेज राजकर्म्मचारियोंका जो सिद्धात था उसका मुख्य हेतु यह था कि हरएक उपायसे आयरिश रोमन कैथोलिक लोगोंका दमन हो और उनका कोई आधार न बच रहे, और सब ओरसे विवश होकर वे प्रोटे-स्टेंट धर्म्म स्वीकार कर लें। इस दृष्टिसे उनके विरुद्ध समय समय पर

(सन् १६९२–१७२७ ई०) जो अनेक कायदे बने उन्हें ‘ पोपरी लाज ’ कहते है। उन सबका अभिप्राय नीचे लिखे अनुसार था।

इंग्लैण्ड और आयर्लेण्डमें सब जगह ‘ प्राइमोजेनिचर ’ नियमके तत्त्वका प्रसार था। इस नियमके अनुसार पिताकी सपत्तिका, विशेषतः स्थावर सपत्तिका, मालिक केवल उसका बड़ा लड़का होता था। हम लोगोंके यहाँ ताल्लुकों और जागीरोंके लिए भी यही कायदा है। समाजकी दृष्टिसे देखते हुए इस प्रकारका निर्बंध होनेमें एक प्रकारसे लाभ ही है। लेकिन रोमन कैथोलिक लोगोंके लिए यह कायदा बदलकर निश्चय किया गया था कि, पिताकी सम्पत्तिके सब लड़के बराबर बराबरके मालिक हों और हर एकका हिस्सा अलग अलग बँट जाय। इस कारण जो घराने पहले धनसम्पन्न और बलाढ्य थे, उनके बराबर हिस्से पर हिस्से होते जाते थे और इससे प्रत्येक कुटुंब और व्यक्ति बराबर निर्बल और कंगाल होता जाता था। इस प्रकार जो कुटुंब निर्बल और निःसत्व किये जाते थे, उनके प्रधान पुरुषोंको जब कोई नई सम्पत्ति मिलती थी तब वहाँ भी यह अँगरेजी कायदा उनके मार्गमें अड़चन डालता था। क्योंकि इस नियमके अनुसार यह निश्चित हुआ था कि रोमन कैथोलिक लोगोंको वसीयतनामेके अनुसार विवाहमें, दहेजमें, या और किसी प्रकारके दानके रूपमें कोई सम्पत्ति न मिल सके। यदि वे लोग किसीको कर्ज देते तो उसके बदलेमें उसकी सम्पत्ति खरीद या रेहन नहीं रख सकते थे। रोमन कैथोलिक पिताके लड़केको या उसकी स्त्रीको अपने धर्मको बदल डालनेकी आज्ञा थी, यही नहीं बल्कि उस नियममें ऐसी भी योजना कर दी गई थी कि जिससे धर्म-परिवर्तन करनेसे उसको प्रत्यक्षमें कुछ न कुछ ऐहिक लाभ भी हो। जिस प्रकार पिताको अपनी सम्पादित की हुई सम्पत्तिमेंसे अपने लड़केको कुछ भी नहीं देकर घरसे निकाल देनेका अधिकार

है, उसी प्रकार आयर्लैण्डके रोमन कैथोलिक लडकोंको भी यह अधिकार था कि वे अपनी प्राप्त की हुई सम्पत्ति अपने पिताको न दें। लडकेके प्रतिकूल होनेकी दशामें बापको अपनी सम्पत्ति बेचने या उस पर कर्ज चढ़ानेका अधिकार नहीं था। इसी प्रकार समय समय पर न्यायालयमें अपने पिता पर नालिश करके उसकी सम्पत्ति लिखा लेनेका भी लडकेको अधिकार था। और इस प्रकार लड़का अपने बापसे बलपूर्वक अपना हिस्सा ले सकता था। न्यायालयको इस बातका भी अधिकार था कि, वह अकारण ही इस बातका सदेह करके कि पिता अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर देगा, उस सपत्तिको जब्त करके अपने अधिकारमें रखनेकी आज्ञा दे दे। यदि किसी प्रकार पिताकी सम्पत्ति बढ जाती तो उस दशामें यह समझा जाता था कि दावेका नया कारण खडा हो गया है और इसलिए लडका अपने बापको फिर अदालततक घसीट सकता था। बाप यदि रोमन कैथोलिक होता और मा अपना धर्म्म बदलती तो माँको इस बातका अधिकार होता था कि वह अपने लडकोंको अपने पतिसे लेकर अपने पास रक्खे, और उन लडकोंकी शिक्षा और पालन पोषण आदिके लिए बापकी सम्पत्तिमेंसे उसे मनमानी रकम मिलती थी। अपना धर्म्म परिवर्तित करनेके कारण स्त्री अपने पतिसे भरपूर खर्च माँगती और पाती थी। स्त्री चाहे कितने ही अपराध क्यों न करती, पर यदि वह पतिके असद्व्यवहारके कारण अलग रहना चाहती तो न्यायालयसे (पतिके नाम) उसे रोटी-कपडेका भरपूर खर्च देनेकी आज्ञा होती थी। इन सबसे मुख्य और मुद्देकी बात यह थी कि रोमन कैथोलिक लोगोंका न्याय प्रोटेस्टेंट लोगोंके द्वारा ही होता था।

इस कायदेके कारण रोमन कैथोलिक लोगोंको दूसरी जगहसे सम्पत्ति मिलनेकी तो आशा ही नहीं थी। रहा कामधधा या रोजगार, सो उससे भी

धन प्राप्त करना उनके लिए कठिन था। क्योंकि उन्हें सरकारी नौकरी मिलनी तो एक प्रकारसे असमव ही थी । सभी महकमोंमें उनके लिए रुकावट थी। यहाँतक कि वकालतसरीखे न्यायानुमोदित काम करनेकी भी उनके लिए आज्ञा नहीं थी। प्रोटेस्टेण्ट वकील और वैरिस्टरको इस बातकी शपथ खानी पडती थी कि मैं अपने पास रोमन कैथोलिक पथका मुहर्रिर तक न रक्खूंगा। इस कायदेके मुताबिक रोमन कैथोलिक लोगोंके लिए निजकी पाठशालायें खोलकर शिक्षकका काम करनेकी भी मनाही थी, यहाँतक कि अपने तौर पर घरमें रोमन कैथोलिक शिक्षक रखना भी अपराध माना जाता था। और अगर रोमन कैथोलिक लोग विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करना चाहते तो उसके लिए भी रुकावटका बदोबस्त था। विदेशमें रहते समय, बिना जाने और नियमका ज्ञान न होनेके कारण भूलचूकसे भी यदि किसी पर रोमन कैथोलिक पथकी पाठशालामें पढनेका अपराध प्रमाणित हो जाता तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। यदि कोई यह सोचता कि शिक्षा प्राप्त करनेके लिए एक बार देशत्याग करने पर सदाके लिए बाहर ही रहना पडे तो हर्ज नहीं, पर शिक्षा अवश्य प्राप्त करना, तो यह भी नहीं हो सकता था। क्योंकि यदि किसीकी शिक्षा आदिके लिए कोई विदेशको धन भेजता तो उस पर मुकदमा चलता था। रोमन कैथोलिक पाठशालाओंमें पढना जिस प्रकार अपराध था, उसी प्रकार ऐसी शिक्षामें द्रव्यकी सहायता करना भी अपराध था। ज्योंही खबर लगती थी कि कोई अपना लडका पढनेके लिए विदेश भेज रहा है, त्योंही वह न्यायालयमें घसीटा जाता था और उससे जमानत माँगी जाती थी। यदि यह प्रमाणित हो जाता कि कोई लडका परदेश गया है तो यह प्रमाणित करनेका भार उसके पिता पर रहता था कि वह विद्या पढनेके लिए विदेश नहीं गया है। यदि यह सिद्ध

हो जाता कि किसीने शिक्षाके लिए धन या हुंडी आदि विदेश भेजा है तो उसे कड़ा दंड दिया जाता था, और उसके विरुद्ध जो मनुष्य चुगली खानेवाला होता था, उस मनुष्यको जुरमानेकी रकममेंसे आधा इनाम मिलता था ! किसी भी देशमें हथियार आदि रखनेकी आज्ञा केवल धर्मके आधार पर अवलम्बित नहीं रहती। लेकिन आयर्लैण्डकी बात कुछ निराली ही थी। वहाँ रोमन कैथोलिक लोगोंमें पूर्ण शांति होने पर भी उन्हें अपने पास हथियार रखनेकी आज्ञा नहीं थी, और अधिकारियोंको इस बातका पूर्ण अधिकार था कि वे जब चाहें तब हथियार रखनेके संदेह पर उनके मकानोंकी तलाशी ले लें।

यह प्रजा-पीडन इंग्लैण्डकी धर्मान्धताके कारण था, साथ ही उस धर्मान्धतामें व्यापारविषयक स्वार्थ भी मिल गया था। इन दोहरे पीडनोंके कारण अठारहवीं शताब्दीमें आयरिश लोगोंकी दुर्दशाकी हद हो गई। देशमें परस्पर एक दूसरेको पानीमें देखनेवाले, दो वर्ग थे। उनमेंसे कैथोलिक लोगोंकी संख्या प्रति सैकडे नब्बे और प्रोटेस्टेण्ट आदिकी प्रति सैकड़ा दस थी। लेकिन इन नब्बे प्रति सैकडे लोगोंके हाथमें जोतने-बोने योग्य जमीनका केवल दशांश था और बाकी नव-दशांश उन दस प्रति सैकडे-वालोंके हाथमें था। अर्थात् पहले वर्गके लिए तो जमीन पूरी नहीं होती थी और दूसरे वर्गकी समझमें नहीं आता था कि हम इतनी जमीनका क्या करें। आयर्लैण्डमें दलदलें बहुत हैं, इस लिए जबतक खेतोंमेंसे नहरें न निकाली जायँ तबतक उनमें फसल होना कठिन होता है। लेकिन यह था बड़े खर्चेका काम, और अगर कैथोलिक लोग कर्ज लेकर इसे किया चाहते तो उन्हें जमीन रेहन रखनेका अधिकार न था। वहाँकी जमीनमें आलू और सन खूब होता था, लेकिन आलूमें रोग लग जानेकी संभावना रहती है। अगर किसी बरस रोग लग गया तो पूरा अकाल ही समझिए। सनकी फसल बहुत अच्छी होती थी, लेकिन सन और उसके बने हुए कपड़ोंको

विदेश भेजनेमें बहुतसी रुकावटें थीं। जिन जमीनोंमें फसल नहीं हो सक्ती थी उनमें चारा होता था, अत खेतिहर लोग गोरू पाल लेते थे और यदि उनके पास आवश्यकतासे अधिक गोरू हो जाते तो वे उन्हें विकनेके लिए विदेश भेजते थे। लेकिन इससे इग्लैण्डके खेतिहरोंकी हानि होती थी, अत' यह नियम बना दिया गया कि आयर्लैण्डसे गोरू इग्लैण्ड न भेजे जा सकें। तब आयरिश लोग फालतू गोरू मारकर उनके सुखाये हुए मासका व्यापार करने लगे। किन्तु जब इसमें भी रुकावट डाली गई, तब गोरू पालनेका काम छोड कर आयरिश लोग भेडें पालने लगे। शीघ्र ही वे लोग अच्छा ऊन तैयार करने लग गये, और देशमें ऊनी कपडे बुननेके सैकडों कारखाने खडे हो गये। यह देखकर अँगरेज व्यापारियोंका पेट फिर दुखने लगा। उन्होंने शिकायत करके सन् १६९९ में पार्लमेण्टसे कानून पास करा लिया और उसके अनुसार आयरिशलोगोंको ऊन या ऊनी कपडे बाहर भेजनेकी मनाही हो गई, और उनका यह उत्कृष्ट और जगत्प्रसिद्ध व्यापार बैठने लगा। और और व्यापारोंके सम्बन्धमें भी यही बात हुई। कुछ दिनोंके लिए आयरिश जहाजोंका एक प्रकारसे बहिष्कार हो गया था और यह नियम हो गया था कि उन पर जो माल आवे वह इग्लैण्डके किनारों-पर न उतरने पावे। यदि आयर्लैण्डवाले अन्य देशोंसे व्यापार करना चाहते तो वह भी नहीं कर सक्ते थे। क्योंकि आयर्लैण्ड और समस्त युरोपके बीचमें इग्लैण्ड हाथ पैर पसार कर रास्ता रोके पडा हुआ है। इस लिए आयात और निर्गत दोनों प्रकारके व्यापारोंमे इग्लैण्ड अडचन डालता था और यह दशा हो गई थी कि विना नियमोंका उल्लघन और जबरदस्ती किये आयरिश लोग विदेशसे किसी भी प्रकारका व्यापार नहीं कर सकते थे। इग्लैण्ड मानों ब्रिटिशराज्यके आगेका द्वार था, और आयर्लैण्ड उसके बादकी ड्योढी, इस लिए व्यापारसबधी कानूनकी

सब बातें अँगरेजोंने अपने हाथमें कर रक्खी थीं। सभी व्यवहारोंमें आगेके दरवाजेवाले यजमानको ही लाभ होता था। इस विषयमें कानून बनाकर यहाँ तक सख्ती की गई थी कि ऑगनमें रहनेवाले आयरिश राष्ट्रको इग्लैण्डकी इच्छाके अनुसार ही चलना पडता था जिससे इग्लैण्डकी एक कौडीकी भी हानि न हो। आयर्लैण्डमें पत्थरके कोयले आदि खनिज सपत्तिका पहलेसे ही अभाव है, इस कारण, यह देश अन्य प्रकारके उद्योगोके लिए अनुकूल नही था और उसका सारा दार मदार केवल खेती पर था। लेकिन इग्लैण्डने खेती और व्यापार दोनोंकी ऐसी दशा कर दी थी जिससे आयर्लैण्ट बिलकुल कगाल हो गया। वास्तवमें यदि आयर्लैण्टके व्यापार आदिकी यथेष्ट उन्नति होने पाती तो आयरिश लोग धनवान् हो जाते और सम्पन्नताके कारण उनमे आप ही आप सन्तोष उत्पन्न हो जाता, लेकिन अँगरेज व्यापारियोको अपने स्वार्थके आगे कुछ दिखाई ही नहीं देता। उनके तात्कालिक लाभकी ओर ध्यान देकर राजनीतिज्ञोने भी आयरिश लोगोंके व्यापारमे हाथ डाला, और उन्होने आयरिश लोगोको यह सिखलाया कि तुमलोग जित्त हो और इस लिए यदि तुम्हारे जेता लोग किसी बातके लिए हठ करें तो तुम्हें उनका कहना मान लेना चाहिए। ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रिटिश पार्लमेण्टने व्यापार-विषयक नियम बनाये थे, लेकिन बिना आयरिश पार्लमेण्टमें स्वीकृत हुए उन नियमोंका पालन होना असभव था। इस लिए इग्लैण्डके मन्त्रिमडलने आयरिश पार्लमेण्टको आज्ञा दी कि इन नियमोंको तुम चटपट स्वीकृत कर लो। वास्तवमें आयरिश पार्लमेण्टसे इन नियमोंको स्वीकृत करनेके लिए कहना उतना ही आश्चर्य्यजनक और क्रूरतापूर्ण था जितना किसी मनुष्यसे यह कहना कि तुम अपने गले पर अपने हाथसे छुरी रखकर आत्महत्या कर लो, लेकिन अँगरेजी मन्त्रिमण्डलको यह आज्ञा देनेमें लज्जा नहीं मालूम हुई। इतना

ही नहीं, बल्कि आश्चर्यकी बात तो यह है कि आयरिश पार्लमेण्टने इस भयसे उस आज्ञाका अक्षरशः पालन भी कर डाला कि यदि हम इसे अमान्य करेंगे तो हमारे अस्तित्वमे ही बाधा आ पडेगी। यह विलक्षण और अमानुषी आज्ञा देते समय अँगरेजी मन्त्रिमडलने अपने सदाके नियमानुसार आयरिश पार्लमेण्टके मुँहमें एक शहद भरी उँगली भी लगा दी थी। अर्थात् उसने यह वचन दे दिया था कि यदि ऊनके व्यापारके प्रतिबंधक नियमको आयरिश पार्लमेण्ट स्वीकार कर लेगी तो हम सन और कपासके व्यापारको उत्तेजना और सहायता देंगे। इस शहद-लगी उँगलीको अमृत-रसकी उँगली समझ कर आयरिश पार्लमेण्टने अपने सामने आया हुआ यह जहरका प्याला किसी तरह मुँह बना कर पी लिया। लेकिन जहरने अपना पूरा पूरा काम किया और मन्त्रिमडलके वचनका अमृत बिलकुल निकल गया। आयरिश पार्लमेण्टने कानून बनाकर देशसे बाहर जानेवाले ऊनी कपडों पर इतना भारी कर लगाया कि जितना कर देकर कपडे बाहर भेजनेमें कभी किसी प्रकारका लाभ हो ही न सके। इस प्रकार केवल शब्दोंसे ही नहीं बल्कि कार्य्यरूपसे भी आयरिश लोगोंने तो अपना ऊनका व्यापार अपने हाथसे बद करके दिखला दिया, लेकिन प्रधानमडलने इसका बदला चुकानेके लिए जो वचन दिया था, उसका पालन नहीं किया। उस वचनके अनुसार आयर्लैण्डके बने सन और कपासके कपडोंके व्यापारको उत्तेजना देना तो दूर रहा, उलटे इग्लैण्डने स्काटलैण्ड तथा इग्लैण्डके इन कपडोंके व्यापारियोंको धनकी सहायता देकर आयरिश व्यापारियोंके लिए एक नई सौत खडी कर दी। इसके अतिरिक्त स्वय इंग्लैण्डमें बाहरसे आनेवाले कपडों पर भी इस ढगसे कर लगाया गया जो आयर्लैण्डके लिए बहुत ही बाधक था। इग्लैण्डने जो ये व्यापार-विषयक नियम बनाये थे वे धर्म्मविषयक नियमोंके समान ही अन्याय-

पूर्ण थे। यद्यपि आयर्लैण्डकी भूमिमें भौतिक संपत्ति तथा बहुमूल्य द्रव्य नहीं थे तथापि जो कुछ थे, यदि आयर्लैण्डवाले अबाधित रूपसे उन्हींका लाभ उठा सकते तो उनकी स्थिति साधारणत बहुत अच्छी बनी रहती। आयर्लैण्डके चारों ओर समुद्रतट है और उसपर बहुतसे बंदर है। उसकी खाडियोंके अंदर भी बहुत दूरतक व्यापारी जहाज जा सकते है, ओर इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका आदि देश वहाँसे बहुत दूर नहीं है, इस लिए इस छोटेसे देशके व्यापारियोंके लिए व्यापार करनेका सहजमें ही यथेष्ट अवसर मिल सकता था। लेकिन लगभग सन् १६६३ ई० से ॲगरेज व्यापारियोंकी उस पर ऐसी कडी नजर पडी है कि वे कुछ नहीं कर सकते। जिस तरह धीवर अपने जालमें मछलीको चारों ओरसे घेर कर उसका हिलना-डोलना बंद कर देता है उसी तरह आगेके ३०—३५ वर्षोंमें ब्रिटिश पार्लमेण्टने कानून पर कानून बनाकर और अन्यायकी आवृत्तियों पर आवृत्तियाँ करके आयर्लैण्डके व्यापारियोंका कह वदकर और दिन दिहाडे खून किया। डीन स्विफ्टने अपने एक लेखमें कहा है कि— " आयर्लैण्डमें इतने बंदर होने पर भी इंग्लैण्डने उन्हें न होनेके बराबर कर दिया था। एक सुझाखे आदमीकी आँखें मूँदकर, उसके कानोंमें ठेपी लगाकर, मुँहपर पट्टी चढाकर और हाथ पैर बाँधकर कारागारमें बंद कर देनेसे जो दशा होती है, वही दशा इंग्लैण्डने आयर्लैण्डकी कर दी थी।" देशकी उपजाऊ जमीनके विदेशियोंके हाथमें चले जानेके कारण आयरिश प्रजा निःसत्व तो पहले ही हो चुकी थी, अब उस पर इन व्यापारविषयक नये नियमोंके बनजानेके कारण केवल ऊनके रोजगारसे उदरनिर्वाह करनेवाले प्रायः ५०००० कुटुम्बोंकी दुर्दशा हो गई। प्रजाके निर्धन हो जाने और केवल खेती पर ही उसके अवलंबित रहनेके कारण बार बार दुष्कालकी पीडा होने लगी, और प्रजामें कर देनेकी शक्ति न रह गई। सरकारी खजाना खाली होने लगा, इस लिए

लोकोपयोगी कामोंमें काट-कसर करना आवश्यक हुआ। सारे देशमें जिधर जाओ उधर उदासी ही दिखाई पडती थी। उस समयके जो लेख मिलते हैं उनसे पता चलता है कि विदेशी यात्रियोंको इस देशकी दशा देख कर क्षण भरके लिए यह शका होजाती थी कि क्या वास्तवमें इस देशमें कहीं मनुष्योंकी भी वस्ती है? इस देशके लोग धर्म्म और कानून आदिका नाम भी जानते हैं? अठारहवीं शताब्दीके पहले दस बीस वर्षोंमें सनके व्यापारको फिरसे उत्तेजना देनेका थोडा बहुत प्रयत्न हुआ। लेकिन उस समय न तो देशमें इतना धन ही बच गया था कि कोई व्यापार अच्छी तरह खडा किया जाता और न किसीमें कुछ हौसला ही रह गया था। आयरिश पार्लमेण्टने सन् १७०३, १७०५ और १७०७ ई०में सर्वसम्मातिसे प्रस्ताव स्वीकृत करके लोगों पर प्रकट किया कि आयर्लैण्टके लोग केवल अपने ही देशके बने हुए कपडे पहनें और अपने घरमें कोई ऐसा सामान न रक्खें जो आयर्लैण्डका बना हुआ न हो। क्यों कि स्वदेशी मालको उत्तेजना देनेसे गरीबोंका पेट भरता है और राजकीय दृष्टिसे उसमें राज्यका भी लाभ होता है। सन् १७०७ ई०में इस निश्चयके अनुसार स्वय आयरिश पार्लमेण्टके सदस्योंने खुले आम विदेशी मालका बहिष्कार करके कसम खाई, और यह कहा कि हम लोग तभी सच्चे आयरिश होंगे जब इस शपथका पालन करेंगे। उसी अवसर पर डीन स्विफ्टने देशकी वर्त्तमान स्थितिका ध्यान रख कर खूब तीव्र और कटकडाते हुए लेख लिखे। आयर्लैण्टमें बहिष्कारका उपदेश उसीने आरभ किया। वह जैसा विनोदी और विद्वान् था वैसा ही बेधक लिखनेवाला भी था, इस लिए उसके लेख अँगरेजोंको बहुत खटके। देशके लोगोंके स्वाभिमानको उत्तेजित करनेमें उसकी लेखनीने बडा काम किया। परन्तु इस प्रकारके प्रयत्नोंका तुरत और पूरा पूरा उपयोग नहीं हो सकता और इसी लिए आयरिश

लोगोंको अठारहवीं शताब्दीके आरभके २५–३० बरसों तक दरिद्रता-रूपी अग्निमें जलते रहना पडा । सन् १७२८ में शेरिडन नामक एक लेखकने लिखा था कि " आयरिश लोगोंकी दरिद्रताकी वास्तवमें परमावधि हो गई । उनके घरोंमें और कूडेखानोंमें कोई फर्क नहीं दिखाई देता । अपने गोरुओंके रक्त और खेतके कद-मूल आदि पर ही उनका उदरनिर्वाह होता है ।" अठारहवीं शताब्दीके प्राय मध्यभागमें दरिद्रता, दुष्काल और ज्वर आदिकी भयकर आपत्तियोंके कारण आयर्लैण्डकी प्राय चार लाख प्रजा मृत्यु-मुखमे जा पडी । गॉवके गॉव उजाड और बे-चिराग हो गये । ऐसे अवसर पर जिन लोगोंके पास थोडा बहुत धन था वह उन्हीके लिए पूरा नहीं होता था, तब फिर वे उसमेंसे कहॉ-तक गरीबोंको सहायता देकर उनके प्राण बचा सकते थे । खेतीके काममें तो अँगरेज लोग कैथोलिक लोगोंके प्रतिद्वद्वी थे ही, लेकिन व्यापार और शिल्प आदिके कामोमें उन्होंने प्रोटेस्टण्ट लोगोंके भी पेट पर पैर रख दिया । बहुत ही साधारण बुद्धिका आदमी भी इस बातको अच्छी तरह समझ सकता था कि हमने प्रोटेस्टण्ट लोगोंको आयर्लैण्डमें सदाके लिए बसाया है, और उनके द्वारा कैथोलिक लोगोंको दबानेका हमारे पूर्वजोंका जो उद्देश्य था उसे सिद्ध करनेके लिए कमसे कम प्रोटेस्टेण्ट लोगोंमें तो सतोष और समाधान रहना चाहिए । लेकिन कुछ समय जाने पर अँगरेजोंकी दृष्टि इतनी सकुचित हो गई कि कैथोलिक लोगोंकी तरह बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट भी उन्हे शत्रुसे जान पडने लगे । इस प्रकार राजनीतिज्ञतापर द्रव्य-दृष्टि और स्वार्थसाधुताकी भारी तह चढाकर अँगरेजोंने आयर्लैण्डकी हितकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया और जहॉ हाथ पडा वहीं आयरिश लोगोंको अत्याचार करके रगड डाला । इन सब कारणोंसे अठारहवीं शताब्दीके मध्यभागमें आयरिश लोगोंकी जितनी हीन दशा हो गई थी, उतनी हीन दशा इन सुधरे हुए और सभ्य

कहलानेवाले राजकर्त्ताओंके शासनके इतिहासमें और किसी भी राष्ट्रकी नहीं दिखलाई पडती।

लेकिन क्या व्यक्ति और क्या राष्ट्र जब किसीका दु ख चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब यह निश्चय समझना चाहिए कि अब उसके सुखके उदय होनेका समय बहुत ही निकट आ गया है। "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" यह केवल अद्भुत कवि-कल्पना ही नहीं है, बल्कि ससारके नित्य प्रतिके अनुभवकी बात है। जगत्में स्थिति परिवर्त्तन करनेकी विधाताकी ऐसी विचित्र योजना है कि सुखका मूल दु खमें और दु खका मूल सुखमें छिपा हुआ होता है। प्राणी ज्यों ही जन्म लेता है, त्यो ही उसमें उसकी मृत्युको लानेवाले रोगका बीज भी उत्पन्न हो जाता है, और एक प्राणीकी मृत्युका अमगल प्रसग किसी दूसरे प्राणीके जन्मका सुमुहूर्त होता है। सुखदु खात्मक स्थितिके ये परिवर्त्तन आपसमें एक दूसरेके साथ बिलकुल मिले जुले हुए हैं और उनके इस प्रकार मिले जुले हुए होनेके प्रमाण इतिहासमें बहुत-ही अच्छी तरह देखनेको मिलते है। आयर्लैण्डके लोगोंके साथ व्यवहार करते हुए केवल अपने हितका ध्यान रखकर अँगरेजोंने जो कानून बनाये थे, उनका परिणाम यह हुआ कि, निरुपयोगी होनेके कारण अतमें उन्हें रद करना पडा। यद्यपि पीडित होनेके कारण आयरिश लोग पिस गये थे, तो भी उनका सर्वस्व नष्ट नहीं हुआ और उलटे इससे उनमें राष्ट्रीयता उत्पन्न होनेमें सहायता मिली। यद्यपि पीडनके कारण सैकडों आयरिश कुटुब घर छोडकर विदेश चले गये और इसमें सदेह नहीं कि पहले इससे आयर्लैण्डकी प्रत्यक्ष हानि ही हुई, लेकिन जो लोग अपना देश छोडकर फ्रास और अमेरिका आदि देशोंमें चले गये थे, उन्हें वहाँ सुख मिला, अपने गुणोंके विकासका यथेष्ट अवसर पाकर वे लोग धनवान् हो गये, वीरता तथा राजनीतिज्ञता आदि विषयोंमें अच्छा नाम पैदा करके

उन्होंने विदेशमें स्वदेशका मुख उज्वल किया और इससे भी अधिक महत्त्वकी बात यह हुई कि विदेशमें रहकर भी उन लोगोंने बराबर स्वदेशकी चिन्ता रक्खी, राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके सम्बधमें स्वदेशके लोगोंको खुले दिलके उद्गार सुनाकर उन्होंने उनका धीरज कायम रक्खा, और अपने देशके सब प्रकारके आन्दोलनोंमें उन्होंने धनकी पूरी पूरी सहायता दी। देशत्याग करनेवाले आयरिश लोगोंकी कुछ दिनोंमें विदेशमें इतनी धाक बढ गई कि लोगोंको इस बातका भय होने लगा कि उनके कारण कहीं इंग्लैण्ड पर पर-चक्र न आ जाय—कोई विदेशी राजा इग्लैण्ड पर आक्रमण न कर दे और देश ॲंगरेजोंके हाथसे निकल न जाय। फ्रास और अमेरिकामें जो हजारों कैथोलिक जा रहे थे, वे वहाँ चुपचाप नहीं बैठे थे। राजा तृतीय जार्जके राजत्व-कालमें जब इग्लैण्डका इन दोनों राष्ट्रोंके साथ वैर हुआ तब इग्लैण्डको द्वेषके उन विप-वृक्षोंके फल चखने पडे जो असतुष्ट और दु खी आयरिश कैथोलिक लोगोंने इन देशोंमें जाकर लगाये थे। अमेरिकामें ॲंगरेजी अमलदारीके विरुद्ध विद्रोह हुआ और अमेरिकन लोगोंने पूर्ण स्वतन्त्र स्वराज्य स्थापित कर लिया (सन् १७७६ ई०)। इस काममें आयरिश लोगोंने अमेरिकावालोंको खूब सहायता दी। जो लोग तीन चार पीढीसे अमेरिकामें ही बसे हुए थे और जिन्हें वहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता तथा समान आधिकारका सुख अबाधित रूपसे मिला था, वे यदि अमेरिकाको ही अपनी दूसरी जन्मभूमि समझने लगें और उसके उद्धारमें सहायता दें तो इसमें आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है। लेकिन ॲंगरेजोंके विरुद्ध अमेरिकन लोगोंकी सहायता करनेमें आयरिश लोगोंका एक और भी हेतु था, और वह यह कि अमेरिकाका उदाहरण देखकर आयरिश लोग भी आयर्लैण्डमें स्वतन्त्र होनेका उद्योग करें और अमेरिकन लोग कृतज्ञतापूर्वक उन्हें सहायता देकर मित्र-ऋणसे उऋण हों। अमेरिकामें स्वतन्त्रताके लिए

युद्ध होनेके उपरान्त शीघ्र ही फ्रासमें भी राज्यक्रान्ति हो गई और नेपोलियन बोनापार्टकी सेनामें बहुतसे आयरिश भर्त्ती हो गये। आयर्लैण्ड पर इन दोनों ही आन्दोलनोंका प्रभाव पडा।

देशमें रहकर जिन कैथोलिक लोगोंने 'पीनल कोड' का कष्ट भोगा था उनके मन उस कष्टके कारण कठोर और गभीर हो गये थे। जिन कानूनोंके विषयमें यह समझा जाता था कि इनसे प्रजाको दहशत होगी उन कानूनोंने कुछ दिनों तक लोगोंको धैर्यकी ही शिक्षा दी, और कायदे-कानूनोंके विषयमें साधारणत जो भीतिमूलक आदर उत्पन्न होना चाहिए था वह न होकर उसके स्थान पर लोगोंमें उससे घृणा करने और उसकी अवमानना करनेकी बुद्धि उत्पन्न हुई। न्यायमें सहायता देनेवाले कानूनोंके विषयमें जिस प्रकार आदर उत्पन्न होता है उसी प्रकार अन्यायमें स्पष्ट सहायता देनेवाले कानूनोंके प्रति अनादर होना भी स्वाभाविक ही है। आयरिश पीनल कोडका एक उद्देश्य कैथोलिक लोगोंको प्रोटेस्टण्ट बनाना भी था, लेकिन यह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, उलटे भावुक लोग दिन पर दिन कैथोलिक पथके अधिक अभिमानी होने लगे और आगेसे और भी अधिक अपने धर्मगुरुओंके कहनेमें रहने लगे। यह धर्मनिष्ठा देखकर प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमे कैथोलिक लोगोंके प्रति आदर होने लगा और बहुतसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंने तो कैथोलिक पथ ही स्वीकार कर लिया। धर्मोपदेशका कार्य करना पीनल कोडके अनुसार अपराध था, लेकिन कैथोलिक लोग अपने धर्मोपदेशकोंको प्राणसे भी बढकर समझने लगे। और सबसे बढ़कर मजेकी बात यह हुई कि जो प्रोटेस्टेण्ट लोग कैथोलिक लोगों पर चौकीदार या पहरेदार बनाकर बैठाये गये थे, स्वय उन्हीं लोगोंके मनमें कैथोलिक लोगोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गई। यद्यपि प्रोटेस्टेण्ट मतके सुसस्कृत नेताओंको अपने धर्मका उचित अभिमान था, परन्तु साथ ही वे यह भी समझते थे कि

इस प्रकार अन्याय और अत्याचारसे धर्म्मपरिवर्त्तन करानेके नियम बनाना जैसा लज्जास्पद है, वैसा ही बलपूर्वक धर्म्म-परिवर्त्तन कराके लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट बनाना उस धर्म्मके लिए भूषणप्रद भी नहीं है और न इस प्रकार उस धर्म्मका बल ही बढ सकता है । इसी विचारसे उन लोगोने स्पष्ट रूपसे पीनल कोड पर टीका-टिप्पणी करना प्रारभ कर दिया। प्राय. इन्हीं दिनों व्यापारसबधी कानूनों पर भी विचार होने लगा। व्यापारके कामोंमें प्रोटेस्टेंट लोगोंको कैथोलिक लोगोंकी आवश्यकता मालूम होने लगी और वे यह बात समझने लगे कि इग्लेण्डके मत्सरमें हम दोनों समान रूपसे बलि पड रहे हैं। इस तरह प्रोटेस्टेंटोंमें यद्यपि रोमन कैथोलिक लोगोंके विषयमें सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी तथापि आरम्भमें प्रोटेस्टेण्ट नेताओंमें इस विषयमें बहुत कुछ मतभेद था कि उन्हें सब प्रकारसे बधनमुक्त करके समान अधिकार दिये जायँ या नहीं। लार्ड चार्लमाट सरीखे राजनीतिज्ञ भी यह कहनेके लिए तो तैयार थे कि प्रोटेस्टेण्टों और प्रेसबिटेरेनियनोंका भेद-भाव दूर कर दिया जाय और उन्हें समान अधिकार दिये जायँ, लेकिन कैथोलिक लोगोंको अधिकार देनेके लिए वे भी तैयार नहीं थे । हाँ, ग्रटन सरीखे दूरदर्शी देशभक्तोंके मनमें यह बात अवश्य ही अच्छी तरह बैठ गई थी कि जब तक कैथोलिक, प्रोटेस्टेण्ट और प्रेसबिटेरेनियन, सबको नागरिकताके समान अधिकार न दिये जायँगे तब तक राष्ट्रीयताकी सच्ची कल्पना कभी पूर्ण नहीं हो सकती । वे सोचते थे कि मुट्ठी भर प्रोटेस्टेण्ट लोग स्वदेशमें कैथोलिक समाजको अपना शत्रु बनाकर अँगरेजोंसे कैसे जूझेंगे ? राष्ट्रीयताका ठीक ठीक स्वरूप ग्रटनने अच्छी तरह समझ लिया था। उसे विश्वास था कि मनुष्यमें जहाँ राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय होता है, वहाँ छोटे मोटे फुटकर भेद भाव स्वय ही नष्ट हो जाते हैं । उस समय धीरे धीरे कई ऐसे प्रोटेस्टेण्ट नेता खडे हो गये थे जो रोमन

कैथोलिक लोगोंको भी नागरिकताके समान अधिकार देनेके पक्षमें थे। प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक दोनों ही पीनलकोड और व्यापारसबधी कानून रद करानेकी आवश्यकता समझने लगे थे। लेकिन आयर्लैण्डकी पार्लमेण्ट बहुत ही कमजोर और असमर्थ थी। उसके सभी सूत्र मत्रिमडलके हाथमें थे। यहाँतक कि यह मत्रिमडल उस पार्लमेण्टसे आयरिश लोगोंके हितके विरुद्ध बातें भी करा लेता था। इस बातसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमें ग्लानि उत्पन्न हुई और उनका दृढ विश्वास हो गया कि आयर्लैण्डके इन दोनों वर्गोंके सभी दुःखोंका मूल आयरिश पार्लमेण्टकी परतत्रतामें है। लेकिन पार्लमेण्टमें केवल प्रोटेस्टेण्ट लोग रहते थे, कैथोलिक लोगोंको उसके सभासद होनेका अधिकार ही नहीं था। फलत पार्लमेण्टकी स्वतत्रता स्थापित करनेकी जिम्मेदारी केवल प्रोटेस्टेण्ट लोगों पर ही पडी। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दीके अतमें आयरिश लोगोंके दुःखान्धकारके नष्ट होने और धार्मिक सहानुभूतिके अरुणोदयसे दिशाओंके प्रकाशित होनेका समय आ गया और राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व आयर्लैण्डमें बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके हिस्सेमें पडा। इस विलक्षण घटनाको देखकर ईश्वरके अघटित-घटना-पटुत्व पर जितना आश्चर्य्य किया जाय उतना थोडा है।

उस समय इग्लैण्डको आयर्लैण्ड पर विदेशियोंका चक्र चल जाने और उसके हाथसे निकल जानेका इतना डर हो गया था कि उसके मनमें यह बात अच्छी तरह जम गई कि यदि स्वय आयर्लैण्डके प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी सहायता न मिलती रहेगी तो केवल अँगरेजी सेना और जहाजोंकी सहायतासे विदेशियोंके आक्रमण रोकना और रोमनकैथोलिक लोगोंका विद्रोह शान्त करना असभव हो जायगा। इस लिए अधिकारियोंने आज्ञा दी कि प्रोटेस्टेण्ट स्वयं-सैनिकोंकी पलटने तैयार की

जायँ और इस आज्ञासे लाभ उठाकर प्रोटेस्टंट लोगोंने अपने पचास हजार सैनिकोंकी एक अच्छी सेना खडी कर ली । उस समय इन स्वयसेवक सैनिकोंके आदोलनसे आयर्लैण्डको बहुत लाभ पहुँचा। वास्तवमें विदेशियोंके आक्रमणकी आशंका तो ठीक नहीं उतरी, लेकिन आयरिश प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमें यह समझकर कि, हम जब चाहें तब अपने ही देशमें पचास हजार स्वयसेवकोंकी सेना एकत्र कर सकते है, स्वतत्रतासबधी विचारोंका अकुर सहजमें जम आया। प्रोटेस्टेण्ट लोग जिस प्रकार कैथोलिक लोगोंको अपने अधिकारमें रखना चाहते थे, उसी प्रकार अँगरेजोंकी अधीनतासे निकलकर स्वतत्र होनेके भी वे इच्छुक थे । आयर्लैण्डमें आयरिश लोगोंकी जो एक पार्लमेण्ट थी, उसमें प्रोटेस्टेण्ट आयरिशोंकी ही अधिकता थी, अत उन लोगोंकी इच्छा हुई कि हम अपनी पार्लमेण्ट स्वतत्र करके अपना राज्य स्वय चलावें और जिस 'पाइनिगस एक्ट' के कारण अँगरेजी पार्लमेण्टको प्रधानता मिली थी उसे तोड दें। उन दिनों चार्लमाट, ग्रटन, फ्लड आदि राजनीतिज्ञ आयरिश पार्लमेण्टके नेता थे, इस लिए उन लोगोंने स्वयसेवकोंकी सेनाका लाभ उठाकर आयरिश स्वतत्रताके अधिकारका प्रश्न स्पष्ट रूपसे उठाया । अमेरिकाका ताजा उदाहरण आँखोंके सामने खडा चमकता था, इस लिए अँगरेजी मत्रिमडल आयरिश लोगोंका अधिकार अस्वीकृत करनेके रास्ते नहीं गया, और अतमें सन् १७८२ में अँगरेजी पार्लमेण्टने निश्चय कर दिया कि आयरिश पार्लमेण्ट स्वतत्र है और अपने देशके सभी राजकार्य स्वतंत्रतापूर्वक चलानेका उसे अधिकार है।

अनेक प्रकारसे आयरिश लोगोंके इतनी अवनत स्थितिमें पहुँचनेपर भी उनका पल्ला किस प्रकार भारी हो गया, इसके दो एक बाह्य कारण ऊपर बतलाये जा चुके है, लेकिन इस कार्य्यके भीतरी

कारण भी मनन करनेके योग्य है। उस समय आयरिश समाजके एक भागकी स्थिति यद्यपि शोचनीय थी, तथापि नेता होनेके योग्य समाजका जो दूसरा भाग था, उसकी स्थिति अच्छी थी, और एक भागके अवनत स्थितिमें होनेके कारण, अच्छी स्थितिवाला उसका दूसरा भाग और भी अधिक स्पष्ट दिखलाई देता था। इससे कुछ ही पहले स्विफ्ट और वर्कले जैसे विख्यात लेखक और तत्त्ववेत्ता, तथा पार्नेल सरीखे कवि आयर्लैण्डमें हो गये थे। सुप्रसिद्ध हेनरी ब्रुक डब्लिनमें समाचारपत्रका काम करता था। डब्लिनका तत्त्वज्ञानप्रसारक मण्डल अपनी कीर्तिके शिखर पर इसी समय पहुँचा था। इसके अतिरिक्त सन् १७३१ और १७४४ के मध्यमें दो और विद्यावर्द्धिनी मण्डलियाँ स्थापित हो गई थीं। उनमेंसे एकका नाम 'डब्लिन सोसाइटी' था। उसने आयर्लैण्डमें खेती, शिल्प और ललित कलाकी उन्नति करनेमें बहुत परिश्रम किया था। राज्यक्रांति होनेसे पहले जिस प्रकार सब तरहका ज्ञान प्राप्त करनेकी अति उत्कट इच्छा फ्रांसके जनसमाजमें दिखलाई पड़ी थी, सन् १७५० के लगभग प्राय उसी प्रकारकी इच्छा आयरिश लोगोंमें भी दिखाई पडने लगी थी। अठारहवीं शताब्दीके पहले तीस चालीस वर्षोंमें आयर्लैण्डमें चित्रकलाकी भी अच्छा उन्नति हुई थी और उस समय लंडनके चितेरोंमें एक आयरिश ही प्रधान था। गिरजों और मकानोंके बनानेका काम उन दिनों वेहद बढ़ गया था और उस मर आयर्लैण्डकी स्वदेशी शिल्पकलाकी छाप दिखाई पडती थी। तत्त्ववेत्ता बर्कले प्राय उन्हीं दिनों बडे जोरोंसे इस मतका प्रतिपादन करने लग गया था कि देशके शिल्प आदिको स्वावलंबनके तत्त्व पर बढ़ाना चाहिए, और आयरिश कारीगरीको दबानेवाले कानूनोंके रहते हुए भी उनमेंसे अपना सिर ऊपर उठाना चाहिए। लोगोंको उसका यह उपदेश पसंद भी आने लगा था। धार्मिक विषयोंमें यद्यपि कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंमें और उसी

प्रकार प्रोटेस्टेण्ट तथा प्रेसबिटेरेनियनोंमें फूट थी, तो भी शिक्षाके सबन्धमें सब लोगोंमें समान चिता दिखाई देती थी।

आयर्लैण्डके राजकार्य्यका व्यय इग्लैण्डके राजा उसीकी आयमेंसे करते थे। यह व्यय जबतक आयमेंसे ही निकलता आता था, तबतक उनमें आयरिश पार्लमेण्टको धता बतानेकी प्रवृत्तिका रहना साहजिक था। लेकिन जब यह व्यय वहाँकी आयसे बढने लगा तब आयरिश लोगोंपर करका नया बोझ लादनेकी आवश्यकता पडने लगी। अबतक प्राय यही होता था कि, जहाँतक हो सके पार्लमेण्टका अधिवेशन न किया जाय, पर अब वह बात जाती रही और उसके एकके बाद एक लगातार अधिवेशन होने लगे। क्योंकि उन दिनों आयर्लैण्डमें जबतक लोक-नियुक्त पार्लमेण्ट कोई कर नहीं लगाती थी तबतक उसका वसूल करना बे-कायदे माना जाता था। अर्थात् नया कर स्वीकार करना या न करना पार्लमेण्टके हाथका नियमानुमोदित अधिकार था। इस लिए अपनी स्थिति सुधारने और अपनी खोई हुई स्वतत्रता फिरसे प्राप्त करनेके लिए इस अधिकारका राजाके विरुद्ध उपयोग करनेकी इच्छा पार्लमेण्टके सदस्यों और आयरिश राजनीतिज्ञोंके मनमें आप-ही-आप उत्पन्न होने लगी। इसके सिवाय आयरिश और अँगरेज लोगोंके बीचके स्वाभाविक हित-शत्रुत्वके या स्वार्थ-हानिके नये नये मुद्दे भी उनके ध्यानमें आने लगे। आयरिश लोग जो कर देते थे उसमेंका बहुत सा धन अनेक खाली बैठे हुए अँगरेजों या अँगरेज अधिकारियोंको पेन्शन या पुरस्कार-स्वरूप दिया जाता था। सरकारी ओहदों और बडी बडी तनख्वाहोंकी जगहोंके सबन्धमें हिन्दुस्तानियों और अँगरेजोंमें आजकल जिस प्रकारका झगडा चल रहा है, उसी प्रकारका झगडा अट्ठारहवीं शताब्दीमें आयर्लैण्डमें भी था। अँगरेज अधिकारियोंकी सत्ता बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको बहुतसी बातोंमें अत्याचार और अन्याययुक्त जान पडने लगी।

है यह समझने लगे कि इस सत्ताको नियन्त्रित करना चाहिए और इस सम्बन्धमें झगडनेके लिए केथोलिक लोगोंको सुभीते देकर उनकी भी सहायता लेना आवश्यक है। दोनों पक्षोंके मनमें यह विचार आने लगा कि हम लोग एक ही नावमें हैं, इस लिए हमें नावमें बैठकर आपसमें नहीं झगडना चाहिए और दोनों धर्म्मोंके लोगोंको यह नाव खेकर अपने इष्ट और प्रिय स्वतत्रताके किनारे तक ले चलनी चाहिए। इसी लिए उन दिनों केथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों ही धर्म्मोंके लोग राष्ट्रकी स्वतत्रताके सम्बन्धमें समान उत्सुकतासे बोलने और लिखने लगे।

उन दिनों कुछ समयके लिए आयरिश राष्ट्रको उज्वल स्वरूप प्राप्त हो गया था। सन १७८२ ई० में आयरिश पार्लमेण्टको स्वतत्रता मिलनेके कुछ पहलेसे स्वतत्रता मिलनेके दस पॉच बरस बाद तक आयर्लैण्डके यशकी दुदुभी चारों ओर बजती रही। यद्यपि यह केवल क्षणभर ठहरनेवाली बिजलीकी चमक थी, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उसने देखनेवालोंकी ऑखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर दी थी। देशमें विद्या, कला, विचारोंकी उदारता, बधुप्रेम, धैर्य्य, साहस और वक्तृत्व आदि सभी गुण एकही समयमें बहुत ही उन्नति पर आये हुए दिखलाई देते थे। सब इतिहासकारोंने उस समयका नाम 'ग्रटनकी पार्लमेण्ट' रक्खा है और वह यथार्थ भी है। ग्रटन किस ढगका राजनीतिज्ञ था, यह बात पाठकोंको उसके उस चरित्रसे मालूम हो जायगी जो इस पुस्तकके दूसरे भाग—चरित्रमालामें दिया हुआ है। यहॉ इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि उसके समान शुद्ध और तेजस्वी राजनीतिज्ञ स्वय इग्लैण्डमें भी बहुत थोडे थे। इन दस बीस वर्षोंमें आयर्लैण्डके भाग्योदयकी जो लहर चारों ओरसे उठी थी उसके सिरपर ग्रटन एक तारेकी तरह चमकता था। और यदि उसकी बराबरीके नहीं तो प्राय उससे कुछ ही कम फ्लड, हाकिन्सन, पानसनबी आदि नाम लेने योग्य राजनीतिज्ञ भी उस समय

करे । क्योंकि इस प्रस्तावके पास किये बिना नियमकी दृष्टिसे उस प्रस्तावका कुछ मूल्य ही नहीं था जो ब्रिटिश पार्लमेण्टने पास किया था । इस लिए कोई ऐसी कार्रवाई करना आवश्यक था जिसमें आयरिश पार्लमेण्टके ही लोग इस पक्षमें आ मिलें और उस आत्मघाती प्रस्ताव पर अनुकूल सम्मति दे दें । वास्तवमें यह बड़ा ही विकट प्रश्न था । लेकिन पिटने अंतमें उसको हल कर ही डाला। आयरिश उमराकी सभा हाउस आफ लार्ड्सके सबन्धमें उसे कोई चिन्ता नहीं थी । क्यों कि उसके सब सभासद पहलेसे ही उसकी मुट्ठीमें थे । केवल आयरिश हाउस आफ कामन्समें ही उसे बहुमत प्राप्त करना था, इस लिए उसके सभासदोंको उसने किसी प्रकारका लालच देनेमे जरा भी कमी नहीं की । उस समय सम्मतियोका खूब नीलाम हुआ। पिटने जो काम हाथमें लिया था वह बहुमूल्य था, इस लिए जिसने अपनी सम्मतिका जो कुछ मूल्य माँगा, उसने उसे वही दिया । लेकिन केवल पार्लमेण्टमें ही बहुमत प्राप्त कर लेनेसे काम न चल सकता था, उसके लिए देशके लोकमतके अनुकूल होनेकी भी आवश्यकता थी, इसलिए रोमन कैथोलिक लोगोंको धार्मिक स्वतन्त्रताका लालच देकर प्राय. आधे कैथोलिक नेताओंको उसने अपने वशमें कर लिया । और इस प्रकार सन् १८०० में आयर्लैण्डकी वह स्वतन्त्रता जो अट्ठारह वर्ष पहले बहुत कुछ उसके पल्ले पड चुकी थी, दुर्दैवके पलटा खानेसे, नष्ट हो गई ।

उस समय यह युक्तिवाद उपस्थित किया गया था कि आज तक आयरिश लोगोंको जो दु ख भोगने पडे है वे सब इन दोनो पार्लमेण्टोंके एक हो जानेसे नष्ट हो जायँगे, आयरिश लोगोंको अँगरेजोंके सब अधिकार मिल जायँगे और अँगरेजी पार्लमेण्टकी प्रत्यक्ष देखरखमें उनकी खूब उन्नति होगी । लेकिन आगेके सौ वर्षोका अनुभव इससे कुछ भिन्न ही प्रकारका प्रमाणित हुआ । यदि हम

इस बीचके अर्थात्, उन्नीसवीं शताब्दीके आयर्लैण्डके इतिहासको विशिष्ट आन्दोलनोंका इतिहास कहें तो कोई बाधा न होगी। पहले तीस वर्षोंमें जो मुख्य आन्दोलन हुआ वह रोमन कैथोलिक लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके समान अधिकार दिलानेके लिए था, और सन् १८२९ ई० में प्रसिद्ध आयरिश देशभक्त डेनियल ओकानेलके परिश्रम-से उसमें सफलता हुई। इसके बाद रोमन कैथोलिक लोगोंकी स्थितिका सुधरना आरभ हुआ और यह कहनेमें कोई हानि नही है कि सैकडों वर्षोंसे कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टका जो धर्म्ममूलक भेद आयर्लैण्डको कष्ट दे रहा था वह आज प्राय नष्ट हो गया है। इसके उपरान्त दूसरा बडा आन्दोलन उस विपत्तिके निवारणके सम्बन्धमें था जो आयर्लैण्डकी सब जमीन प्रोटेस्टेण्ट जमींदारोंके अधिकारमें चले जाने-के कारण कैथोलिक लोगों पर आपडी थी। काश्तकारोंका लगान जो एकबार निश्चित हो चुका है, वही बराबर बना रहे और कभी बढाया न जा सके, जब तक वे लगान देते रहें तब तक वे ही जमीनके मालिक समझे जायँ, केवल जमींदारोंकी इच्छाके कारण ही उनकी जमींदारी नष्ट न हो सके, वे लोग अपने खर्चसे जमीनमें जो सुधार करें उस सुधारके कारण लगान बढाया न जा सके और यदि उन्हें जमीन छोडनी पडे तो उनके किये हुए सुधारके बदलेमें उन्हें हरजाना मिले, आदि आदि बातोंके लिए वह आन्दोलन था, और ये सब सुभीते अबतक नहीं हुए है, इसलिए वह आन्दोलन अभीतक जारी है। इन सबसे अधिक महत्त्वका आन्दोलन 'होमरूल' सबन्धी था। सन् १८०० से १८३० तक आयरिश पार्लमेण्टको स्वतत्र करनेके लिए जो प्रयत्न हुआ था, वह विशेष उल्लेखयोग्य नहीं है। लेकिन जबसे आयर्लैण्ड इग्लिश पार्लमेण्टकी देखरेखमें गया तबसे वह बरा-बर उसी तरह क्षीण होता जाता था जिस तरह कोई लडका अपनी

सौतेली माँके हाथमें पडजानेसे क्षीण होने लगता है। जब रोमन कैथोलिक लोगोंको समान अधिकार देनेका बिल ब्रिटिश पार्लमेण्टमें पास हो गया तब डेनियल ओकानेलने आयरिश पार्लमेण्टका प्रश्न हाथमें लिया। इस विषयमें दस बारह वर्षतक लगातार आन्दोलन होता रहा और यह प्रश्न अनेक प्रकारसे ब्रिटिश पार्लमेण्टके सामने उपस्थित किया गया, लेकिन फल कुछ भी न हुआ। ओकानेल तथा राष्ट्रीय पक्षके और और लोगोंको जेल जाना पडा (सन १८४४ ई०); इतना ही नहीं, बल्कि ओकानेलके जरासी नीति बदलते ही उसकी जन्मभरकी प्राप्तकीहुई लोकप्रियता भी नष्ट हो गई। इस आन्दोलनको 'रिपीलका आन्दोलन' कहते है। यही आन्दोलन आगे चलकर सन् १८७४ से होमरूलके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पहले लैण्ड लीग और फिर नेशनल लीग नामकी सस्था स्थापित हुई, आयर्लैण्डमें बहिष्कारकी घूम मच गई और बहुत दिनोंतक सब सत्ता लैण्ड लीगके अधिकारियोंके हाथमें रही। ब्रिटिश पार्लमेण्टमें जो आयरिश सभासद थे उन्हें रुकावट डालनेकी कुजी मिल गई थी, उसीका उत्तम उपयोग करके उनलोगोंने ब्रिटिश पार्लमेण्टमें इतना बखेडा मचाया कि अँगरेज लोग समझने लगे कि आयर्लैण्डको स्वतत्र पार्लीमेण्ट दे देना ही अच्छा है, पर यह नित्यका कष्ट अच्छा नहीं। होमरूलके आन्दोलनका सब श्रेय प्रसिद्ध आयरिशनेता पार्नेलको ही है। उसके उद्योग और कर्तृत्वके कारण ग्लेडस्टन सरीखे राजनीतिज्ञने भी यह प्रश्न हाथमें लेकर सन् १८८६ ई० में पहला होमरूल बिल पार्लमेण्टके सामने उपस्थित किया। आगे चलकर प्राय सात आठ वर्ष तक होमरूलका प्रश्न पार्लमेण्टके सामने था, और सन् १८९३ ई० में हाउस आफ कामन्समें होमरूल बिल पास भी हो गया। लेकिन हाउस आफ लार्ड्सने उसे अस्वीकृत कर दिया, इस लिए आयर्लैण्डको उससे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं

हुआ । इसके उपरांत बहुत दिनोंतक यह प्रश्न योंही पडा रहा, पर इसके लिए आन्दोलन बराबर होता रहा। एक बार लार्ड डन-रेवनके आन्दोलनसे 'डिवोल्यूशन' अर्थात् अधिकार विभाजनके रूपमें होमरूलका थोडासा भाग फिर चर्चाके लिए उपस्थित किया गया था, लेकिन ऐसे अधूरे अधिकार लेना आयरिश लोग पसद नहीं करते थे, इस लिए अधिकार-विभाजनका वह बिल लिबरल मन्त्रि-मण्डलको लौटा लेना पडा । इसके उपरान्त आयर्लैण्डके सौभाग्यसे सन् १९०८ ई० में मि० एसक्विथ इग्लैण्डके प्रधान मन्त्री हुए । उन्होंने आयर्लैण्डको स्वराज्य देनेका विचार किया । लेकिन वे इस बातको अच्छी तरह समझते थे कि जबतक हाउस आफ लार्ड्सके अधिकार कम न किये जायँगे तबतक आयरिश होमरूल बिल पास न हो सकेगा। अत हाउस आफ लार्ड्सके अधिकार कम करनेके लिए उन्होंने पहले सन् १९११ में वीटोबिल पास किया जिसके अनुसार यह नियम बन गया कि यदि कोई बिल हाउस आफ कामन्समें लगातार तीन दौरोंमें पास हो जाय और हरबार हाउस आफ लार्ड्स उसे अस्वीकृत कर दे तो केवल सम्राट्की स्वीकृतिसे ही वह कानून बन जाय । लेकिन इसमें शर्त्त यह थी कि पहले दौरेकी द्वितीय आवृत्ति और तीसरे दौरेकी तृतीय आवृत्तिमें दो वर्षका अंतर रहे । तदनुसार मि० एसक्विथने ११ अप्रैल सन् १९११ को हाउस आफ कामन्समें होमरूल बिल उपस्थित किया और उसके स्वीकृत होने पर हाउस आफ लार्ड्सने उसे रद् कर दिया । दूसरे दौरेमें वह फिर कामन्समें पास हुआ और लार्ड्समें रद् हुआ । तीसरी बार सन् १९१४ में फिर वही बिल हाउस आफ कामन्समें पास हुआ और वर्त्तमान युरोपीय महासमर छिडनेके कुछ ही दिन बाद कानून बन गया । पर यूनियनिष्ट दलके सतोषार्थ जो आयरिश होमरूलका विरोधी था, सरकारने कह दिया कि अभी यह कार्य्यरूपमें परिणत न किया जायगा । इस प्रकार

" आसमानसे गिरा और ताड पर अटका, " वाली कहावत आयरिश होमरूलके सम्बन्धमें चरितार्थ हुई। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने उद्दिष्ट स्थानके बहुत ही समीप तक पहुँच चुके है।

उन्नीसवीं शताब्दीमें कोई बडा विद्रोह नहीं हुआ। वुल्फटोनके सन् १७९८ वाले विद्रोहके उपरांत उसकी मण्डलीके राबर्ट एमेट नामक एक व्यक्तिने सन् १८०३ में एक विद्रोह किया। पर उस विद्रोहका दमन हो गया और एमेटेको फॉसी मिली। लेकिन आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दीमें आयर्लैण्डकी साम्पत्तिक स्थितिमें बहुत बडे बडे परिवर्त्तन हो गये। जबसे आयरिश पार्लमेण्ट ब्रिटिश पार्लमेण्टमें मिलाई गई तबसे लगभग पचास वर्षतक कर्म्मधर्म्म-सयोगसे आयर्लैण्डकी दशा एक प्रकारसे अच्छी ही दिखाई देती थी। इस बीचमें जन-सख्या बेहद् अर्थात्, पचास लाखसे पचासी लाख तक बढी। इसको आयर्लैण्डकी अच्छी स्थितिका प्रमाण बतलाया जाता है। लेकिन यदि जन-सख्याके साथ ही साथ उसके निर्वाहके साधन नहीं बढते है तो भयकर दशा आ उपस्थित होती है और तब देशकी वास्तविक स्थितिका पता चलता है। सन् १८०० से १८४५ तक आयरिश जन-संख्या बढती रही, लेकिन इसी बीचमें गल्लेका भाव उतर जानेके कारण खेतिहरोंको घाटा होने लगा। इधर हाथकी मेहनतकी जगह यंत्रोंके आ जानेके कारण जुलाहोंकी रोजी भी मरने लगी। इतनेमें सन् १८४४–४५ से भयकर अकाल पडना आरभ हुआ। बढती हुई लोकसख्याका सारा आधार आलुओं पर ही था। आलूकी तरकारी, गौके दूध और सुअरके मास पर ही आयरिश लोक-सख्या बातकी बातमें इतनी बढ गई थी। लेकिन आलूकी फसलमें रोग लग जानेके कारण वह तो गया ही, साथ ही खेतीकी सुदशापर अवलबित रहनेवाली गौओं और सूअरोंका भी सहार हुआ। इस लिए लोकसख्याका सारा अजीर्ण इतनी

जल्दी शांत हो गया कि फिर इस बातकी शंका होने लगी कि, आयर्लैण्डमें अब आदमियोंकी बस्ती बचेगी भी या नहीं । इस आपत्तिके कारण लोगोंके मन खिन्न और असंतुष्ट हो गये, और इसका मूल कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार ही जान पड़ने लगी । दूसरी बात यह थी कि दोनों पार्लमेण्टोंको मिलानेके समय पिटने रोमन कैथोलिक लोगोंको धार्म्मिक स्वतंत्रताका जो वचन दिया था, ब्रिटिश पार्लमेण्टद्वारा उसके अनुसार कार्य्य होनेमें तीस वर्ष लग गये और इसके लिए धक्के भी खूब खाने पड़े। इस लिए ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके वचनपरसे आयरिश लोगोंका भरोसा उठ गया। इसी प्रकार इन दोनों राष्ट्रोंका संयोग करानेके समय लोगोंको यह समझाया गया था कि यदि यह संयोग हो जायगा तो आयरिश लोगोंपरसे करका बोझा कम हो जायगा, लेकिन वह बात भी नहीं हुई। उलटे करका बोझा प्रतिवर्ष बढ़ता ही गया और इंग्लैण्डका ऋण देखते हुए आयर्लैण्डके राष्ट्रीय ऋणकी रकम भी बहुत बढ़ गई। प्रायः दस वर्षमें इंग्लैण्डका कर तो प्रति सैकड़े केवल १७ बढ़ा, पर आयर्लैण्डका करीब करीब ५० के बढ़ गया! तात्पर्य्य यह कि आयरिश नेताओंने अच्छी तरह समझ लिया कि चाहे जिस दृष्टिसे देखिए, यही कहा जा सकता है कि दोनों राष्ट्रोंके एक होनेसे आयर्लैण्ड सुखी नहीं हुआ। देशकी इस आपत्तिरूपी बारूद पर स्वतंत्रताकी इच्छाकी चिनगारी पड़ते ही धड़ाका हुआ, और लोगोंका जो यह ख्याल था कि आयर्लैण्डमें हर पचास बरसमें विद्रोह होता है, उसका एक और नया प्रमाण मिल गया। सन् १८४८ इतिहासमें राज्यक्रांतिके लिए बहुत प्रसिद्ध है। उस साल जब समस्त युरोपमें विद्रोह और राज्यक्रांतिकी धूम मची तब आयर्लैण्डमें भी उपद्रव हुआ। लेकिन उस बार भी कुछ ते नहीं हुआ। उसके उन्नीस बरस बाद अर्थात् सन १८६७ में केरी, लिमरिक



ओर टिपरारी आदि प्रान्तोंमें फुटकर विद्रोह हुए, लेकिन उनका भी कोई उपयोग नहीं हुआ। सन् १८५८ से आगे ३०–३५ बरस तक आयर्लैण्डमें 'फीनियन' पक्षके लोगोंने षड्यन्त्र, मारकाट और हत्या आदिकी धूम मचा रक्खी थी और भय तथा असतोप उत्पन्न कर रक्खा था। इस शताब्दीमें विद्रोह यद्यपि कम हुए, तथापि फुटकर राजकीय अपराध बहुत अधिक हुए। सैकड़ों आदमी फाँसी चढ़े और सैकड़ों कालेपानी भेजे गये। यों तो शाति और सतोष बहुत दिनोंसे आयर्लैण्डमें नहीं है, तथापि यह बात कम सतोषजनक नहीं है कि वर्त्तमान युरोपीय महासमरके समय भी केवल सेनफेनर्स-वाले सन् १९१६ के छोटेसे विद्रोहको छोडकर और कोई भारी उत्पात नहीं हुआ। फिनियन लोगोंकी गडबड शात होनेपर सन् १८७२ के लग-भग आयरिश लोगोंको फिर पार्लमेण्टमें घुसकर स्वराज्यके लिए आन्दोलन करनेका हौसला हुआ और यह हौसला पद्रह वर्ष तक रहा। लेकिन पार्नेल आदिका पन्द्रह वर्षका आन्दोलन व्यर्थ जानेके कारण लोक-मतने घडीके पेंडुलमकी तरह फिर उलटी गति ग्रहण की। सन् १८०१ में आयरिश पार्लीमेण्टके नष्ट हो जानेपर फिरसे उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेके लिए सौ वर्षोंतक जो आन्दोलन हुआ था उसके विकल होने पर, निरुपाय होकर और अँगरेजोंके हाथसे अँगरेजी प्रजाके समान अधिकार और अपने देशके लिए पूर्ण न्याय पानेके काममें निराश होकर कुछ आयरिश लोगोंने स्वावलम्बके मार्गसे, अर्थात् जहाँ-तक हो सके सब ओरसे अँगरेजी राज्य पर बहिष्कारका दबाव डालकर अपने बल पर अपना साम्पत्तिक और राष्ट्रीय सुधार करने और राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करनेका प्रयत्न आरभ किया। इन लोगोंको सेनफेनर्स कहते हैं। सन् १९१४ ई० में होमरूल बिलके पास हो जाने पर आगे दो वर्षतक जब आयरिश समस्याकी मीमासा करनेकी कोई चेष्टा नहीं

की गई, तब अंतमें २५ अपरैल सन् १९१६ को इन 'सेन फेनर्स' लोगोंने आयर्लैण्डमें विद्रोह किया जिसमें सेना और पुलिसके १२४ जवान काम आये और ३९७ घायल हुए, और ७६४ विद्रोही मारे गये तथा आहत हुए। इनमें १३ आदमियोंको फाँसीकी और बहुतसे लोगोंको कैदकी सजा हुई। लेकिन पीछे सन् १९१७ के मध्यमें जब आयर्लैण्डको 'कनवेन्शन' देना निश्चय हुआ तब ये विद्रोही भी जेलसे छोड़ दिये गये। इस प्रकार इतने कष्ट झेलकर और इतने दिनोंतक निरंतर प्रयत्न तथा आन्दोलन करके, जैसा कि पहले कहा जा चुका है अब आयरिश लोग अपने उद्दिष्ट स्थानके बहुत ही समीपतक पहुँच चुके हैं और आशा की जाती है कि बहुत ही शीघ्र वे बिलकुल पूर्ण नहीं तो भी कुछ स्वतन्त्रताका सुख अवश्य भोगने लगेंगे।

आयलैंण्डके राष्ट्रीय आन्दोलन।

पिछले अध्यायोंमें हमने आयलैंण्डका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास बहुत ही सक्षेपमें दिया है। यदि राष्ट्रीयताकी मीमासाकी दृष्टिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि लगभग सत्तरहवीं शताब्दीसे यह इतिहास बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा मनोरजक हो गया है। यह भी अच्छी तरह निश्चय हो जायगा कि विना आन्दोलनके आयलैंण्डको कभी कुछ भी नहीं मिला है और सत्तरहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं इन तीन शताब्दियोंका आयलैंण्डका इतिहास उस राष्ट्रकी प्रजाके किये हुए आन्दोलनोंका ही इतिहास है। ये आन्दोलन मुख्यत चार उद्देश्योंसे किये गये थे। (१) धार्म्मिक स्वतत्रता प्राप्त करनेका आन्दोलन, (२) खेतिहरोंको जमीन पर पुश्तैनी हक दिलानेका आन्दोलन, (३) होमरूल अर्थात् 'स्वतत्र पार्लीमेण्ट' के द्वारा राष्ट्रीय स्वराज्य प्राप्त करनेका आन्दोलन, और (४) अँगरेजोंको हटाकर पूरी स्वतत्रता प्राप्त करनेका आन्दोलन। इन चार उद्देश्योंसे किये हुए राष्ट्रीय आन्दोलनोंका क्या स्वरूप था, और उनमें क्या क्या हुआ, यह हम आगेके चार भागोंमें थोड़ेमें वतला देना चाहते है।

४ धार्मिक स्वतंत्रताका आन्दोलन।

आयर्लैण्डकी स्थितिके सुधारका प्रारभ होनेके उपरात आयरिश लोगोंको सन् १८२९ में ॲगरेजोंसे एक बहुत बडी बातमें न्याय मिला, और आयर्लैण्डके वर्त्तमान इतिहासका विचार इसी बातसे आरभ होता है। बात यह हुई कि पार्लमेण्टके कानूनके अनुसार रोमन कैथोलिक लोगोंका खुले-आम जो बहिष्कार किया गया था, उस बहिष्कारसे उनकी मुक्ति हो गई। इस भयकर बहिष्कारका आरभ पहले पहल आठवें हेनरी राजाके राजत्वकालमें हुआ था। इस राजाके राजत्व-कालमें इग्लेण्डमें प्रायः रोमन कैथोलिक सम्प्रदायकी ही तूती बोलती थी। लेकिन उस समय तक आयर्लैण्ड पर इग्लेण्डका पूरापूरा अधिकार नहीं हुआ था। ॲगरेजी राजाओंमें-आठवें हेनरीने ही सबसे पहले पोपकी सत्ता हटाकर अपने राज्यमें प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मका आरभ किया, और इस नये धर्मके प्रचारके कारण 'सद्धर्म सरक्षक' का पद धारण करके ॲगरेजी राजपदको धर्म्म-गुरुके पदका जोडीदार बना दिया। कर्म्म-धर्म्मसयोगसे इसी राजाके राजत्वकालमें आयर्लैण्ड पूर्ण रूपसे इग्लैण्डकी अधीनतामें आया और हेनरीने आयर्लैण्डके राजाकी पदवी भी धारण की। यह काल सारे युरोपके इतिहासमें 'धार्मिक पीडन युग' के नामसे प्रसिद्ध है, और आयर्लैण्डके लोगोंके धार्मिक पीडनका और सामाजिक तथा राजकीय अवनतिका आरम्भ इसी समयसे होता है। तीसरे विलि-यमके राज्यत्वकालको अर्थात् सन् १६९० से १७२० तकके समयको इस अवनितका मध्यकाल और सन् १७८० के लगभग समयको इस 'ग्रहणका मोक्षकाल समझना चाहिए। इस ग्रहणके स्पर्श-और मोक्षकालका अतर (सन् १५४०से १७८० तक) प्राय, ढाई सौ वर्ष है।

आयर्लैण्डके लोगोंका यह काल तरह तरहकी विपत्तियोंमें ही बीता। य
इलैण्डके लोगोंकी तरह उन लोगोंने भी प्रोटेस्टेण्ट पंथ स्वीकार
लिया होता तो उनका इतिहास कुछ निराला ही होता, लेकिन भि
भिन्न मानसक्षेत्रोंमें धर्म्मबीजोंके अकुर भिन्न भिन्न प्रकारके फूटते हैं
प्रोटेस्टेण्ट पथका उदय पन्द्रहवीं शताब्दीमें हुआ। तबसे अबतक पं
शताब्दियाँ बीत गई, उसकी उन्नति ही होती जाती है। तथापि अ
भी युरोपखडके आयर्लैण्ड, फ्रान्स, स्पेन, पोर्त्तगाल, इटली और स
आदि देशोंमें बहुधा रोमन कैथोलिक पथ ही प्रचलित है। फ्रा
और आयर्लैण्डमें जिस प्रकार प्रोटेस्टेण्ट पथके लोगोंकी हत्या हु
उसी प्रकार हालैण्ड आदि देशोंमें कैथोलिक पथके लोगों
हुई। इसके अतिरिक्त इस कालमें भिन्न भिन्न राष्ट्रे
कई धर्म्मद्वेषमूलक युद्ध भी हुए। लेकिन धर्म्ममतका मनुष्य मात्र
मन पर कुछ ऐसा विलक्षण अधिकार होता है कि वह कष्टों, अत्याचा
और प्राण-हानिसे भी नहीं उठता। आयरिश लोगों पर यह आक्षे
किया जाता है कि उनका मन चचल होता है। लेकिन धर्म्मके सबध
उन्होंने आज तक अपने मनकी जो असाधारण दृढता दिखलाई
उससे यह आक्षेप निर्मूल सिद्ध होता है और ऊपरसे उनके मनकी ज
चचलता दिखाई देती है उसका कारण कुछ और ही होगा ऐसा जा
पडता है। आयर्लैण्डमें सन् १६३५—४० के लगभग प्रोटेस्टेण्ट लोगोंक
प्रवेश आरभ हुआ और तबसे कोई तीन शताब्दियों तक वहाँ कैथोलि
प्रजाका ह्रास होता रहा—हजारों खानदान देश छोडकर चले गये
इतना होने पर भी इस समय आयर्लैण्डमें सौमें प्रायः पचहत्तर आद
रोमन कैथोलिक पथके है। यदि कोई यह प्रश्न करे कि आयर्लैण्ड कि
न लोगोंका देश है, तो उसका उत्तर यही दिया जायगा कि, वह आयरि
रोमन कैथोलिक लोगोंका देश है। इन सब बातोंके होने पर भी केव

धर्मके लिए अँगरेज प्रोटेस्टेण्टोंने और उनके हितके लिए इग्लैण्डके राजकर्मचारियोंने दो सौ ढाई सौ वर्षतक रोमन कैथोलिक लोगोंको जो बेशुमार तकलीफें दीं उन्हें देखते हुए पुरानी पीढीके अँगरेजोंकी न्यायबुद्धि पर बल्कि मनुष्यत्वके भाव पर भी जितना आश्चर्य्य हो वह थोडा है।

इसमें सन्देह नहीं कि केवल धर्मसबधी विरोध ही आयरिश लोगोंके पीडनका प्रधान कारण था। लेकिन दूसरी यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि यदि अँगरेज प्रोटेस्टेण्ट लोग आयर्लैण्डमें बस न जाते और हिन्दुस्तानकी तरह दूरसे ही उस पर अधिकार चलाते तो आयरिश लोगोंको इतना कष्ट न पहुँचता। लेकिन आयरिश रोमन कैथोलिक लोगों पर सदा दबाव रखनेके लिए और उनके जरासा सिर उठाते ही तत्काल धौल मारकर उसे नीचा करनेके लिए शासकोंकी ओरसे किसी न किसीका आयर्लैण्डमें रहना भी आवश्यक था और इसी लिए वहाँ पर प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको बसानेका विचार हुआ। यदि लोगोंको बसाया जाय तो उन बसनेवालोंके लिए जमीन चाहिए और जो लोग विदेशमें जाकर स्वदेशके हितके लिए परिश्रम करें उनके लिए तो और भी अधिक सुभीता चाहिए। इसलिए रोमन कैथोलिक लोगोंकी लाखों एकड भूमि उनसे छीनकर बसनेवालोंको दी गई, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। जब इन बसनेवालोंकी दो तीन पीढ़ियाँ आयर्लैंडमें ही बीत गई तब उन्हें वही स्वदेशकी तरह जान पडने लगा। बसनेवालोंका पैर आयर्लैंडमें जमनेका वास्तविक और मुख्य कारण यही था कि उन्हें इग्लैण्डके राजाका आश्रय था। लेकिन उन बसनेवालोंकी कृतज्ञता-बुद्धि शीघ्र ही नष्ट हो गई। और आयरिश कैथोलिक लोगोंके मुकाबिले में यद्यपि वे मुठ्ठी भर ही थे तो भी वे लोग आयर्लैंडको अपनी जन्मभूमि तथा आयरिश लोगोंको अपना दास समझने लगे। यद्यपि पहले पहल

वे लोग अँगरेज राजाओंका अधिकार पूर्णरूपसे मानते थे, लेकिन ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों वह अधिकार उनके लिए दुःसह होता गया, और उन्होंने यह ढंग निकाला कि जिस सीमा तक रोमन कैथोलिक लोगोंके विरुद्ध अँगरेजी राजाओंसे उन्हें सहायता मिलनेकी सम्भावना होती थी, उसी सीमातक वे उनका अधिकार मानते और उसे चलने देते थे। वे मुट्ठी भर प्रोटेस्टेण्ट लोग चाहते थे कि देशकी सारी सम्पत्ति और सत्ता हमारे ही हाथमें रहे, इस लिए उनके और शासकोंके हित-सम्बन्धमें विरोध उत्पन्न हो गया। एक म्यानमें दो तलवारोंका रहना असभव है। यदि आयरिश कैथोलिक तथा बसनेवाले प्रोटेस्टेण्टोंमें झगडा रहता तो कैथोलिक लोग उन बसनेवालोंको देशसे निकाल देते, अथवा उन्हें नष्ट करके अपनी भूमि फिरसे अपने अधिकारमें कर लेते और तब यदि राजकीय अधिकार इंग्लैण्डके राजाके हाथमें रहता तो उससे उनकी विशेष हानि न होती। परन्तु वे ऐसा न कर सके, क्योंकि यद्यपि एक ओर कैथोलिक आयरिश लोग वहाँके आदिम निवासी और सख्यामें बहुत अधिक थे और दूसरी ओर बसनेवाले अँगरेज सख्यामें थोड़े थे, तथापि उनके पास भूमि बहुत अधिक थी, और इंग्लैण्डकी सम्पत्ति, सत्ता, बुद्धि, लोकमत, सेना और राजभय आदि सब कुछ उन्हींके पक्षमें था। ऐसी अवस्थामें रोमन कैथोलिक लोग अँगरेजोंको निकाल न सके और प्राय दो सौ वर्षोंतक आयर्लैण्डमें खूब अत कलह मची रही। कैथोलिक लोग यद्यपि चारों ओरसे जकड दिये गये थे, तथापि उनके बुद्धि और स्वाभिमान आदि मनुष्यत्वको प्रगट करनेवाले गुण नष्ट नहीं हुए थे। इस लिए संख्यामें विषम लेकिन साधनों और शक्तियोंके कारण प्राय समबलधारी ये दोनों पक्ष बराबर झगडते रहे।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि आठवें हनेरीके

समयसे आयरिश लोगोंके विरुद्ध कानून बनना शुरू हुए थे। इन कानूनोंका जोर दूसरे चार्ल्सके राजत्वकालमें कुछ समयके लिए कम हुआ, लेकिन तीसरे विलियमके राजत्व कालमें उनका जोर बहुत बढ़ गया और उनके लिए अनेक नये बधन भी हो गये। विलियमके राजत्व कालमें कैथोलिक लोगोंने विद्रोह किया। उनका नेता पेट्रिक सार्सफील्ड लिमरिक किले पर अधिकार करके खूब ही लडा, लेकिन उसे विवश होकर सधि करनी पडी और किला अँगरेज सेनापतिके सुपुर्द करना पडा। इस सधिमें खास बात यह तै हुई थी कि आयर्लैण्डकी पार्लमेण्टके बनाये हुए कानूनोंसे जहाँतक विरोध न हो वहाँतक रोमन कैथोलिक लोगोंको खूब धार्मिक स्वतत्रता दी जाय। इसके अनुसार, दूसरे राजा चार्ल्सके राजत्वकालमें उन्हें जितनी स्वतन्त्रता प्रत्यक्ष रूपसे भोगनेके लिए मिली थी, कमसे कम उतनी ही स्वतन्त्रता इसके आगे भी मिलनी अवश्यक थी, और विलियमने वचन दिया था कि सधि होते ही पार्लमेण्टका अधिवेशन करके इसके सम्बन्धमें एक कानून स्पष्ट रूपसे पास करा लिया जायगा। इसी वचन पर सार्सफील्डको सधि करके हथियार रखने पडे थे, और राजाके वचन पर विश्वास करके किला छोडकर निकल जाना पडा था। हार अवश्य हुई, लेकिन केवल इस विचारसे उसका दु ख कुछ हलका हो गया कि इसमें सधार्मियोंको कुछ सुभीता तो मिला। लेकिन ससारके इतिहासमें ऐसे अनेक प्रसग आये है जब राजाके वचन पानी पर लिखे हुए अक्षरोंके समान सिद्ध हुए है। यह प्रसग भी उन्हींमेंसे एक था। सन् १६९२ में आयरिश पार्लमेण्टका अधिवेशन होते ही राजाके दिये हुए वचनके अनुसार सुभीतेके कानूनोंका पास होना तो एक ओर रहा, प्रोटेस्टेण्ट सभासदोंने कैथोलिक सभासदोंको दिक करनेकी एक नई युक्ति निकाली। उन्होंने बहुमतसे यह निश्चय कर लिया कि सभासद

लोग एक खास तरहकी शपथ किया करें। वह शपथ कैथोलिक लोगोंके लिए अत्यंत अपमानकारक थी, इस लिए लार्ड्स तथा कामन्स सभाओंके कैथोलिक सभासद क्रोधके मारे सभास्थल छोडकर चले गये। इसके उपरान्त सन् १६९५में वाइसराय कैपेलने पार्लमेण्टका अधिवेशन किया और लिमरिककी सन्धिमें कैथोलिक लोगोंको जो जो आश्वासन दिये गये थे पार्लमेण्टसे प्रस्ताव कराके एक एक करके उन सबको रद कर दिया। इन प्रस्तावोंकी कृपासे शिक्षा, सेना तथा धर्म्मविभागसे कैथोलिक लोग एकदम निकाल दिये गये। जिस तरह एक एक करके कोई चीज बिलकुल चुन ली जाती है, अथवा जंगलमें शिकारी कुत्ते और बनरखे छोडकर शिकारके सब जानवर नष्ट कर दिये जाते है, ठीक उसी प्रकार कैपेलकी पार्लमेण्टने ऐसे कायदे पास कर दिये जिनसे सामाजिक तथा राजकीय संसारमेंसे कैथोलिक लोग बिलकुल ही निकाले जा सकें। पहले तथा तीसरे जार्जके राजत्वकालमें इस प्रकारके कानूनोंकी भरमार हो गई और अठारहवीं शताब्दीके आरंभमें तो कैथोलिक लोगोंका बहिष्कार चरम सीमातक पहुँच गया। उस समय ये लोग लार्ड्स अथवा कामन्स सभाके सभासद नहीं हो सकते थे, पार्लमेण्टके चुनावमें मत नहीं दे सकते थे, स्थल अथवा जलसेनामें नौकरी नहीं पा सकते थे, बाकायदा न्यायाधीश नहीं हो सकते थे, मजिस्ट्रेट अथवा म्युनिसिपैल्टीके मेम्बर नहीं हो सकते थे, ज्यूरी नहीं बनाये जा सकते थे, शेरीफ या यहाँतक कि पुलिसके तुच्छ सिपाही भी नहीं हो सकते थे। शिक्षा देना और प्राप्त करना दोनों ही उनके लिए मना था। शिक्षाके लिए वे लोग परदेश नहीं जा सकते थे। आज्ञाके अनुसार यदि वे प्रोटेस्टण्ट सम्प्रदायके गिरजोंमें न जाते तो उन पर हर महीने साठ पाउण्ड दण्ड किया जाता था। यदि किसी कैथोलिकको प्रोटेस्टेण्ट धर्म स्वीकार न होता और दो 'जस्टिस आफ दी पीस' चाहते तो आज्ञा दे सकते थे कि वह अपनी

सम्पत्ति अपने उत्तराधिकारियोंके नाम नहीं लिख सकेगा। यदि चार 'जस्टिस आफ दी पीस' चाहते तो वे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मके गिरजामें उपासनाके लिए जानेकी आज्ञाका पालन न करनेके अपराधमें चाहे जिस कैथोलिकको जन्म भरके लिए देशनिकालेका दण्ड दे सकते थे। कैथोलिक धर्म्मोपदेशक यदि खुले आम धर्म्मोपदेश करते तो उनके लिए फाँसीकी सजा तो मानो रक्खी ही रहती थी, साथ ही उनकी जायदाद भी जब्त कर ली जाती थी' पहले एक स्थान पर बतलाया जा चुका है कि वहाँ जमीन देने-लेनेके सम्बन्धमें किस प्रकारकी रुकावटें थीं। यदि कोई प्रोटेस्टेण्ट यह सिद्ध कर देता कि किसी कैथोलिक जमींदारने उपजका एक तिहाईसे अधिक नफा स्वय लिया है तो उस कैथोलिककी जमीन छीनकर उस प्रोटेस्टेण्टको दे दी जाती थी, यहाँ तककी यदि कोई प्रोटेस्टेण्ट स्नेहभावसे या दया करके किसी कैथोलिककी गुप्त रूपसे और गुमनाम सहायता करता तो उसकी भी कैथोलिक लोगोंकी तरह ही दशा होती थी। पहले यह बात थोड़ी बहुत बतलाई जा चुकी है कि कैथोलिक लोगोंकी सामाजिक व्यवस्थामें कानूनोंकी कहाँतक अडचनें थीं। उस समय रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट लोगोंमें विवाहसबध होना सर्वथा ही असभव था और यदि कोई अपने धर्म्मको बदल डालनेका कोई सच्चा अथवा झूठा कारण ही पेश करके तलाककी आज्ञा माँगता तो वह उसे अवश्य मिल जाती थी।

ऐसी अवस्थामें आयरिश लोगोंका राष्ट्र कैसे बन सकता था? लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कैथोलिक धर्मके अनुयायियोंने विलक्षण दृढता तथा एकनिष्ठा दिखलाई। सारी सामाजिक व्यवस्थाका मूल यह है कि नयी पीढ़ीको सावधानीसे शिक्षा मिलती रहे, परन्तु उस शिक्षाका भी ऐसा बहिष्कार किया गया था कि, उस पर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि कहीं उडती हुई खबर भी

सुनाई देती कि किसी पाठशाला या गिरजेमें कैथोलिक धर्मका उपदेश हो रहा है तो वहाँ सिपाही लोग तत्काल ही जा पहुँचते थे। पाठशालाओं-की कुरसियों और गिरजोंके प्लेट फार्मों पर मारपीट हो जाना और रक्त-स्रावसे उन पवित्र स्थलोंका दूषित हो जाना तो उस समयकी बहुत ही सामान्य घटनायें थीं। लेकिन इन सब बधनोंकी परवा न करते हुए कैथो-लिक लोग अपनी नई पीढ़ीको शिक्षा देनेका काम अच्छी तरह चलाये जा रहे थे। खुले आम पाठशाला खोलकर बैठना जोखिमका काम था, इसलिए सड़कके किनारेकी गलियों, पहाड़ियोंके बीचकी जगहों, गढ्ढों और तहखानों, जगलकी झोपड़ियों, टूटी हुई इमारतोंके बरामदों, यहाँ तक कि खेतके बाड़ोंमें भी, तात्पर्य्य यह कि जो एकान्त जगह मिल जाय वहीं, चुटकी बजाते पाठशाला खुलती और जरासा सदेह होते ही चुटकी बजाते बद हो जाती थी। इस बीचमें जो समय मिलता था उसमें कैथोलिक धर्मके तत्त्व, राजनीति और सर्व साधारण शिक्षा-की बातें अपने शिष्योंको कैथोलिक गुरु उसी प्रकार चुपकेसे बतलाते थे, जिस प्रकार सेनामें एक दूसरेके पहरा बदलनेके समय सकेतका शब्द एक दुसरेके कानमें कहा जाता है, और इस प्रकार उन बातोंका जहाँ तहाँ प्रसार होता था। विद्यार्थी भी वैसे ही तैयार हुए थे। यह शिक्षाका काम गुरु और शिष्य दोनोंने मिलकर इतनी जल्द समाप्त न किया होता, तो नये कानूनोंके जारी होनेके कुछ दिनों बाद ही कैथोलिक लोगोंकी नई पीढ़ी अक्षरशून्य होगई होती। उनकी सामाजिक व्यवस्था-में भी खूब हस्तक्षेप किये गये। कानून बनाकर बहुत कुछ लालच दिखलाये गये तो भी कैथोलिक लोगोंके छोटे छोटे लड़कों और अज्ञान स्त्रियोंने भी प्रायः अपना धर्म्म नहीं छोड़ा और इस लिए कानूनोंके कारण कैथोलिक लोगोंको बाहर चाहे जितना कष्ट मिला हो पर घरमें उन लोगोंको सुख ही मिलता रहा।

पूरी अठारहवीं शताब्दी कैथोलिक लोगोंने इसी प्रकार बिताई। सन् १७५० के उपरान्त यह मालूम होने लगा कि प्रोटेस्टेंट लोगोंमें थोडीसी समबुद्धि आने लगी है। लेकिन यह कहनेका साहस उनमेंसे बहुत ही थोडे लोगोंको होता था कि कैथोलिक लोगोंका यह बहिष्कार दूर कर दिया जाय। अठारहवीं शताब्दीके अंतिम पचीस वर्षोमें आयर्लैण्डमें स्वदेशप्रीतिकी लहर आई और आयरिश पार्लमेण्टको स्वतत्र करके उसका सुधार करनेकी महत्त्वाकाक्षा वहाँके प्रोटेस्टेण्ट राष्ट्रभक्तोंमें उत्पन्न हुई। यह बात पहले कही जा चुकी है कि प्रोटेस्टेण्ट नेताओंके सुसस्कृत मनोंमें यह बात आने लगी थी कि कैथोलिक लोगोंको दासत्व तथा अधकारमें रखकर स्वतत्रता नहीं प्राप्त की जा सकती और सुधार नहीं हो सकता। इस कारण अन्य राजकीय विषयोंके साथ साथ सभाओं, समाचारपत्रों और कभी कभी पार्लमेण्टमें भी कैथोलिक लोगोंकी मुक्तिके सबधमें चर्चा होने लगी।

जब सन् १७५० के लगभग आयर्लैण्डके प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमें धर्मसम्बन्धी सहिष्णुता उत्पन्न हो गई, तब कुछ समयमें अर्थात् सन् १७६४ में कैथोलिक लोगोंको समान अधिकार देनेके सबधमें सबसे पहला बिल आयरिश पार्लमेण्टके सामने उपस्थित हुआ। इससे सातवर्ष पहले अर्थात् सन् १७५७ में 'कैथोलिक कमेटी' नामकी सभा स्थापित हुई थी। यह बिल उसी कमेटीके उद्योग तथा आन्दोलनका फल था। इसके उपरान्त, जिन मार्गोंसे कैथोलिक लोग बधनोंमें पड गये थे उन्हीं मार्गोंसे उनका खुलना आरभ हुआ। सन् १७६३ में कैथोलिक लोगोंको जमीन रेहन रखकर ब्याज-बट्टेका काम करनेकी स्वतत्रता देनेके लिए आयरिश पार्लमेण्टमें एक बिल उपस्थित हुआ। परन्तु पहले तो उस पर विचार करनेका काम एक सालके लिए मुलतवी कर दिया और फिर दूसरे साल वह नामजूर कर दिया गया। इसके

सुनाई देती कि किसी पाठशाला या गिरजेमें कैथोलिक धर्म्मका उपदेश हो रहा है तो वहाँ सिपाही लोग तत्काल ही जा पहुँचते थे। पाठशालाओं-की कुरसियों और गिरजोंके प्लेट फार्मों पर मारपीट हो जाना और रक्त-स्रावसे उन पवित्र स्थलोंका दूषित हो जाना तो उस समयकी बहुत ही सामान्य घटनायें थीं। लेकिन इन सब बधनोंकी परवा न करते हुए कैथो-लिक लोग अपनी नई पीढीको शिक्षा देनेका काम अच्छी तरह चलाये जा रहे थे । खुले आम पाठशाला खोलकर बैठना जोखिमका काम था, इसलिए सडकके किनारेकी गलियों, पहाडियोंके बीचकी जगहों, गढ्ढों और तहखानों, जंगलकी झोपडियों, टूटी हुई इमारतोंके बरामदों, यहाँ तक कि खेतके बाडोंमें भी, तात्पर्य्य यह कि जो एकान्त जगह मिल जाय वहीं, चुटकी बजाते पाठशाला खुलती और जरासा सदेह होते ही चुटकी बजाते बद हो जाती थी। इस बीचमें जो समय मिलता था उसमें कैथोलिक धर्म्मके तत्त्व, राजनीति और सर्व साधारण शिक्षा-की बातें अपने शिष्योंको कैथोलिक गुरु उसी प्रकार चुपकेसे बतलाते थे, जिस प्रकार सेनामें एक दूसरेके पहरा बदलनेके समय सकेतका शब्द एक दूसरेके कानमें कहा जाता है, और इस प्रकार उन बातोंका जहाँ तहाँ प्रसार होता था। विद्यार्थी भी वैसे ही तैयार हुए थे। यह शिक्षाका काम गुरु और शिष्य दोनोंने मिलकर इतनी जल्द समाप्त न किया होता, तो नये कानूनोंके जारी होनेके कुछ दिनों बाद ही कैथोलिक लोगोंकी नई पीढी अक्षरशून्य होगई होती। उनकी सामाजिक व्यवस्था-में भी खूब हस्तक्षेप किये गये। कानून बनाकर बहुत कुछ लालच दिखलाये गये तो भी कैथोलिक लोगोंके छोटे छोटे लडकों और अज्ञान स्त्रियोंने भी प्राय अपना धर्म्म नहीं छोडा और। इस लिए कानूनोंके कारण कैथोलिक लोगोंको बाहर चाहे जितना कष्ट मिला हो पर घरमें उन लोगोंको सुख ही मिलता रहा!

लोगोंकी स्वतन्त्रताका प्रश्न फिर कभी उपस्थित नहीं करूँगा। यह वचन लेकर ही उसने प्रधान मन्त्रीकी जगह पर उसको नियुक्त किया। प्रोटेस्टेण्ट पथके कुछ कट्टर धर्मात्माओंने जब यह देखा कि यह स्वतन्त्रताका प्रश्न अब शान्त नहीं हो सकता और इतने दिनोंसे हमारे हाथमें जो सत्ता थी उसका अश कैथोलिक लोगोंके हाथमें जाना चाहता है, तब उन्होंने 'आरेंज सोसाइटी' नामकी गुप्त मडलीका काम आरभ किया। इस मडलीका मुख्य हेतु यह था कि जिस तरह हो सके कैथेलिक लोगोंको कष्ट दिया जाय और उनके स्वतत्र होनेके मार्गमें रोडे अटकाये जायँ। सन् १७८८ में पहले पहल इस मडली या सभाकी स्थापना हुई। इसके सभासदोंको इस प्रकार कसम खानी पडती थी—"मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि मुझसे जहाँ तक हो सकेगा वहाँ तक मै कैथोलिक लोगोंका नाश ही करूँगा और जबतक राजा कैथोलिक लोगोंके प्रतिकूल रहेगा तभी तक उसका अधिकार मानूँगा।" इस सभाके सभासदों और कैथोलिक धर्मके लोगोंमें प्राय नित्य ही झगडे हुआ करते थे।

लेकिन सब बातोंका कभी न कभी अत होता ही है। कैथोलिक लोगोंके दु:खोंका भी अब अतिम समय आ गया था, इसलिए प्रतिकूल बातोंकी कुछ भी न चली और नदीके प्रवाहकी तरह दिन पर दिन यह न्यायका काम खूब जोर पकडने लगा। लोकमत तैयार करनेका काम कठिन होता है, लेकिन जब वह तैयार हो जाता है तब उसके मार्गमें कोई नहीं आता और यदि कोई आता है तो ठहरता नहीं। आरेंज सोसाइटीकी तरह कैथोलिक लोगोंकी भी 'कैथोलिक-प्रजा-दु:खनिवारक नामकी एक सभा बहुत दिनोंसे मौजूद थी। इस समय उसे आन्दोलन करनेकी प्रेरणा हुई और उसके प्रयत्नसे बहुत काम हुआ। कहा जाता है कि इसके आन्दोलनके पहले ही विलियम

राजाने उसे प्रधान मत्री बनाया। इस प्रकार निराश होने पर भी कैथोलिक कमेटीने अपना प्रार्थना करने और लोकमत जागृत करनेका काम जारी रक्खा। अन्तमें कैथोलिक लोगोंको डेनियल ओकानेल नामक नेता मिल गया और सन् १८२९ में उसके द्वारा उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। ओकानेल सरीखा नेता लोगोंको किसी शताब्दीमें एकाध ही मिलता है। उसका चरित्र इस पुस्तकके द्वितीय भाग चरित्रमालामें दिया गया है। यहाँ केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि ओकानेल सरीखे आन्दोलनकारी देशभक्तके नेतृत्व ग्रहण करने पर इस वादग्रस्त प्रश्नका रुख ही बदल गया। कुछ तो उसके गुणोंके कारण और कुछ समयके परिणामसे ओकानेलके इस प्रश्न पर केवल आयर्लैण्डमें ही नहीं बल्कि इंग्लेण्डमें भी हलचल मच गई। पार्लमेण्टके सभासद होनेसे पहलेही इंग्लैण्डमें उसकी बहुत कुछ कीर्ति फैल चुकी थी। सन् १८२८ में 'क्लेअर' नामक प्रांतकी ओरसे वह पार्लमेण्टका सभासद चुना गया। जब वह पहले पहल पार्लमेण्टमें बैठनेके लिए गया तब सारा सभास्थल उसे देखनेके लिए उत्सुक लोगोंसे भर गया था। पहले जिस अपमानास्पद शपथका उल्लेख किया जा चुका है, वह अबतक जारी थी, परन्तु ओकानेलने उस शपथके करनेसे इकार कर दिया। इस पर बडा झगडा हुआ। पार्लमेण्टके अधिकारी उक्त शपथके किये बिना उसे पार्लमेण्टमें बैठने नहीं देते थे और वह शपथ नहीं खाता था। इस विषयमें दो दिन तक खूब विवाद हुआ। ओकानेलने बहुतही प्रभावशाली व्याख्यान दिये; परन्तु व्यर्थ। शपथ न खानेके कारण उसे सभामें बैठनेकी आज्ञा न मिली और कहा गया कि क्लेअर काउंटीकी ओरसे और कोई सभासद चुना जाय। लेकिन आयर्लैण्डका लोकमत इस प्रश्न पर बहुत दृढ हो गया था, इस लिए क्लेअरके मतदाताओंने फिर भी ओकानेलको ही चुना। इसके उपरात फिर कभी इस प्रश्नकी हा[illegible] हुई, और दूसरे वर्ष

पार्लमेण्टने नियम बनाकर कैथोलिक लोगोंकी स्वतत्रता छीननेवाले कानूनको सर्वांशमें रद कर दिया और उन्हें अँगरेजी प्रजाजनोंके अधिकार दे दिये गये।

दो सौ वर्षोंतक कैथोलिक लोगों पर जो यह अत्याचार होता रहा उसका समर्थन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। फ्रूड आदि ग्रथकारोंने पक्षपातके कारण इसका थोडा बहुत समर्थन करनेका प्रयत्न किया है, पर वह बिलकुल ही थोथा है। फ्रूड की सम्मतिके अनुसार इस प्रकारके कानूनोंका समर्थन दो तरहसे हो सकता है। एक तो यह कि अन्य देशोंके कैथोलिक लोगोंने प्रोटेस्टेण्ट पथी लोगों पर भी इसी प्रकारका अत्याचार किया था। और दूसरे यह कि वह समय ही ऐसा असहिष्णुताका था। प्रोटेस्टेण्ट लोग सचमुच ही यह समझते थे–उनको पूरा विश्वास था कि कैथोलिक मत आसुरी या शैतानोंका धर्म्म है। लेकिन इन दोनों प्रकारके समर्थनोंका कोई अर्थ नहीं है। इस प्रश्नका विचार सुधारकी दृष्टिसे करना चाहिए और इस दृष्टिसे देखते हुए जो बात बुरी हो उसे बुरी ही मानना चाहिए। उस दशामें यह कारण विशेष उपयोगी नहीं हो सकता कि और कोई भी ऐसा ही करता है। हाँ एक कारण अवश्य कुछ युक्तिपूर्ण जान पडता है और वह यह कि सत्तरहवीं शताब्दीके अतके विद्रोहोंमें कैथोलिक लोगोंने बहुत कुछ सहायता दी थी। प्रत्येक ही विद्रोहमें उनका कुछ न कुछ हाथ अवश्य रहा है। लेकिन एक तो कैथोलिक लोगोंके असतुष्ट रहनेके कई कारण पहलेहीसे मौजूद थे जैसे कि उनकी भूमिका हरण किया जाना आदि, और वे लोग जो विद्रोह करते थे वह प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी शत्रुताके कारण नहीं, बल्कि अपनी खोई हुई भूमि प्राप्त करनेके अभिप्रायसे करते थे, इस लिए अधिक-से अधिक यही कहा जा सकता है कि, उनकी जो जमीन छीनी गई थी, उसीका बदला चुकानेके लिए वे विद्रोह करते थे। इसके अतिरिक्त

यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि जिन कानूनोंकी सहायतासे प्रोटेस्टेण्ट अँगरेज लोग केथोलिक लोगोंको अपने वशमें रखना चाहते थे उन कानूनोंके द्वारा शरीरमें प्राण और मनमें तनिक भी मनुष्यत्व रहते हुए असतोष घट नहीं सकता था बल्कि उलटे उसका बढना ही स्वाभाविक था, और अतमें आयर्लैण्डमें यही बात सत्य ठहरी।

कैथोलिक लोगोंको धार्मिक स्वतत्रता मिलनेके उपरात उसके साथ ही साथ धर्म-मत-मूलक एक और प्रश्न उपस्थित हुआ। आयर्लैण्डमें आठवें हेनरीके राजत्वकालसे प्रोटेस्टेण्ट धर्मोपदेशकोंका प्रवेश हुआ था, और तभीसे उन्हें सरकारकी ओरसे तनख्वाहदार जगहें दी जाती थीं। लेकिन बिशप आदि प्रतिष्ठित धर्माधिकारियोंका निर्वाह प्रधानतः जमीनकी पैदावार पर ही अवलबित था। उन्हें और उनके गिरजोंको बडी बडी जमीनें मिली हुई थीं। और और जमींदारोंकी तरह उन्हें भी उचित था कि वे अपनी जमींदारीमें रहकर जमीनका सुधार करते और स्वय सुखसे रहते, पर वे लोग ऐसा नहीं करते थे और जहाँ जीमें आता था वहाँ रहते थे। आयर्लैण्ड छोडकर वे इगलेण्डमें ही अकसर रहते थे और अपनी जमींदारीकी देखरेखका काम गुमाश्तों पर छोड देते थे। बिशपसे नीचे दर्जेके 'रेक्टर' 'विकर' आदि उपदेशकोंका निर्वाह टाइथ नामक करसे होता था जो गाँवके काश्तकारोंसे वसूल की जाती थी। इस करको वसूल करनेके लिए गाँव गाँवमें अधिकारी नियुक्त थे, जिन्हें प्राक्टर कहते थे। ये भी एक प्रकारके गुमाश्ते या दलाल ही होते थे। ये काश्तकारोंसे टाइथ वसूल करके रेक्टरकी निश्चित रकम पूरी कर देनेके मानो ठेकेदार थे। इस प्रकार खास मालिक बिशप और जमीन जोतनेवाले केथोलिक खेतिहरोंके बीचमें तीन चार सीढियां रहती थीं। खेतिहरोंको जब बिशपके भी कभी दर्शन नहीं होते थे तब इससे ऊँचे दर्जेके धर्मोपदेशकोंके दर्शनोंकी तो बात ही क्या कही जाय। सिर्फ उनके

नाम पर प्रास्टर, प्रास्टरोंके नाम पर ठीकेदार, और ठीकेदारोंके नाम पर शिकमी ठीकेदार, जमीनकी उपजका अंश और गिरजोंका कर उगाहनेके पूरे पूरे मालिक थे। यदि वसूलीका काम ठीके पर दे दिया जाय तो उसमें अन्याय और अत्याचार होना स्वाभाविक ही है। एक तो रेक्टर विकर आदिकी निश्चित रकम पूरी करनेकी जवाबदेही ठीकेदारों पर थी जिससे उन्हें काश्तकारों पर सख्ती करनी पड़ती थी, दूसरे उन्हें अपनी जेब भरनेकी चिन्ता रहती थी, और तीसरे उनके ऊपर कोई देखने-सुनने-वाला भी नहीं होता था, इससे उनका अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच जाता था। टाइथ कर प्राय गरीब काश्तकारों पर ही पड़ता था, और यदि वे उसे समय पर न दे सकते थे तो उनसे मनमाने कागज लिखा लिये जाते थे और तब वे ठीकेदारोंके सदाके लिए गुलाम बन जाते थे। ठीकेदार जिस बेगारमें चाहते थे उन्हें उसीमें धर घसीटते थे। वे मुफ्तमें उनकी जमीन जोत देते थे और रुपयोंकी अदायगीसे बचने और उन्हें प्रसन्न रखनेके लिए निराश होकर हर तरहका अपना अपमान सहते थे।

इस प्रकार ऊपरसे नीचे तक यह धर्मोपदेशकमण्डल गरीब खेतिहरोंसे अत्याचारपूर्वक उगाहे हुए कर पर पाला जाता था। लेकिन इससे भी अधिक अन्यायकी बात यह थी कि जिन खेतिहरोंसे यह कर उगाहा जाता था वे अधिकांशमें रोमन कैथोलिक पंथके थे और ये उपदेशक लोग प्रोटेस्टेण्ट पंथके। अर्थात् एक पंथके धनसे दूसरे पंथके धर्मोपदेशकोंका निर्वाह होता था। वसूलीकी सख्तियों और अत्याचारोंकी अपेक्षा करदाताओंको यह बात और भी अधिक चिढ़ाती तथा दुःखी करती थी। जब कैथोलिक काश्तकार देखते थे कि 'टाइथ' करके धनसे धर्मोपदेशक लोग प्रोटेस्टेण्ट पंथका ही उपदेश करते हैं और प्रोटेस्टेण्ट-पंथी उपासना-मन्दिरोंका ही खर्च चलाते हैं तब उनके कलेजेमें

यह बात तीक्ष्ण काँटेकी तरह छिद जाती थी । इस अन्यायपूर्ण करकी एक एक पाई देते समय वे यही समझते थे कि हम अपने शरीरके रक्तकी एक एक बूँद पाप-कर्म्ममें लगानेके लिए दे रहे है । विशपों, रेक्टरो और विकरों आदिने बडे बडे गिरजे बनवा रक्खे थे और उनमें सब तरहके सामान सजा रक्खे थे, लेकिन प्रार्थनाके समय देखिए तो वे बिलकुल खाली पडे हैं । धर्म्मोपदेशकको नियमानुसार अपने समय पर खडे होना पडता था, पर प्रायः ऐसा होता था कि उसके सामने यदि एक आध श्रोता हुआ तो हुआ और नहीं तो वह भी नदारत । सख्तीके कारण यद्यपि लोग धन तो दे देते थे लेकिन प्रार्थना-मन्दिरोंमे प्रार्थना सुननेके लिए वे जबरदस्ती नहीं भेजे जा सकते थे । इन बढिया पर सुनसान मन्दिरोंके आसपास एक और ही चमत्कार दिखाई पडता था । अर्थात् प्रोटेस्टेण्ट गिरजा तो सूना पडा रहता था, पर पास ही देखिए तो खुले मैदानमे सैकडों हजारों कैथोलिक लोग जमा होकर बडी भावुकतासे कैथोलिक धर्मोपदेशकोंकी प्रेमपूर्ण उपासना सुननेमें मग्न रहते थे । उन्हें इस बातका ध्यान भी नहीं होता था कि हम मन्दिरोंमें है या खुले मैदानोंमें, और हमारे सिर पर धूप, हवा और पानी रोकनेके लिए कोई आच्छादन है या नहीं । इन दोनों दृश्योंका भेद देखनेवालेके लिए बहुत ही दुस्सह होता था और अपनी गाढी कमाईके धनसे चाडाल और पाखंडी प्रोटेस्टेण्ट धर्मोपदेशकोंको चैन उडाते देखकर कैथोलिक लोग जल भुन जाते थे । इस विषयमे सिडनी स्मिथ नामके एक प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मोपदेशकने लिखा है कि—" टाइथ करके सम्बन्धमें आयर्लैण्टमें जैसा अत्याचार हुआ वैसा निर्दय अत्याचार युरोप, एशिया और आफ्रिका इन तीनों खडोंमें कभी न हुआ होगा । यह कर वास्तवमें इतनी निर्लज्जताका था कि एक अवसर पर ग्रटनके कथनानुसार ठीकेदारोंके द्वारा परोक्षमें वसूल किये जानेकी बात तो निराली है, पर हॉ

यदि यह नियम होता कि स्वय धर्म्मोपदेशक जाकर खेतिहरोंसे कर माँगा करें तो धर्म्मोपदेशक भी लज्जासे मुँह फेर लेते और इस प्रकार इस करका वसूल होना आपसे आप बद हो जाता।" लेकिन ठीकेदारोंको लज्जा कहाँसे आती? वास्तविक धर्मोपदेशक ममनालु गडरियेकी तरह होना चाहिए, उसे अपने गाँवके लोगोंका सुख-दु ख सुनकर उन्हें उसी तरह अपनी जानसे बढ़कर समझना चाहिए जिस तरह गडरिया अपने झुण्डके मेमनोंको समझता है। धर्म्मोपदेशक तथा जनसाधारणके सबधकी वास्तविक उपपत्ति यही है। लेकिन आयर्लैण्डमें इन दिनों धर्म्मोपदेशक लोग गडरिये नहीं थे, मानो पिछले जन्मके कोई दावेदार थे! लोगोंको उनका मुँह ही नहीं दिखाई देता था। क्योंकि वे लोग खेतिहरोंके धन पर चुपचाप चैन उडाया करते थे। और यदि वे कभी लोगोंको अपना मुँह दिखलाने जाते भी थे तो धर्म्मनिष्ठ कैथोलिक लोग उन्हें शैतान समझकर उनका सामना नहीं करते थे। हाँ, कर वसूल करनेवाले ठीकेदारोंका सामना करनेसे वे नहीं बच सकते थे। और वे ठीकेदार गडरियेके कुत्तेकी खाल ओढे हुए भेडियेकी तरह भेडोंके इस झुण्ड पर मजेमें हाथ साफ करते थे।

लेकिन इस प्रकारकी दुस्सह स्थिति कितने दिन तक ठहर सकती थी? इसमें जो अन्यायके बीज थे उन्हें देख कर राजकर्म्मचारियोंको उचित था कि वे ठीक समय पर उचित कायदे कानून बनाकर इस स्थितिको सुधारते, लेकिन अभाग्यवश वह बात नहीं हुई और कैथोलिक किसानोंको अपना न्याय आप ही करना पडा। पहले बहुत वर्षों तक कैथोलिक लोगोंका द्वेष और क्रोध भीतर ही भीतर बढता रहा, लेकिन समय पाकर वह पराकाष्ठा तक पहुँच गया। दगा फसाद होने शुरू हो गये, दोनों पक्षोंकी प्राणहानि होने लगी, अब तक तो गिरजे निर्जन ही रहते थे, पर अब वे ध्वस्त भी होने लगे, और कैथोलिक

ोगोंके षड्यन्त्रोंसे कभी कभी निरपराधी धर्म्मोपदेशको और उनके ो बच्चोंकी हत्या भी होने लगी। इस पर अधिकारी लोग एक जानके दलेमें दस जाने लेने लगे। यह स्थिति सन् १७८० से १८३६ तक र्थात् लगभग पचासवर्षतक बनी रही। सिडनी सिथने एक अवसर र कहा था कि इस टाइथ करकी वसूलीके कारण दोनों पक्षोंके लगभग सहजार आदमियोंकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे प्राणहानि हुई। इस रकी वसूलीके सम्बन्धमें लोगोंने पहले पहल सन् १७८६ के लगभग ान्दोलन आरम्भ किया। कैथोलिक किसान पस्त हो गये थे, उन्हें ोई उपाय नहीं सूझता था। उस समय कुछ साहसी युवकोंने ठीके- ारोंके मनमें दहशत उत्पन्न करनेका काम अपने ऊपर लिया। इस रह राजकीय असतोषके साथ धर्म्मद्वेषका जोड मिल गया और उनके ाथोंसे प्राणहानिका अपवित्र काम शुरू हो गया। यह आन्दोलन हले पहल केरी नामक प्रान्तमें आरम्भ हुआ। लोगोंने िश्चय कर लिया कि इतनी रकमसे अधिक टाइथ कर न देंगे और ब लोगोंसे उससे अधिक न देनेकी कसम लेना प्रारम्भ कर दिया। सके साथ ही साथ प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको कष्ट पहुँचाने और उन पर अत्या- ार करनेका भी आरम्भ हुआ। जब पार्लमेण्ट खुलती थी तब यह नियमविरुद्ध कार्रवाई रुक जाती थी और अधिकारी लोग समझ लेते ं कि अब शान्ति हो गई। लेकिन पार्लमेण्टके समाप्त होते ही फिर गड- ाड होने लगती थी। इस आन्दोलनमें पहले पहल केवल कैथोलिक लोग ी सम्मिलित थे। लेकिन प्रोटेस्टेण्ट पथमे भी डिसेटर्स, प्रेसबिटेरियन्स आदि कई ऐसे पथ थे, जिन्हें राजदरबारद्वारा स्थापित विशिष्ट पथ मान्य नहीं था, और इस कारण कैथोलिक लोगोंकी तरह वे भी टाइथ कर नहीं देना चाहते थे। अत धीरे धीरे इन पथोंके लोग भी कैथोलिक लोगोंमें सम्मिलित हो गये। फल यह हुआ कि

करकी वसूलीमें कमी होने लगी। इन बेकायदा कार्रवाइयोंको रोकनेके लिए पार्लमेण्टने बहुतसे दमनकारक नियम बनाये, लेकिन उनसे करकी वसूलीके बढ़नेमें जरा भी सहायता नहीं मिलती थी। कर न देने अथवा कर न देनेका गुप्त रूपसे निश्चय कर लेनेके कारण लोगोंको दण्ड दिये जाने लगे, उन पर कोडे पडने लगे, काठोंमे उनके पेर दिये जाने लगे, परतु वसूली किसी तरह अधिक नहीं हुई। बहुतसे प्रोटेस्टेण्ट धर्मोपदेशकोंके लिए तो सचमुच ही भूखों मरनेकी वारी आगई। जो किसान कर नहीं देते थे उनके लिए नियम था कि उनकी भूमिकी जगम सम्पत्ति वेचकर नियमानुसार कर वसूल किया जाय, लेकिन सव लोगोंने मिलकर सलाह कर ली थी कि किसानोंकी जो सम्पत्ति ओर गोरू आदि जब्त करके नीलाम पर चढाये जायँ उन्हे कोई न ले, इससे जायदाद जब्त करना ओर न करना वरावर होता था। इसके अतिरिक्त जव जब्ती करनेके लिए ठीकेदार या धर्माधिकारी जाता था, तव लोग एक न एक वखेडा खडा कर देते थे। वखेडा खडा होते ही पुलिस वुलाई जाती थी। जव पुलिस आकर जबरदस्ती करने लगती तब किसानकी दशा पर लोगोंको दया आ जाती ओर उसके प्रति सहानुभूति होती जिसके कारण बहुतसे लोग उसकी सहायताके लिए पहुँच जाते। जमाव होते ही गाली-गलौज होने लगता और दोनों पक्षोंमें हाथावाँहीकी नौवत आ जाती। वस, लोगोंके डडों ओर पुलिसके हथियारोंका उपयोग होने लगता। इसके वाद मुकदमों ओर सजाओंकी नौवत आती। एक जगहके दगोंकी वार्ते सैकडों जगह फैलतीं जिससे लोगोंका चित्त क्षुब्ध होता था ओर असतोष उत्पन्न होता था। आगे जब इन सव वातोंके सवधमें पार्लमेण्टमें वादविवाद होता तव अधिकारियों ओर नेताओंमें खूब बकझक ओर कहासुनी हो जाती। इस अन्यायपूर्ण करके लिए आयर्लैण्टमें

बीस पचीस बरस तक ऐसी ही कार्रवाई होती रही और हरसाल इस करकी वसूली कम ही होती गई। किसीको कोई उपाय नहीं सूझता था। क्यों कि यह कर यद्यपि अन्याययुक्त था, तथापि कई पीढियोंसे बराबर चला आता था और धर्म्मोपदेशक-मण्डलका सारा दारोमदार इसी पर था, इस कारण इसे जारी रखने और बद करनेमें एक सी दिक्कत मालूम होती थी। जब तक यह झगडा खतम नहीं हुआ तबतक-कई वर्षोतक-छोटेसे आयर्लण्डमें अँगरेजोंको उतनी ही सेना रखनी पडती थी जितनी सारे हिन्दुस्तानमें रखनी पडती है! केवल सन् १८३३ ई० में इस अधिक सेनाके लिए दस लाख पाउण्डसे भी अधिक खर्च हुआ और टाइथ करके बारह हजार पाउण्ड वसूल करनेके लिए छब्बीस हजार पाउण्ड खर्च करने पडे! आयरिश पार्लमेण्टमे सन् १८०० से पहले प्राय पचीस वर्षतक यह झगडा होता रहा। इसके बाद यह ब्रिटिश पार्लमेण्टमे उपस्थित हुआ और वहाँ इसके निर्णयमें अडतीस वर्ष लग गये। पर अतमे टाइथ कर बन्द हो गया और निश्चय हुआ कि धर्म्मोपदेशकोंकी हानिकी पूर्ति करनेके लिए सरकारी खजानेसे मदद दी जाय और इस करके लाखो रुपये जो अबतक वसूल न होनेके कारण बाकी पडे हुए थे वे माफ कर दिये जायँ। इस विवादको समाप्त करनेका श्रेय प्रधान मत्री लार्ड जान रसल और प्रजापक्षीय नेता ओकानेलको मिला।

रोमन कैथोलिक लोगोंके विरुद्ध जो कानून बने थे वे रद कर दिये गये और उन्हे स्वतत्रता मिल गई। टाइथ करका वसूल होना बन्द हो गया और पग पग पर आयरिश कैथोलिक लोगोंकी आँखोंमें जो सूइयाँ चुभती थी वे निकल गई। तथापि आयर्लैण्डको प्रधानत. कैथोलिक लोगोंके राष्ट्रकी दृष्टिसे देखते हुए उनके साथ होनेवाले समस्त अन्यायोंका अभी तक अत नहीं हुआ था। उनमेंसे दो प्रधान बातें अभी तक नहीं हुई थी। एक तो यह कि आयर्लैण्डके लोगोंके कैथोलिक होने पर

भी आयर्लैण्डके खजानेका धन प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके पालन-पोषणमें लगता था। टाइथ कर और इस प्रश्नमे मुख्य भेद यह था कि टाइथ कर तो केथोलिक लोगोंकी जेबसे दिया जाता था, लेकिन खजानेका धन किसी एक व्यक्तिका दिया हुआ नहीं होता था, इस लिए टाइथके सम्बन्धमे व्यक्ति मात्रको जो प्रत्यक्ष कष्ट होता था वह इस दूसरी बातके कारण नहीं होता था और इसी लिए इस बातके लोगोंके असतोषके कारणीभूत होनेमें कुछ अधिक दिन लगे। खजानेमेंका धन सारी रिआयाका और कर देनेवाली प्रजाका मिला-जुला था, इस लिए यदि वह धन बेठिकाने खर्च होता तो उसके लिए व्यक्तिश किसे बुरा मालूम होता? लेकिन वह धन प्रोटेस्टेण्ट धर्मके लिए व्यय किया जाता था, इस लिए केथोलिक लोगोंको यह बात कभी पसन्द नहीं हो सकती थी। सन् १८२९ में केथोलिक लोगोंने अपनी मुक्तताका और सन् १८३८ मे टाइथ कर बद करनेका ये दोनों कानून केवल अपने आन्दोलनके बलपर ब्रिटिश पार्लमेण्टमे पास कराये थे, अत. इस नवीन प्रश्नके विषयमे भी उन्हें आशा होने लगी। इसी बीचमें फीनियन लोगोंने विद्रोह किया और उसका दमन कर दिया गया, तथापि उसके कारण सुसस्कृत और विचारशील अँगरेज राजनीतिज्ञोंने यह बात अच्छी तरह समझली कि आयरिश लोगोंके असतुष्ट रहनेके वास्तवमे कुछ सबल कारण अवश्य हैं, नहीं तो ऐसे साहसके काम करके वे अपनी जान जोखिममें डालनेके लिए तैयार न होते। इस लिए विद्रोहका दमन होने पर उन लोगोंका लक्ष्य इस प्रश्नकी मीमासाकी ओर गया कि आयरिश लोगोंका समाधान किस बातसे होगा और वे किस तरह सतुष्ट होंगे। उसी अवसर पर आयरिश नेताओंने इग्लैण्डका ध्यान उस विनाकारण होनेवाले खर्चकी ओर दिलाया जो आयरिश खजानेसे प्रोटेस्टेण्ट-धर्ममण्डलके पालनके लिए होता था।

जिस समय इंग्लैण्ड और आयर्लण्डकी पार्लमेण्ट एक हुई थी उस समयके बने हुए पार्लमेण्टके नियमोंमें एक धारा यह भी रक्खी गई थी कि इंग्लैण्ड और आयर्लैण्डके धर्म्म-मण्डलको एक करके इसका नाम संयुक्त धर्म्ममण्डल रक्खा जायगा और उसकी सारी व्यवस्था इंग्लैण्डके पहलेके धर्म्ममण्डलके अनुसार होगी। अर्थात् इंग्लैण्डमे जिस प्रकार सार्वजनिक खजानेका धन प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डल पर खर्च होता था उसी तरह आयरिश खजानेका धन भी प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डल पर खर्च होनेको था। लेकिन व्यक्तिगत दृष्टिसे जो कारण टाइथ करके विरुद्ध थे सार्वजनिक दृष्टिसे वे ही कारण आयरिश खजानेके धनके प्रोटेस्टेण्ट धर्म्माधिकारी मण्डल पर खर्च होनेके विरुद्ध भी प्रयुक्त होते थे। यह खर्च बहुत दिनोंसे होता आया था। आयर्लैण्डमें जो दो तीन सौ वर्षोंसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी प्रधानता थी यह खर्च उसका एक चिह्न था और इस बातका भय था कि यदि यह खर्च बंद कर दिया जायगा तो राजपक्षीय प्रोटेस्टेण्ट लोग असंतुष्ट होकर विद्रोहमें प्रवृत्त होंगे। लेकिन इस विद्रोहके भयकी अपेक्षा कैथोलिक लोगोंके असंतोष और वादग्रस्त विषयोंमे होनेवाले अन्यायका भय इंग्लैण्डके राजनीतिज्ञोंको अधिक जान पडा। इस नये प्रश्नको 'धर्म्म-मण्डल-विघटनका आन्दोलन' कहते है।

आयरिश पार्लमेण्टके स्वतंत्र रहनेके समय, अर्थात् सन् १८०० से पहले, यह प्रश्न आयर्लैण्डमें कभी उपस्थित नहीं हुआ था। यह बात नहीं थी कि लोगोंको उसका अन्याय खटकता न हो, लेकिन जब तक ऐसे कानून मौजूद थे, जिनके अनुसार रोमन कैथोलिक लोगोंके साथ पशुवत् व्यवहार होता था तब तक ऐसी फुटकर बातोंको सुधारनेका कौन प्रयत्न करता और यदि कोई करता भी तो नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज कौन सुनने जाता? लेकिन सन् १८५८ वाले फीनियन लोगोंके

विद्रोहके उपरान्त इस प्रश्नको आपसे आप महत्त्व प्राप्त हो गया। यदि यह प्रश्न किया जाता कि प्रोटेस्टेण्ट धर्ममंडल पर खजानेका धन खर्च करनेसे किनको लाभ होता है, तो इसका उत्तर केवल यही था कि सौमें केवल दस बीस आदमियोंको। और यदि यह प्रश्न किया जाता कि दस-बीस विधर्मी लोगोंके लाभके लिए कैथोलिक प्रजाका धन क्यों खर्च होता है, तो उसका उत्तर यही देना पड़ता कि ऐसा करना अन्याय है। यदि यह कहा जाता कि प्रोटेस्टेण्ट धर्ममंडलका पालन करके कैथोलिक लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट बनाया जायगा, तो हर एक आदमी यह समझ सकता है कि जो लोग तीन सौ वर्षोंसे असह्य दुःख सहकर भी धर्मभ्रष्ट नहीं हुए, वे मुट्ठीभर प्रोटेस्टेण्ट धर्माधिकारियोंके निर्जन गिरजोंमें चिल्लानेसे अपना धर्म क्यों छोड़ने लगे? इसके सिवाय तब बलपूर्वक धर्म्म बदलवानेके दिन भी बीत गये थे। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें अँगरेजोंके मनमें धार्मिक विषयोंमें सात्त्विक सहिष्णुताका पूरा सचार हो गया था, और तब केवल धर्म्ममण्डलके पालनसरीखे लड़कपनके हठके लिए आयर्लैण्डमें असंतोष रहने देना और ब्रिटिश साम्राज्यको विकलाग रखना, यह बात किसीको पसद नहीं आ सकती थी। सन् १८६८ ई० के मार्च महीनेमें जान फ्रासिस मेग्युअरने पार्लमेण्टमें कहा कि धर्म्ममण्डल तोड़ दिया जाय, अर्थात् उस पर होनेवाला सार्वजनिक व्यय बद कर दिया जाय। उस समय इस बात पर खूब वादविवाद हुआ। हिन्दुस्तानके भूतपूर्व वाइसराय लार्ड मेयो उन दिनों आयर्लैण्डके स्टेट सेक्रेटरी थे। उन्होंने उक्त बिलके बहुत कुछ अनुकूल सम्मति दी। लेकिन जब ग्लेडस्टनने इस बातका रग ढग देखा कि यदि किसी प्रधान राजनीतिज्ञने इसका समर्थन नहीं किया, तो यह नामजूर हो जायगा, तब उन्होंने खुद आगे बढ़कर उसका समर्थन किया। ग्लेडस्टन साहब स्वयं प्रोटेस्टेण्ट थे और

परम धार्मिक भी थे। उनकी सम्मति थी कि इग्लैण्डमें धर्ममण्डल पर सरकारी खजानेका धन खर्च किया जाय, पर तो भी कैथोलिक लोगोंके धनका प्रोटेस्टेण्ट धर्ममडल पर खर्च होना उन्हें अन्याययुक्त जान पडा और उनके इस प्रश्नको हाथमें लेते ही उसमे बल आ गया। ग्लैड-स्टन साहबने जो प्रस्ताव उपस्थित किया वह बहुमतसे पास हो गया। इसके उपरांत पार्लमेण्टका फिरसे चुनाव हुआ, तो भी इस वादग्रस्त प्रश्नके अनुकूल देगमे बहुमत था, जिसके कारण उक्त प्रस्ताव पार्लमेण्टमें बिलके रूपमे आते ही पास होकर कानून बन गया। यह बात सन् १८६८ ई० की है। इस कानूनके कारण आयर्लेण्टमे सरकारी धर्मा-मण्डलकी इतिश्री हो गई, केवल निजके प्रोटेस्टेण्ट धर्ममण्डल बच रहे। पर यह निश्चय हो गया कि उन्हें सरकारी खजानेसे धन न दिया जाय। आयरिश प्रोटेस्टेण्ट बिशपको आज तक हाउस आफ लार्ड्समें बैठ-नेका जो अधिकार था वह भी नष्ट हो गया। आयर्लैण्डमें धर्माधिकारि-योंको न्यायालयकी तरह न्याय करनेके कुछ अधिकार दिये गये थे, वे भी छीन लिये गये और निश्चय हो गया कि यदि प्रोटेस्टेण्ट लोग अपने तौर पर चुनाव करके धर्म-मण्डल स्थापित करें तो उन्हें केवल प्रोटेस्टे-ण्ट लोगोंके लिए ही अधिकारकी सनद दी जाय और कैथोलिक लोगों पर उसका कोई अमल न हो। कैथोलिक लोगोकी दृष्टिसे यह उनकी बडी भारी जीत हुई और ग्रथकारोंका मत है कि सभी पक्षोंके कैथो-लिक लोगोंने मिलकर और आपसका वैमनस्य भूल कर यह आन्दोलन किया था, इसी लिए उनकी यह जीत हुई।

धर्मविषयक दूसरी फुटकर बातें शिक्षाके सबधकी थीं। आयर्लैण्डके कैथोलिक लोगोकी जन्मभूमि होते हुए भी वहाँ कैथोलिक लोगोंको अपनी इच्छानुसार शिक्षा प्राप्त करनेका कोई सुभीता नहीं था, और यह बात उन्हें बहुत ही बुरी मालूम होती थी। सन् १८७३ तक आयर्लैण्डमें

केवल दो ही विश्वविद्यालय थे। लेकिन उनमे धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती थी। इसलिए आयरिश लोगोंका यह कहना था कि आयर्लैण्टमें एक नया विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय और उसमें धार्मिक कैथोलिक शिक्षा देनेकी व्यवस्था की जाय। लेकिन इग्लैण्टमें उनके इस कथनका बहुत विरोध होता था। एक तो कैथोलिक धर्म्म ही इग्लैण्टके लोगोंको बिलकुल पसंद नहीं था, और दूसरे यह कि जिन कारणोंसे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममटलपरका खर्च कम करना न्याय्य था, उन्हीं कारणोंसे एक नये कैथोलिक विश्वविद्यालयकी स्थापना करके प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका कर-स्वरूप दिया हुआ धन उसके लिए व्यय करना अन्याय होता। लेकिन सन् १८७३ के फरवरी महीनेमें ग्लैड-स्टन साहबने यह समझकर एक बिल उपस्थित किया कि कैथोलिक लोगोंके साथ जो अन्याय होता रहा है उसे देखते हुए यह अन्याय कुछ भी नहीं है और शिक्षाके लिए नवीन प्रबंध करना आवश्यक है। पर ११ मार्चको बहुत गहरा वादविवाद होनेके बाद वह बिल नामजूर हो गया। लेकिन कनजरवेटिव और आयरिश इन दोनो पक्षोंके प्रति-कूल होने पर ग्लैडस्टन साहब मन्त्रित्वके पदसे इस्तेफा देनेके लिए तैयार हो गये। और तबसे आज तक यह प्रश्न अनिश्चित दशामें पटा हुआ है। सन् १८२९ से कैथोलिक लोगोंको यह अधिकार अवश्य मिल गया कि वे प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओंमे जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकें, तथापि विश्वविद्यालय चाहे किसी राष्ट्रमे शिक्षाकी बुनि-याद न भी हो, पर वह उसका आधारस्तंभ अवश्य है। और अब तक आयर्लैण्डम कोई ऐसा विश्वविद्यालय नहीं बना है, जिसमें जाकर आय-रिश कैथोलिक लोग उत्साहपूर्वक शिक्षा प्राप्त करें। इस लिए शिक्षाके सम्बन्धमे कैथोलिक लोगोंकी शिकायत ज्योंकी त्यों बनी है।

५ खेतिहरोंका आन्दोलन।



ज़मीनके सम्बन्धमे आयरिश लोगोंकी जो शिकायतें है उनका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार हे। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि इग्लेण्डके राजा ट्यूडर और स्टुअर्टके राजत्वकाल तथा ओलीवर क्रामवेलके कार्य्यकालमें कैथोलिक लोगोंसे लाखों एकड जमीन छीनकर प्रोटेस्टेण्ट ॲगरेजोको दे दी गई थी और राजा विलियमके राजत्वकालमें तो जमीनकी जब्तीकी हद हो गई थी। उस समयतक ॲगरेजी राजनीतिका सिद्धान्त यह था कि जीते हुए आयरिश राष्ट्रको सब तरहसे दबाकर एक बार वहॉ गधोंका हल चला दिया जाय और विद्रोह तथा अराजनिष्ठाको जड मूलसे खोदकर फेंक दिया जाय। इसके बाद यदि उस जमीनमे सुधारके बीज बोये जायँगे तो वे अच्छी तरह अकुरित होंगे। इसी उद्देश्यसे आयर्लण्डमें बसे हुए ॲगरेजोंने राजा विलियमसे दिया हुआ वचन भग कराया और आयरिश लोगोंके धर्म्म तथा घरबार पर हल चलवानेका कार्य्य आरभ किया। जब सारी जमीन हाथमें आगई तब प्रोटेस्टेण्ट जमींदार यह सोचने लगे कि वह जोती बोई केसे जायगी। पहले उन्होंने स्काटलेण्डसे प्रोटेस्टेण्ट काश्तकार आदि बुलाकर उनके द्वारा जमीनको जुतवाने और बोआनेका प्रयत्न किया। लेकिन जमींदारोंने धीरे धीरे बहुत अधिक लगान मॉगना आरभ कर दिया जिससे वे काश्तकार नाराज होकर अमेरिका चले गये और तब उन्हें आयरिश कैथोलिक काश्तकारोंसे ही अपनी जमीनें जोतवानी और बोआनी पडीं। कैथोलिक काश्तकार भी यही चाहते थे। उनका निर्वाह खेती पर ही होता था, इस लिए कागज-पत्रोंमें मालिकी चाहे जिसकी हो, पैदावारके लिए जब उन्हें जमीन मिलगई

तब मानों उनका मुख्य काम होगया। यह जमीन यदि अबाधित रूपसे उनके हाथमें रहती तो ठीक था। लेकिन जब जमींदारोंको उनका मन-माना लगान नहीं मिलता था, तब वे अपनी जमीन दूसरे काश्तकारको देते थे, और हाथकी जमीन निकल जानेके कारण वह पहला काश्त-कार निराधार हो जाता था। इसके अतिरिक्त जमीनमें क्या चीज बोई जाय और किस खेतका कितना भाग किस काममें लाया जाय, इसके सबधमें भी काश्तकारों और जमींदारोंमें झगडा हुआ करता था। इस कारण काश्तकारोंको किसी प्रकारकी स्थिरता नहीं जान पडती थी और बराबर झगडे बखेडे होते रहते थे। यदि यह कहा जाय कि अठा-रहवीं शताब्दीके आरभमें वहाँ चार पचमाश जमीनके सबधमें यही दशा थी तो कुछ अत्युक्ति न होगी। लेकिन इस प्रकारकी स्थिति बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकती। लिमरिककी सन्धिके प्राय सत्तर वर्षबाद अर्थात् सन् १७६० के लगभग जमीनके सबन्धमें कैथोलिक काश्तकारों और प्रोटेस्टेण्ट जमींदारोंमें खुलकर झगडे होने लगे और वे झगडे लगभग १२० वर्ष तक—अर्थात् सन्१८८० में जमीनके सबधमें ग्लैडेस्टन साहबवाले कानूनके बनने तक—होते रहे। सन् १७६१ मे इग्लैण्डके गोरुओं (पशुओं) मे रोग फैला और आयरिश गोरु-ओंका दाम बहुत चढ गया। उस समय आयर्लैण्टके जमींदारोंने चराईके लिए ऐसी अच्छी अच्छी जमीनें पडती छोड दीं, जिनमे पहले अच्छी फसल हुआ करती थी। आयर्लण्डमें घास-चारा बहुत होता है, इस कारण यह प्रदेश गोरुओंके व्यापारके लिए बहुत उपयोगी है, लेकिन फसलवाली जमीनको पडती छोडना मानों गोरुओंको जिला कर मनुष्योंको मारना था। खेती-बारीका काम हाथसे निकल जानेके कारण निकम्मे और सतात हुए आयरिश खेतिहर शीघ्र ही जमीन्दारो पर टूटे। उन्होंने सैकडो चरि-योंके चारे जला डाले और गोरुओंको हाँक दिया तथा जखमी कर

दिया। इस प्रकार उन लोगोंने जमीन्दारोंको दिक करना शुरू किया। उनका कहना केवल इतना ही था कि गाँवकी पैदावारकी जमीन किसानोंके लिए छोड दी जाय, लगानमें कमी कर दी जाय, वेदखल किये हुए किसानोंको फिरसे जमीन मिले और उनकी रोजी लगे। लेकिन जमींदार लोग ये बातें नहीं मानते थे। इस पर अनेक प्रकारके अत्याचार और अनुचित कार्य्य होने लगे। निकम्मे खेतिहरोंको उन्हीं-मेंसे कुछ युवक नेता मिल गये और उन लोगोंने जमींदारों पर हाथ छोडना आरभ कर दिया। बहुतसे जमींदार अपने गुमाश्तोंकी मार्फत जमीनका इन्तजाम करते थे और उन गुमाश्तोंमेंसे बहुतसे उद्दण्ड, खाऊ, अविचारी और अत्याचारी होते थे। अत उन गुमाश्तोंके रहने पर ऐसी ऐसी बातें होने लगीं, जो स्वय जमींदारोंके रहते कभी न होतीं। इस प्रकार दोनों पक्षोंसे यह झगडा बहुत बढ गया। खेतिहरोंकी गुप्त सभायें होने लगीं और वे गुट बाँध कर जमींदारोंके विरुद्ध एक दूसरेको सहायता देने लगे।

खेतीकी जमीनमें पैदावार न होनेके कारण दो बुरे परिणाम हुए। बहुतसे खेतिहरोंको मजदूरी नहीं मिलती थी और फसलके जरासा भी खराब होने पर दुष्काल पड जाता था और लोगोंके प्राणों पर आ बनती थी। इस लिए खेतिहर लोग देश छोडकर विदेश जाने लगे। परदेश जानेवाले तो मजेमें रहे, पर जो लोग देशमें रह गये उन्हें बहुत कष्ट भोगना पडा। कुछ लोग यों ही दिन बिताते थे और कुछ लोग भेंडें चराते थे। भेंडें पालनेके काममें बहुत परिश्रम नहीं होता, इस लिए वह काम करनेवाले लोग धीरे धीरे आलसी बन चले। आलस्यके साथ साथ दुर्गुण भी लगे ही रहते है। भिखमगोंकी संख्या बढने लगी और उनके साथ ही साथ अपराधोंकी भी वृद्धि होने लगी। तात्पर्य्य यह कि देशके तत्त्व अथवा सार खेतका लाभ—उसके उपयोगके साथ साथ

दुरुपयोगका भी लाभ—देशके बाहर इंग्लेण्डमें रहनेवाले जमींदारोंको होने लगा, और इस स्थितिकी समस्त हानियाँ आयरिश लोगोंके पल्ले पडने लगीं। स्विफ्ट, बार्कले, प्रायर, डॉब्स आदि विचारशील और देशाभिमानी सज्जनों तथा लेखकोंने पारी पारीसे जमींदारोंको सचेत कर देखा, लेकिन उनके प्रयत्नका कोई फल नहीं हुआ। खेतिहरोंके कष्टोंकी सीमा न रह जानेके कारण उन्होंने कानूनको अपने हाथमें लिया। अपने देशमें हम लोग बराबर देखा करते हैं कि जब साहूकारों और जमींदारोंका अत्याचार बढ जाता है तब यही दशा हुआ करती है। सन् १८७६ में पूनेमें होनेवाले दंगोंका कारण जिस प्रकार साहूकारोंका सूद था, उसी प्रकार अठारहवीं शताब्दीमें जमींदारोंका अत्याचार अनर्थका कारण हुआ। मनस्टर प्रांतमें ' व्हाइट बॉयज ' और अलस्टर प्रांतमें ' ओक बॉयज, ' ' राइट बॉयज, ' ' थ्रेशर्स ' ' रिबनमेन ' ' हार्ट्स आफ स्टील, ' ' व्हाइट फीट ' ' ब्लेकफीट ' ' रॉकाइट ' आदि अनेक नामधारी विद्रोही दल उठ खडे हुए। उन लोगोंने ऐसे ऐसे अनुचित कृत्य किये जिनका वर्णन सुनकर रोंगटे खडे हो जाते हैं। आयरिश खेतिहर बिलकुल देहाती और जंगली थे और तिस पर उनके बहुत दिन दासतामें ही बीते थे। इस लिए उनका दंगा फसाद बडा ही भीषण हुआ। जिन लोगोंके दिन दासतामें बीतते हैं उनके दंगे फसाद-की कोई सीमा नहीं रह जाती, इसका अनुभव प्राचीन स्पार्टन लोगोंको हो चुका है, और इस समय आयर्लैण्डके अँगरेजी जमींदारोंके सामने भी यही बात आई। इन विद्रोहोंको अधिकारियोंने राजनीतिमूलक ठहराना चाहा, और षड्यन्त्रमें सम्मिलित रहनेके अभियोगमें बहुतसे नेताओंको फाँसी भी दी गई। लेकिन आगे चलकर शीघ्र ही यह बात मालूम हो गई कि ये सब कठिनाइयाँ जमींदारोंके अत्याचारके कारण हो रही हैं, और सभी इतिहासकारोंका यह मत है कि धर्म्म अथवा राजनीति-

का इन झगडोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। बेचारे खेतिहर राजनीति भली भाँति नहीं समझते। राजा कोई हो, उनकी जमीन उनके पास रहे, उसमें अच्छी पैदावार हो, और उससे उनके बालबच्चोंका गुजारा हो जाय, बस इतनेमे ही वे सतुष्ट रहते है। हाँ, यदि इसमें भी किसी प्रकारकी बाधा हो तो उनका चित्त खोलने लगता है और जो उनके सामने आ पडता है उसी पर वे हाथ छोड देते है।

सन् १७७८ के लगभग कैथोलिक लोगोंके कानूनी बधन कम होने लगे और पहले पहल जमीनके सबधके कानून रद् हुए। आजतक कैथोलिक लोगोका जमीन पर मालिकाना हक नहीं हो सकता था। लेकिन सन् १७७८ मे एक कानून बन गया, जिसके अनुसार वे ९९९ वर्षके करार पर जमीन ले सकते थे। ९९९ वर्षका अधिकार मानों सदाके लिए स्वामित्व ही था। सन् १७८२ वाले कानूनके अनुसार उन्हें जमीन खरीदने या रेहन रख सकनेका अधिकार मिला, और तब खेतिहर लोग प्रोटेस्टेण्ट जमींदारोंके हाथसे कुछ कुछ छूटने लगे। इसके उपरात आगे सन् १८०७ तक देशमें शाति थी। लेकिन सन् १८०७ से फिर दगे आरभ हुए और सन् १८३५ तक होते रहे। उस समय काश्तकार लोग लगानसे छुटकारा पाना चाहते थे और कहते थे कि काश्तकार *बिना कारण खेतसे बेदखल न किये जा सकें और मजदूरोंको मजदूरी* अधिक मिला करे। लेकिन खुद जमींदार लोग आयलैंडमें नहीं रहते थे। काश्तकारोंके सुख दु.ख और शिकायत आदि उन्हें प्रत्यक्ष देखने और सुननेको नहीं मिलती थी, इसलिए वे उनकी प्रार्थनाओंकी उपेक्षा करते थे। उस समय सरकारको चाहिए था कि उस ओर ध्यान देकर मध्यस्थता करती और यदि आवश्यकता होती तो कानून बनाकर स्वार्थी जमींदारोंको न्यायकी प्रत्यक्ष शिक्षा देती। भारतवर्षमें यह बात सरकारने कई बार की है। यहाँके प्रत्येक प्रातमें जमींदारोंकी जबरदस्ती

सरकारी कानूनोंने रोकी है, इतना ही नहीं बल्कि किसी किसी प्रांत-में तो जमींदारों और साहूकारोंकी हानिकरके भी खेतिहरोंके लिए सुभीते किये जाते है। आयर्लैण्डमें भी आगे चल कर ऐसे कानून बनाये गये और जमींदारोंकी अनुचित कामनायें रोकी गई। लेकिन ये सब बातें उस समय हुई जब तीन सौ बरस तक खेतिहरोंने स्वय कष्ट भोगे और दो सौ बरस तक साहूकारों और अधिकारियोंको कष्ट पहुँचाये। यह बात नहीं थी कि आयरिश खेतिहरोंने मनुष्यत्वको बिलकुल तिलाञ्जुली ही दे दी हो, अनेक प्रवासियोंके वर्णन देखनेसे जान पडता है कि वे लोग बहुत मिलनसार, मुहब्बती और शारीरिक दृष्टिसे बहुत सहनशील होते थे, आये-गयेका आदर-सत्कार करते थे, गरीबों और अनाथों पर दया दिखलाते थे और बडोंके साथ आदरपूर्वक व्यवहार करते थे, लेकिन जब जमींदारोंका अत्याचार असह्य हो जाता था, तब वे अपनी सुध भूल जाते थे और उनके द्वारा ऐसे ऐसे कार्य्य हो जाते थे जिनके लिए पीछे स्वय उन्हींको पश्चात्ताप होता था।

जमीदारोंको भी इन बातोंका पूरापूरा पता था। लेकिन उन्हें सरकारका भरोसा था इस लिए वे कुछ परवा न करते थे। सन् १८१६ में सर जान न्यूपोर्ट नामक एक सभासदने पार्लमेण्टमें कह दिया कि बिलकुल शातिके समय भी आयर्लैण्डमें २५००० सेना रखनी पडती है, इससे सिद्ध होता है कि वहाँके लोगोंके असतोषका कोई न कोई वास्तविक कारण है। उन्होंने यह भी कहा कि इस कारणका पता लगाना चाहिए। लेकिन पिटने इसका विरोध किया। सन् १८२० में खेतिहरोंकी स्थितिके सबधमें जाँच करनेके लिए एक कमीशन नियुक्त की गई। सात वर्ष तक उसका थोडा थोडा काम होता रहा। सन् १८२७ में इस कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिससे स्पष्ट प्रकट हो गया कि बडे बडे लोगोंने कमीशनके सामने जो

गवाहियाँ दी थीं उनमें अशाति और दगोंके मुख्य कारण यही बतलाये गये थे कि खेतिहर लोग दरिद्र है, करका बोझ उन पर बहुत अधिक है, जमींदारोंके गुमाश्ते अत्याचार करते है, दमनशील नियमोंसे लोगोंको कष्ट होता है और न्यायालयोंमें पक्षपात और कडाई होती है, राजद्रोह आदि राजकीय कल्पनाओंके साथ उनका कोई सबध नहीं है। लेकिन अधिकारियोंको सहसा इन बातों पर विश्वास नहीं होता था। खेतिहर लोग यदि दगा फसाद करते तो साथ ही उन्हें उसका प्रायश्चित्त भी करना पडता था। सरकारी पुलिस और सेनाके सामने बेचारे खेतिहर कबतक ठहर सकते थे? अधिक दगा फसाद होते ही जमींदार लोग पार्लमेण्टसे ऐसे कानून बनवा लेते थे जिनके अनुसार अधिकारियोंके अधिकार बढ जाते थे और अधिकारी लोग उन अधिकारोंका भरपूर उपयोग करने लगते थे, और इस प्रकार बहुत दिनों बाद अतमें वे लोग खेतिहरों पर अपना रंग जमा लेते थे। सन् १८०० से १८३५ तकके ३५ वर्षोंमेंसे केवल ग्यारह वर्ष ऐसे बीते थे जिनमें दमनशील नियमोंका व्यवहार नहीं हुआ था। बाकी चौबीस वर्ष आयर्लैण्डका सारा राजकार्य्य इसी प्रकारके कानूनोंके बल पर हुआ था। उदाहरणार्थ उन दिनों नीचे लिखे हुए भिन्न भिन्न कानून जारी थे—

१८००–१ विद्रोहका कानून।
१८०३–४ " "
१८०७–१० " " और फौजी कानून।
१८१४–१७ " "
१८२२–२४ " "
१८२५–२९ कैथोलिक संस्थायें बद करनेका कानून।
१८३१–३२ हथियारोंका कानून।
१८३३–३५ ‘कोअर्शन’ अर्थात् दमनकारक कानून।

लेकिन इन पैंतीस वर्षोंमें अधिकारियोंने पहले शांतिपूर्वक कभी इस बातका विचार नहीं किया कि खेतिहरोंके दुःख किन किन उपायोंसे दूर किये जा सकते हैं। इसका कारण यह था कि आयर्लैण्डका सारा राजकार्य्य और इंग्लिश पार्लमेण्टका बहुमत बिलकुल जमींदारोंके ही हाथमें था और उसका उपयोग वे केवल अपने हितसाधनमें ही करते थे। लेकिन धीरे धीरे धीरे यह बात सरकारी अधिकारियोंको भी कबूल करनी पड़ी। जब दमनकारक नियमोंकी सहायतासे देशकी अशांति दूर नहीं हुई तब जमींदार लोग सरकार पर दोष लगाने लगे। वे कहने लगे कि अधिकारी लोग ठीक बंदोबस्त नहीं करते, जितनी मदद चाहिए उतनी मदद वे जमींदारोंको नहीं देते और ठीक तरहसे कानूनकी पाबंदी नहीं करते। इस प्रकार अपना पाप वे खेतिहरोंके साथ साथ सरकारके सिर पर भी लादने लगे। उस समय अधिकारियोंने इसके बदलेमें स्पष्ट रूपसे जमींदारोंको उनकी वास्तविक स्थिति बतलाकर उनके कान खोल दिये। उन दिनों थामस ड्रमंड नामक एक उदार और महान् पुरुष आयर्लैण्डके चीफ सेक्रेटरीके पद पर था। (सन् १८३८ ई०) उसने अपनी एक आज्ञामें लिखा था—"जमींदार लोग सिर्फ जमीनकी आमदनी खाते हैं। लेकिन जिस प्रकार वे अपने अधिकार जानते हैं उस प्रकार अपने कर्त्तव्य नहीं जानते। जिस समय देशमें दुष्काल पड़नेके कारण लोग भूखों मर रहे हों, अनाज मँहगा हो गया हो और मजदूरी न मिलती हो, उन दिनों दरिद्र खेतिहरोंको पैदावारका अंश न देनेके कारण निकाल देना और उनसे जमीन छीन लेना न्याय नहीं है। दंगे-फसाद इसी प्रकारके कार्य्योंसे होते हैं। यह समझना भूल है कि कड़े कड़े कानून बनाकर ये दंगे रोके जा सकेंगे। ऐसे गरीब लोगोंके साथ जमींदार और अधिकारी दोनोंको दयापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। थामस ड्रमंड खाली जबानी जमा-खर्च करनेवाला आदमी

नहीं था। उसने आयरिश लोगोंके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करके उनके कष्टोंको यथासाध्य कम किया। भारतवर्षमें लार्ड रिपनके नामका जितना आदर है, आयर्लैण्डमें थामस ड्रमडके नामका भी उतनाही आदर है। उसने जमींदारोंकी आँखोंमें खूब तेज अंजन लगाया, उसके दक्ष, पर विचारपूर्ण, शासनके समय लडाई झगड़ों और अपराधोंमें बहुत कमी हुई। लेकिन उसकी मृत्युके उपरान्त सन् १८४२ से फिर दंगे शुरू हुए। १८४४ में खेतिहरोंके इस प्रकारके एक हजार अपराध हुए। सन् १८४५ ई० में यह संख्या तीन हजार तक पहुँची। १८४८ ई० में तो विद्रोह ही हो गये और इस प्रकार १८४२ से सात आठ वर्ष तकके लिए फिर सब प्रकारके दमनकारक नियमों और अत्याचारोंका साम्राज्य हो गया।

सन् १८१९, १८२३, १८२४ और १८२५ मे आयर्लैण्डकी खेती-के संबधमें जाँच करनेके लिए जो कमेटियाँ नियुक्त की गई थीं उन कमेटियोंने खेतिहरोकी दीन स्थितिका वर्णन करके इस बातकी सिफारिश की कि उन्हें सहायता देना आवश्यक है। लेकिन उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। सन् १८२९ में पार्लमेण्ट में इस आशयका एक बिल उप-स्थित हुआ कि जमींदारोंसे पडती जमीनें छीनकर खेतिहरोंको दे दी जायँ जिसे कामन्स सभाने मंजूर कर लिया, लेकिन लार्ड्स सभाने उसे नामंजूर कर दिया। इसके बाद ग्रटनके लडकेके—जो पार्लमेण्टका मेम्बर था—बहुत उद्योग करने पर सन् १८३१ में लार्ड अलथार्पकी सूचना पर पार्लमेण्टने आयर्लैण्टमें लोकोपयोगी कामोंमें खर्च करनेके लिए पचास हजार पाउण्ड देना स्वीकार किया। सन १८३४ और १८३७ में स्क्राप और शार्मन क्राफर्डने खेतिहरोंको जमीन पर करीब करीब मिलाकियतके हक्क दिलानेके संबधमें बिल उपस्थित किये, पर वे नामंजूर होगये। लेकिन इसके बाद १८४२ में नहरोंका कानून पास होजाने पर पडती जमीनको काममें लानेमें कुछ सहायता मिली। सन् १८४३

में डीवान कमीशन नियुक्त हुआ। उसके सामने मुख्य प्रश्न अलस्टर प्रांतके काश्तकारोंकी मिलकियतके हकका था। सन् १८४५ में उसकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी उसमें यह स्वीकार किया गया था कि "काश्तकारोंका मालिकाना हक तो साबित नहीं होता, परंतु जब एक काश्तकार जमीन छोड़ता और उसके स्थान पर दूसरा काश्तकार आता है तब आपसके व्यवहारके अनुसार दूसरे काश्तकारसे पहले काश्तकारको स्वामित्वके बदलेमें कुछ धन मिलता है।" यद्यपि उस समय यह समझ और यह चाल रही हो कि इतना धन देनेवाले काश्तकारको स्वामित्वका अधिकार मिलता है तो उसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। लेकिन 'डीवान' कमीशनके सदस्य बहुधा जमींदार ही थे और ऐसे लोगोंसे काश्तकारोंका मालिकाना हक मजूर करनेकी आशा करना डेनियल ओकानेलके कथनानुसार कसाइयोंसे मास-भक्षण-निषेध पर व्याख्यान देनेकी आशा करनेके समान था। सन् १८४५,१८४७ और १८४८ में स्टानले और शार्मन क्राफर्डने पार्लमेण्टमें इस आशय के बिल उपस्थित किये कि जमींदार लोग खेतमें जो सुधार न करें, पर अधिकारी जिन सुधारोंका होना आवश्यक समझें, वे सुधार काश्तकार लोग अपने खर्चेसे करलें और जब जमीन छोड़ने लगें तब सारा खर्च उन्हें जमींदारसे मिल जाय। लेकिन इसका कोई फल नहीं हुआ। सन् १८४९ में जमींदारोंको ऋणमुक्त करके उनकी जमीनें छुड़ा देनेके सबधमें एक कानून पास हुआ। उसके अनुसार काश्तकारोंके तो किसी प्रकारके लाभकी सम्भावना थी ही नहीं, हाँ बहुतसी जमीन एकदम बिक्रीके लिए निकल जानेके कारण उलटे जमींदारोंका नुकसान हुआ। सन् १८४८ ई० में आयर्लैण्डमें पहला कृषकसघ स्थापित हुआ और सन् १८५० में उसकी दूसरी आवृत्ति हुई। लेकिन शीघ्र ही इस संस्थामें दो पक्ष होगये और सन् १८६० तक कोई काम नहीं हुआ। सन् १८६१ में

पार्लैमेण्टने जमीनके सम्बन्धमें डीसीज एक्ट नामका एक कानून पास किया। उसका मुख्य तात्पर्य्य यह था कि खेतिहर लोग सिर्फ हिस्सेदार माने जायँ और जमींदार तथा काश्तकारमें पहलेसे जो करार हो जाय उसीके अनुसार काश्तकारसे जमींदारको लगान मिले, उनके दूसरे पारस्परिक व्यवहार हों और पट्टा रद्द किया जाय। लेकिन केवल करार पर निर्भर रहनेमें काश्तकारोंकी हानि थी। अमीरों और गरीबोंमें लिखा पढ़ी करके जो करार होते हैं उनमें प्राय अमीरोंका ही लाभ होता है। क्योंकि गरीब लोग गरजी होते है। उनका काम रुका रहता है, इसलिए उन्हें अमीरोंको मनमानी बातें लिख देनी पडती है। यह बात नहीं है कि गरीब लोग यह न समझते हों कि हम अपने नुकसानकी बात लिख रहे है। लेकिन उसमे उनका इतना ध्यान रहता है कि चाहे जिससे हो खेतीके लिए जमीन ले ली जाय और उसी पर साल भर गुजारा किया जाय। अगर कोई दिक्कत हो भी, तो वह सालके अतमें लगान देनेके समय या पट्टेकी मुद्दत बीतनेके समय। बल्कि वे लोग इसी प्रकारके दैववाद पर निर्भर रहते है कि अतमें जमींदार, करारका कागज, न्यायालय और परमेश्वर जो कुछ करे वही ठीक है। यह कहकर कि 'आगेकी बात आगे देखी जायगी' जमीदार जो कुछ चाहता है, खेतिहर लोग खुशीसे वही लिख देते है। कुछ खेतिहर बहुत सीधे साधे होते है और उन्हें इस बातकी कल्पना भी नहीं होती कि आगे चलकर कभी कोई बखेडा खडा होगा। जो कुछ उनसे कहा जाय वही वे अपने भोलेपनके कारण लिख देते है। अर्थात् करारोंके लिखे जानेके कारण जमींदारका पक्ष ही बलवान् रहता है और न्यायालयको खुशीसे अथवा कानूनकी सख्तीसे जमीदारके अनुकूल ही फैसला करना पडता है। लेकिन वास्तविक कष्ट उसी समय उत्पन्न होता है जब कि उस फैसलेके अनुसार काम होने लगता है। जमींदारोंको बलपूर्वक लगान

वसूल करनेका अथवा काश्तकारको बेदखल करनेका हुक्म मिलता है। काश्तकार लगान देनेमें असमर्थ होता है, उसके बरतन भाडे बाहर निकलते हैं, उसकी उपजीविकाके साधन नष्ट होते हैं और उसकी यह आपत्ति देखकर कानून एक तरफ हो जाता है और सूक्ष्म न्यायतत्वके अनुरोध पर बननेवाला लोकमत और सहानुभूति उस काश्तकारकी तरफ हो जाती है। यदि काश्तकार स्वय उद्दण्ड, अभिमानी या तामसी हुआ तो वह कानून और अदालतको एक तरफ रख देता है और सिर्फ बदमाशीके भरोसे पर अपना न्याय स्वय ही करनेके लिए तैयार हो जाता है, और तब मारपीट होती है। इन दोनों प्रकारोंसे कानूनकी पावदीमें रुकावट होती है, बाधा पडती है, और यदि करार तथा सूक्ष्म न्यायतत्त्वमें बहुत विरोध पटा तो सरकारको बीचमें पड-कर दुर्बलके प्रति थोडा बहुत न्याय करना पटता है और इसी लिए कानुन भी बदलना पटता है।

ऊपर कहे हुए कानूनोंसे आयरिश खेतिहरोंको कोई सहायता नहीं मिली और विरोध बराबर बढने लगा। जमींदारोंको इस बातका अधि-कार था कि वे जब चाहे तब काश्तकारोंको बेदखल कर दें, इस लिए जमीन दुरुस्त करनेमें काश्तकारका श्रम और व्यय होता था वह व्यर्थ हो जाता था। जिस प्रकार बना बनाया बिल पाकर साँप उस पर अधिकार कर लेता है, उसी प्रकार ठीक की हुई जमीन एक काश्तकारसे लेकर जमींदार लोग किसी ऐसे दूसरे काश्तकारको दे देते थे जो अधिक लगान या अंश देता था। इस स्थितिके कारण काश्तकारोंकी दुर्दशा जब चरम सीमातक पहुँच गई तब सन् १८७० मे पार्लमेण्टको एक नया कानून बनाना पढा। इस कानूनके अनुसार यह निश्चित हुआ कि जिस दशामें काश्तकार लगानकी निश्चित रकम न दे और इस लिए जमींदारको उसे खेतसे बेदखल करना पडे केवल उसी दशामें जमींदार

उसकी नुकसानी न दे। लेकिन लगान न देनेके सिवा यदि और कोई शर्त काश्तकार तोड दे, या किसी करारके मुताबिक काम न करे और उसके कारण वह जमीनसे बे-दखल किया जाय तो जमींदार उसकी क्षतिपूर्ति अवश्य कर दे। अर्थात् यदि काश्तकारने खेतीबारीके कामके लिए कोई छोटा मोटा मकान बनाया हो, अथवा बाँध बाँधा हो, अथवा खेतमें विशेष रूपसे खाद डाली हो अथवा पानी लाकर बाग बगीचा लगाया हो, तो इन कामोंके लिए उसका जो व्यय और परिश्रम हुआ हो, जमींदार उसकी पूर्तिके लिए जब काश्तकारको धन दे तभी उसे खेतसे बे-दखल कर सके। लेकिन इतनेसे भी काम नहीं चलता था। क्योंकि आयर्लैण्डमें हिन्दुस्तानकी तरह नित्य दुष्काल पड़ता था, और जब दुष्काल पडता है तब काश्तकार लोग लगान नहीं देसकते। यदि अतिवृष्टि या अनावृष्टिके कारण फसल मारी जाय तो इसमें काश्तकारका क्या दोष ? और जब अकाल पडे तब काश्तकार स्वयं क्या खायँ और जमींदारको क्या दें ? अर्थात् सन् १८७० वाले कानूनमें जो इस आशयकी एक धारा थी कि यदि काश्तकार समय पर लगान न दे तो विना क्षतिपूर्ति किये ही वह बे-दखल किया जा सकता है, वह धारा काश्तकारोंको बहुत खटकने लगी। सन् १८७९ के लगभग अनाजका भाव बहुत गिर गया और दुष्कालकी पीडा बहुत बढ गई। उस समय फिर एक बार वैसी ही अशांति फैली जैसी पहले सन् १८६० में फैली थी। इस लिए खेती-बारीके संबधमें राजकीय आन्दोलन आरभ हुआ। उस वर्ष अगस्त महीनेमें माइकल डेविटने 'लैण्डलीग' नामक संस्था स्थापित की और शीघ्र ही पार्नेल उस संस्थाका सभापति हो गया। लैण्डलीगका मुख्य उद्देश्य यह था कि देशमें जमींदारों और काश्तकारोंके जो विद्रोह होते है वे बद हो जायँ। पहले फीनियन आन्दोलनमें जो लोग सम्मिलित थे उन्हें अपने साथ

मिलाकर डेविड और पार्नेलने सारे आयर्लैण्डमें इस सभाकी शाखायें स्थापित कर दीं। अमेरिकासे भी उन लोगोंको इस कामके लिए चार लाख रुपयोंकी सहायता मिली। धीरे धीरे लैण्डलीगका काम इतना बढ़ा कि खेतिहरोंके कष्टोंके अतिरिक्त और किसी बातकी कोई चर्चा ही न करता था।

दूसरे वर्ष ग्लैटस्टन प्रधान मंत्री हुए। उन्होंने यह सब स्थिति देख कर स्टेट सेक्रेटरी फारेस्टरको आयरिश खेतिहरोंकी स्थिति सुधारनेके काममें सहायता दी। लिबरल मन्त्रिमंडलने शीघ्र ही पार्लमेण्टमें एक बिल पास करके यह निश्चय किया कि लगान न चुकानेवाले काश्तकारको जमींदार बेदखल कर सके, लेकिन उसे बेदखल करनेसे पहले उसके उस व्यय और परिश्रमकी पूर्ति कर दे जो उसे जमीन दुरुस्त करनेमें हुआ हो। लेकिन लार्ड्स सभाने इस बिलके पास होनेमें अड़चन डाली जिससे कामन्स सभाके पास किये हुए बिलके अनुसार काम न हो सकता था। इस कारण आयरिश लोगोंमें खलबली पड़गई और उन्होंने अपना न्याय अपने हाथसे करनेके लिए स्वालंबनकी पद्धतिसे कामलेना आरंभ किया। उन्होंने यह निश्चय किया कि जिस जमीनसे जमींदार किसी काश्तकारको बे-दखल करे उस जमीनको और कोई काश्तकार लगान पर न ले। अर्थात् खेत खाली पड़जानेके कारण जमींदारकी हानि होगी और इस प्रकार वे समझने लगेंगे कि पहले काश्तकारको जमीनसे बे-दखल करनेमें हमने अन्याय किया। लेकिन इतनेसे ही काम न चला। एक काश्तकारके बे-दखल करने पर जमीन प्राय खाली ही पड़ी रहती थी, लेकिन लैण्डलीगके संचालकोंने यह निश्चय किया कि यदि कोई काश्तकार लोकमत न माने और वह जमीन ले ले तो उसका बहिष्कार किया जाय। सितंबर सन् १८८० में पार्नेलने एक स्थान पर वक्तृता देते हुए कहा था —"जमीं-

दारोंके अत्याचार वंद करनेका सबसे उत्तम उपाय यही है कि जो काश्तकार लोकमतकी परवा न करके खाली पडी हुई जमीन ले ले उसे महारोगीकी तरह समाजसे दूर रक्खा जाय और उसके साथ सब प्रकारके व्यवहार बद कर दिये जायँ। उस समय एक तो जमींदारोंके अत्याचारके कारण लोकमतरूपी जगल पहले ही बहुत तप गया था, तिस पर पार्नेल सरीखे नेताके प्रसर शब्दोंकी चिनगारी पडी, जिससे आग एकदम भड़क उठी। सारे देशमें बहिष्कारकी धूम मच गई। अत्याचारी जमींदारो और उनके गुमाश्तों तथा कारिन्दोंको भरे समाजमें रह कर उतने ही दुःख और आपत्तियाँ भोगनी पडती थीं, जितनी किसीको समुद्रमेंके किसी निर्जन और उजाड टापूमें रहकर भोगनी पडती है। खेतमेंकी फसल तैयार हो जाने पर उसे काटनेमें भी उन्हें सहायता नहीं मिलती थी। एक स्थान पर तो यहाँ तक हुआ कि फसल काटनेके लिए बड़ी कठिनतासे एकत्र करके जो पचास मजदूर भेजे गये थे उनकी रक्षाके लिए उनके साथ नौसौ हथियारबंद सिपाही भी भेजने पडे थे! यदि केवल यही सिद्ध करनेके लिए कि अधिकारियोंके बहुत हठ करने पर लोगोंको कानूनके मुताबिक काम करना ही पडता है, कोई जमींदार मजदूरोंके साथ हथियारबद सिपाही भेजकर फसल कटवा ले तो उसका फल वहींतक रह जाता है। सारे जमींदारोंकी लाखों एकड जमीनकी जोताई, बोआई और कटाई आदि हथियारबद सिपाहियोंके पहरेमें कराना जमींदारोंके लिए और सरकारके लिए भी असमव ही था।

जब यह अवस्था आ पहुँची तब अधिकारियोंने उसके निराकरणके उपाय आरम किये। उनका मुख्य कटाक्ष लैण्डलीग पर था, इस लिए उन्होंने यह निश्चय किया कि यदि उसके सस्थापकों और संचालकोंको जेल भेज दिया जाय तो हमारा आधेसे अधिक कार्य्य हो जाय। इसीके

अनुसार पार्नेल आदि पर मुक्दमे चलाये गये । जनवरी सन् १८२१ ई० में जूरियोंमें मतभेद हो जानेके कारण पार्नेल निर्दोष ठहरा, इस लिए उसकी सत्ता पहलेसे दसगुनी बढ गई । अधिकारियोंने भी नये दमनकारक कानून बनाये, लेकिन अतमें सन् १८८१ में लिबरल मत्रि-मडलको जमीनके सबधमें एक नया कानून पास करना पडा। इस नये कानूनका मुख्य तात्पर्य यह था कि जमीनके सम्बन्धमे काश्तकार अपना अधिकार बेच सके। केवल अपनी इच्छाके अनुसार जमींदार लोग काश्तकारोंको बेदखल न कर सकें और जमीनकी हैसियतके मुताबिक ही लगान लगे। जब काश्तकार वाजिब लगान न दे तभी वह जमीनसे बेदखल किया जाय, योंही बेदखल न कर दिया जाय। लगानकी रकम पचोंकी मारफत निश्चित हुआ करे, आपसकी चढा-ऊपरी पर ही वह निर्भर न रहे । लेकिन कई कारणोंसे पार्नलको यह बिल पसद नहीं था, इससे उसके पास होनेके समय वह अपने पैतीस अनुयायियोंके साथ पार्लमेण्टसे उठ गया। उसका यह कहना था कि स्पष्ट रूपसे यह निश्चित कर दिया जाय कि जमीन पर खेतिहरोंका स्वामित्व है। लैण्ड लीगकी ओरसे लोगोंको यह उपदेश किया जाने लगा कि लगानकी रकम निश्चित करनेके लिए जो पचायत बनती है उसकी रचना वैसी नहीं है, जैसी होनी चाहिए, इस लिए इस पचायतसे काश्तकार लोग अपना फैसला न करावें । एक बार फिर पार्नेल पर मुकदमा चला, और इस बार अधिकारियोंकी उसे जेल भेजनेकी कामना पूरी हुई । इधर पार्नेलने घोषणापत्र निकालकर लोगोंसे कह दिया कि तुम जमींदारोंको लगान मत दो, लेकिन इस घोषणाको बेकायदे बतलाकर अधिकारियोंने रोक दिया । सन् १८८१ में खेतिहरोंके दगे बढ गये और एक ही वर्षमें प्राय पाँच हजार अपराध अधिक हुए। जमींदारोंके गोरू मारे जाने लगे, लैण्टली-

गकी हजारों शाखायें होगई और स्त्रियाँ तथा बच्चे भी लैण्डलीगके उप-देशकका काम करने लगे। इस प्रकार जब यह निश्चय हो गया कि केवल दमननीतिसे ही कोई काम नहीं हो सकता, तब ग्लैडस्टन साहब-को एक नई ही नीतिका अवलबन करना पडा। उन्होंने किलमाइन-हमके जेलसे पार्नेल, डिलन आदिको छोड दिया और नया कायदा बनाकर काश्तकारोंको लगानकी वह रकम माफ़ कर दी जो वसूल न होनेके कारण बाकी पड गई थी। इतना होने पर पार्नेलने लैण्डलीगके छोडकर नेशनल लीग नामकी एक नई सस्था स्थापित की। इस लीगने न्याय आदिका काम अपने हाथमें लिया और उन काश्तकारोंको सामा-जिक दण्ड देनेका कार्य्य आरभ किया, जो लोकमतके विरुद्ध व्यवहार करते थे। उधर मत्रिमडल भी खेतिहरोंकी दशा सुधारनेके लिए थोडा बहुत काम कर रहा था, अत उनके लिए सस्ते भाडेके झोंपडे बनवा देने और उन्हें काम धंधा दिलानेमें सहायता देनेके लिये प्रयत्न हुए। 'एशबर्न एक्ट' नामका एक कानून पास हुआ, जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि काश्तकारोंको जमीन पर स्वामित्वका अधिकार दिलानेके लिए प-चास लाख पाउण्ड अलग निकाल दिये जायँ। लेकिन इस कानूनका जितना उपयोग होना चाहिए था उतना उपयोग नहीं हुआ। इसके उपरात सन् १८९१ में एशबर्न एक्टमे कुछ सुधार करनेके लिए बाल-फोरने एक बिल उपस्थित किया। इस बिलका उद्देश्य यह था कि जमींदारोंके हाथसे जमीन निकालकर काश्तकारोंको उसे खरीद कर खुद मालिक बननेमें सहायता देनेके लिए तीन करोड रुपयोंका एक फ़ण्ड हो, इस प्रकार यह कार्य्य आरम होने पर आगे चलकर काश्त-कार जमीनके मालिक हो जायँगे तब यह कर्ज लौटा देंगे, जिससे दूसरे काश्तकारोंको भी धनकी सहायता दी जा सकेगी। इस प्रकार धीरे धीरे सारे काश्तकार अपनी अपनी जमीनके मालिक हो जायँगे। जमींदारोंको

स्वामित्वका अधिकार छोडनेके बदलेमें जो रकम दी जानेको थी वह भी मुनासिब तौरसे पहले ही निश्चित कर दी गई थी। इस कानूनसे बडा काम निकला। यदि यह कहा जाय कि इस कानूनके कारण जमींदारोंको धन लेकर जबरदस्ती अपनी जमीन देनी पडती थी, तो कुछ अनुचित न होगा। तथापि जमींदारोंके पास बहुत अधिक जमीन थी, इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि इससे जमींदारोंकी हानि हुई। इस कानूनको जारी करनेके अतिरिक्त काश्तकारोंके सुभीतेकी और भी बहुत सी बातें बालफोरने कीं। रेलवेसंबंधी छोटे मोटे कायदे बनाकर पश्चिम आयर्लैण्डके लोगोंके लिए काम धंधे निकाल दिये और इस पिछडे हुए प्रदेशके खेतिहरोंका पूर्व तथा उत्तरके प्रदेशके खेतिहरोंसे सबंध बढ जानेके कारण उनकी स्थिति बहुत कुछ सुधर गई। इसके उपरांत सन् १८९६ में जमीनके सबंधमें फिर एक कानून बनाया गया। पहलेके कानूनोंमें काश्तकारोंकी जो शिकायतें बच रही थीं वे इस नये कानूनसे दूर हो गईं। सन् १८९९ में कृषि तथा औद्योगिक शिक्षाके लिए एक नया विभाग और बोर्ड बनाया गया। इस विभागके सभापतिकी हैसियतसे सर होरेस प्रकटने स्वावलबनपूर्वक खेतीका सुधार करने, शिक्षा देने, अच्छे अच्छे गोरू तैयार करने, दूध दहीके कारखाने खोलने तथा इसी प्रकारके अन्य उपयोगी काम करनेका उपक्रम किया। बस्ती बहुत बढ जानेके कारण जिस भागके खेतिहर बहुत दरिद्र हो गये थे उस भागसे लोगोंकी बस्ती कम करके खेतिहर लोग दूसरे भागमें भेज दिये गये, और वहाँ उनके लिए सब प्रकारका प्रबंध और सुभीता कर दिया गया। लेकिन खेतिहरोंको जमीनका मालिक बनानेका जो मुख्य काम था वह उतनी अच्छी तरहसे नहीं हुआ और उसके लिए धनकी कमी होने लगी। सन् १९०३ में जब बालफोर प्रधान मंत्री थे और विंढम आयर्लैण्डके स्टेट सेक्रेटरी थे तब फिर एक कानून बना और इस कामके

न आ गये हों, तथापि कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों पथोंके बहुतसे लोगोंके मनमें पार्लमेण्ट नष्ट होनेके दिनसे फिरसे उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेकी जो उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई वह बराबर बनी रही है । आयरिश लोग, चाहे वे कैथोलिक हों या प्रोटेस्टेण्ट हों, स्वतत्र आयरिश पार्लमेण्टको ही आयरिश राष्ट्रीयताका मुख्य चिह्न समझते है, और आयरिश राष्ट्रीयताकी उनकी कल्पना दिन पर दिन प्रबल होनेके कारण उनके साथ ही साथ स्वतत्र पार्लमेण्ट प्राप्त करनेकी कल्पना भी बलवती होती गई है ।

सन् १८०० के उपरात तीन वर्ष विद्रोह और दमनकी धूममें ही बीत गये । उसके उपरात कैथोलिक लोगोंकी स्वतत्रता और तदनन्तर टाइथ करका प्रश्न उपस्थित हुआ और इस प्रकार पार्लमेण्टकी स्वतत्रताका प्रश्न पीछे पडा रह गया । लेकिन डेनियल ओकानेलने जब यह समझा कि जिस तरह उक्त दोनों बातोंके आन्दोलनमें हमें सफलता हुई है उसी तरह इस तीसरी बातमें भी हमें सफलता होगी, तब उसने इस आन्दोलनको हाथमे लिया, जिसे लोग थोडा बहुत भूल गये थे । उसके इस नये आन्दोलनका वास्तविक आरभ सन् १८४० में हुआ । इसे अँगरेजीमें 'रिपीलका आन्दोलन' कहते है । इसमें सदेह नहीं कि इस आन्दोलनमें उस समयके आयर्लैण्डके सर्वश्रेष्ठ और सुप्रसिद्ध नेता तथा वक्ता सम्मिलित थे । लेकिन यह बात नहीं है कि किसी सार्वजनिक हितके प्रश्नको चाहे उसका महत्त्व सदा समान ही क्यों न रहता हो, सदा लोकमतकी समान अनुकूलता ही मिलती हो । प्रत्येक आन्दोलनके लिए उपयुक्त समयकी अवश्यकता होती है । इसका अर्थ यह है कि उसके स[illegible] [illegible]तक [illegible] [illegible]टताके अनुकूल होनेके लिए जिन अने[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] साहचर्य आवश्यक होता है, उ[illegible]

वह आन्दोलन कितने ही महत्त्वका क्यों न हो, उसके लिए लोगोंमें भी उतनी खलबली नहीं होती। इस नये आन्दोलनके सम्बन्धमें भी पहले पहल यही बात हुई। उसके लिए ओकानेलने प्रयत्न अवश्य किया, लेकिन एक तो उस समय उसके सम्बन्धमें लोगोंका मत कुछ बदल गया था। पहले सन् १८३२ में धार्म्मिक स्वतन्त्रताके सबधमें सफलता होनेके उपरात उसने पार्लमेण्टका प्रश्न हाथमें लिया था। उस वर्ष विलायतकी पार्लमेण्टके चुनावमे आयर्लण्डसे जो सभासद चुने गये थे उनमेंसे कमसे कम आधे सभासद स्वतत्र पार्लमेण्टके पक्षपाती थे। लेकिन इस शुभ आरभसे ओकानेलको जितना लाभ उठाना चाहिए था उतना लाभ न उठाकर उसने इस आन्दोलनको ठण्ढा हो जाने दिया, और इसी लिए लोग उससे कुछ नाराज हो गये थे। इसके उपरात शीघ्र ही ओकानेलके लडके और दामादने सरकारी उच्च पद तथा वेतनकी नौकरियाँ कर लीं, और स्वतत्र पार्लमेण्टके पक्षमें रहनेके वास्ते कुछ आयरिश सभासदोंने भी उसी मार्गका अवलबन किया। इसीसे लोग ओकानेल तथा उसके अनुयायियोंसे बुरा मानने लग गये थे। बहुतसे लोग तो यह कहने लग गये थे कि इग्लैण्डके व्हिग अर्थात् लिबरल पक्षके लोगोंके साथ ओकानेल उचितसे अधिक स्नेह और सद्व्यवहार रखता है। सन् १८३२ के लगभग उसने 'आयरिश मित्रमडल' नामकी एक सस्था स्थापित की थी। शीघ्र ही उसके टूट जाने पर उसने फिर 'प्रास्तानिक' नामकी एक मडली स्थापित की। उसका उद्देश्य यह था कि यदि आयर्लण्टके लोगोंके साथ न्याय न हो, अर्थात् यदि उन्हें इग्लैण्डके लोगोंके समान अधिकार न मिलें तो अबतकके आन्दोलनको केवल प्रस्तावना समझकर उस समयतक बराबर आन्दोलन जारी रक्खा जाय, जबतक स्वतत्रता न मिले। लेकिन लोगोंको इस प्रकारकी शर्त लगाकर कुछ मागना पसद न था। इससे लोग कहने लगे कि ओका-

तरह जम गई थी और वे समझने लगे थे कि सन् १८०० में जो असम्मत योग हुआ है उसे रद् करके पहलेकी तरह स्वतन्त्र पार्लमेण्ट प्राप्त करनी चाहिए।

ओकानेलने नये आन्दोलनको सफल करनेका सारा आधार इन्हीं बातों पर रक्खा था और समझ लिया था कि हमने सत्पक्ष ही स्वीकृत किया है और न्याय हमारे पक्षमें है। पहले पहल इस नये आन्दोलन-वाली सभामें अधिक लोक नहीं आते थे और उसका चन्दा भी कठिनता से ही मिलता था। लेकिन वह बराबर 'कार्न एक्सचेंज' नामक लोकप्रिय सस्थाके हालमें इस नये आन्दोलनवाली सभाका प्रति सप्ताह अधिवेशन करता रहता था और चदेकी रकम जमा करता जाता था। दस वर्ष पहलेके चुनावमे स्वतन्त्र पार्लमेण्टके पक्षपाती जो चालीस आदमी चुने गये थे, नये चुनावमे उनके स्थान पर केवल बारह आदमी ही रह गये थे, उधर डबलिनके चुनावमें स्वय ओकानेलकी हार हुई थी और वह दूसरी ओरसे चुना गया था, तथापि इन बातोंसे वह निराश नहीं हुआ। इस प्रकार उसने जो दृढ निश्चय दिखलाया था उसका फल उसे शीघ्र ही मिला। 'तरुण आयर्लेण्ड' नामक सस्थाके डेविस, डिलन, डफी आदि, कुछ प्रोटेस्टेण्ट नेता, स्मिथ ओब्रायन सरीखे प्रभावशाली लोग तथा बहुतसे उत्साही युवक वकील और बैरिस्टर आदि इस वृद्ध राजनीतिज्ञको मिल गये। सन् १८४३ में इस आन्दोलनके सबधमे सारे आयर्लेण्डमे सभायें होने लगीं और स्वयसवकोंके द्वारा इस अन्दोलनके लिए प्रति सप्ताह प्राय तीन सौ पाउण्ड चन्दा जमा होने लगा। उस वर्षके फरवरी मासमें डब्लिनकी म्युनिसिपैलिटीकी सभामें ओकानेलने यह प्रश्न वादविवादके लिए उपस्थित किया। उसपर वादविवाद हुआ और अन्तमें यह निश्चय हुआ कि आयर्लेण्डके लिए स्वतन्त्र पार्लमेण्ट चाहिए। आयरिश राष्ट्रकी राजधानीमें स्थानिक

स्वराज्यकी सस्थाके इस प्रकारका निश्चय करनेके कारण आयरिश लोकमतकी ध्वजा नियमानुकूल रीतिसे और स्पष्ट रूपसे फहराने लगी। इस सबधमे अभी तक जिन लोगोंका मत पूर्ण और दृढ नहीं हुआ था अब वे भी इस झण्डेके नीचे आकर खडे हो गये। सार्वजनिक सभाओंमें हजारों और कभी कभी लाखों आदमी एकत्र होते थे। सभामें आनेवाले लोग तथा स्वयसेवक सदा एक प्रकारके सैनिक ठाठ और ढगसे ही रहते थे। ऐसी सभाओंमे तरुण वक्ता प्राय इसी विषयका वक्तत्वपूर्ण विवेचन किया करते थे कि आयर्लैण्डके लिए स्वतत्र पार्लमेण्ट चाहिए। ऐसे अवसरों पर आयर्लैण्डके प्राचीन वैभव और वर्त्तमान दुःसका उल्लेख होता था, जिससे लोगोंकी राष्ट्रीयताकी कल्पना बहुत ही दृढ और उन्नत होती थी और लोग स्वदेश-भक्तिमे तल्लीन हो जाते थे। उस समय भी ओकानेलका वक्तृत्व पहलेके ही समान था। वृद्धावस्थासे उसकी ओजस्विता, आवेश तथा तेजीमें और सहायता ही मिलती थी, जब वह बोलनेके लिए खडा होता था तब उसका भाषण सुनकर लोग यही समझते थे कि पहले कैथोलिक लोगोंको स्वतत्रता दिलाकर जिसने लोगोंसे 'उद्धारकर्त्ता' की पदवी प्राप्त की है, वह हम लोगोंको स्वतंत्र पार्लमेण्ट भी अवश्य ही दिला देगा। प्रस्तुत विषय पर भाषण करते हुए वह नियमानुमोदित पद्धति पर ही बार बार जोर देता था। वह प्राय अपने भाषणमें यही कहा करता था। कि "हमलोग कानून के मुताबिक काम करनेवाले है, हमारा आन्दोलन और प्रार्थना दोनों ही न्यायानुमोदित है, हमारी सभाओंमे चाहे लाखों आदमी आवे, पर तो भी वे सब कानूनके मुताबिक काम करनेका इरादा रखते हैं। जो लोग कायदेसे आन्दोलन करते हों उनके लिए अधिकारियोंसे डरनेका कोई कारण नहीं है, लेकिन इतना होने पर भी यदि अधिकारी लोग

अविचारपूर्वक आन्दोलनमें बाधा डालेंगे और स्वय नियमविरुद्ध व्यवहार करके लोगोंको आत्मरक्षाके लिए नियमविरूद्ध व्यवहार करनेको विवश करेंगे तो फिर लोगोंके उन व्यवहारोंका उत्तरदायित्व लोगों पर न रह जायगा।"

इस आन्दोलनको इस प्रकार बढते हुए देखकर अधिकारियोंको भय होने लगा। पार्लमेण्टमे प्रश्नोत्तर आरभ हुए। मन्त्रियोंसे प्रश्न होने लगे कि इस घातक आन्दोलनको आप लोग कब तक चलने देगे? मन्त्रि-मडल उन्हें इसी प्रकारके उत्तर देने लगा कि "ओकानेल और उसके अनुयायियोंकी मॉग पुराने कानूनके विरुद्ध होनेके कारण कभी मान्य नहीं हो सकती, और यदि ये मनचले लोग मर्यादाका उल्लंघन करेंगे तो अपने हाथके समस्त अधिकारोंका उपयोग करके और यदि आवश्यकता हुई तो नये अधिकार भी प्राप्त करके उनके साथ पूरा पूरा कानूनी वरताव किया जायगा।" और तीसरे लोग यह देखनेके लिए उत्सुक हुए कि हाथावॉही पहले किस ओरसे होती है। पार्लमेण्टमें वादविवाद आरभ होनेके समयसे आन्दोलनमें एक प्रकारका नया तेज आ गया और देशके प्रत्येक बडे नगर और इतिहासप्रसिद्ध स्थानमें लाखों आदमियोंकी सार्वजनिक सभायें होने लगीं। इस प्रकारकी सभा मानों एक धार्मिक मेला ही होती थी। सभाके दिन चारो ओरसे दिन भर झुडके झुड लोग आते थे। सभास्थलके आसपास इतनी दूकानें आकर लग जाती थीं, जितनी किसी बडे शहरके लिए काफी हो सकतीं थीं, और इतने बैण्डबाजे आदि आ पहुँचते थे जितने एक पूरी सेनाके लिए यथेष्ट हो सकते थे। श्रोताओंकी सख्या बहुत अधिक होनेके कारण एक ही भाषण ऐसा नहीं हो सकता था जिसे सब लोग सुन सकें, इस लिए एक हीं सभामें दस पॉच सभाये होती थीं और निश्चित प्रस्ताव स्वीकृत होते थे। लाखों आदमियोंकी तालियोंकी

गडगडाहट और बाजोंकी ध्वनिके योगसे इस प्रचड सभाकी सम्मति जगद्विख्यात होती थी। कभी कभी सभाके कामों पर अपनी प्रसन्नता दिखलानेके लिए मीलों तकके गाँवोंके लोग टेकरियों पर आग सुलगाते थे!

इधर अधिकारियोंने भी अपना प्रबंध आरभ कर दिया था। टारा और मैलो आदि स्थानोंमें ऐसी सभाओंके हो चुकनेके उपरान्त ओकानेलने यह विज्ञप्ति की कि क्लानटार्फमें इसी प्रकारकी सभा रविवार तारीख ५ अक्टूबर सन् १८४३ को होगी। आजतक अधिकारियोंने जो तटस्थता स्वीकृत की थी उसे उन्होंने छोड़ दिया और खुले आम ऐसी सभाओंके रोकनेकी नीतिका अवलंबन करना निश्चय करके क्लानटार्फकी सभा रोकनेकी सूचना ठीक समय पर अर्थात शनिवारकी सन्ध्या को दी। शुक्रवारकी सन्ध्याको ही एक समाचारपत्रने यह प्रकाशित कर दिया कि कल सभाको रोकनेकी नोटिस दी जायगी, इस लिए चोवीस घंटेतक बराबर सब लोग उसी सार्वजनिक सभाकी चर्चा करते रहे और यही देखने लगे कि नोटिस पाकर ओकानेल क्या करता है। यद्यपि ओकानेलके व्याख्यानोंमें आत्मसरक्षण और नियमानुमोदन आदि शब्द खूब भरे रहते थे तथापि लोग यह नहीं समझ सकते थे, कि मौका आने पर वह लाखों आदमियोंकी मदद रहते हुए विना दोहाथ लडे पीछे हट जायगा। ठीक समय पर यह सूचना निकालकर अधिकारियोंने लोकपक्षको अपना बल और तेज दिखलानेका स्पष्ट प्रयत्न किया था, इस लिए ओकानेलके बहुतसे अनुयायियोंने यह सम्मति दी कि इसका जवाब देना बहुत जरूरी है और यदि ऐसे समय पर पीछे हटा जायगा तो राष्ट्रकी बहुत हँसी होगी। लेकिन ओकानेलने कहा कि इस सूचनाको मानकर यदि हम लोग सभा बद रक्खेंगे तो अधिकारियोंके नियमोल्लंघन और लोगोंके नियमपालनका अंतर समस्त संसार देख लेगा और देशके बाहर भी

लोकमतके अनुकूल आन्दोलन होगा। इस आशयका एक विज्ञापन छपवाकर रातोंरात क्लानटार्फके आसपास दस बीस मीलतक जगह जगह लगवा दिया गया कि कलकी सभा बन्द कर दी गई है, लोग एकत्र न हों और लौट जायँ। दूसरे दिन इन विज्ञापनोंको देखकर हजारों आदमी घबरा गये। अनेक लोग जहाँके तहाँ धकसे रह गये। बहुतसे लोग अधिक निश्चयसे सभास्थलतक गये लेकिन जब उन्होंने देखा कि सभाके सचालक्ही वहाँ नहीं है तब वे निराश होकर लौट आये। इस अवसर पर ओकानेल लाखों आदमियोंकी नजरोंसे जो एकदम गिरा और उसकी जो लोकप्रियता कम हुई, वह सब कुछ करने पर भी फिर कभी पूर्व-स्थिति पर नहीं आई।

ओकानेलने सभा बन्द कर दी थी और सरकारी सूचनाका पालन किया था, अधिकारियोंका इस बातसे सतोष होना चाहिए था, पर वह बात नहीं हुई। उन्होंने इस सभाको बद करनेके लिए बहुत बडी फौजी तैयारी की थी। सभास्थलके आसपास पलटनें खडी की गई थीं और पास ही एक ऐसी अच्छी जगह तोपों और गोलेबारूदका भी इन्तजाम था जहाँसे अच्छी तरह उनका उपयोग हो सकता था। यदि ओकानेलने स्वय ही वह सभा न बद कर दी होती तो सभास्थलमें रक्तपात हुए बिना न रहता। ओकानेल चाहे जिस कारणसे पीछे हटा हो, अधिकारियोंने यही कहा कि "वह खाली बडबड करनेवाला है, इस सभाका उसने बिना कारण ही प्रपच रचा था। सभामें वह जो दृढता दिखलाता था उसका कोई अर्थ नहीं था। व्यर्थ लोगोंको धोखा देकर सरकारके साथ उसने जो उदण्डतापूर्ण व्यवहार किया है उसके लिए उसको और उसके साथियोंको न्यायालयमें घसीट कर जहाँ एक बार सजा दी गई तहाँ वह फिर कभी ऐसे फेरमें न पडेगा, और इस तरह उसे और दूसरोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो जायगी कि अधिकारियोंके विरुद्ध बडबड करना कितना निष्फल ओर घातक है।"

क्लानटार्फकी सभा बद होनेके दूसरे दिन ओकानेलने 'कॉर्न एक्स-चेंज' में अपनी साप्ताहिक सभा की। इस सभामें हजारो आदमी आये थे। वहाँ उसने लोगोंको यह बतलाया कि मैंने सभा क्यों बद की। उसने कहा—" सरकारने जो सूचना दी थी वह बेकायदा थी, लेकिन वह सूचना देनेका विचार कायदेके मुताबिक था। वास्तवमें चाहे कानूनके विरूद्ध ही क्यों न हो लेकिन कानूनके नाम पर और कानूनी कार्रवाईका ढोंग रच कर नोटिस जारी करना दूसरी बात है, और पहलेसे नोटिस न देकर सभामें एकदमसे सिपाही भेज कर उसे भंग कर देना दूसरी बात है। यदि सरकारने यही बात की होती तो हेतु और वस्तुस्वरूप दोनोंके अनुसार उसका यह कृत्य बेकायदे होता, और तब आत्मसरक्षणके लिए कानूनको हाथमें लेकर अपनी शक्तिका उपयोग करना लोगोंके लिए ठीक होता।" लेकिन उसकी इन बातोंसे लोगोंका विशेष समाधान नहीं हुआ। उधर मुकदमा चलानेकी बडी भारी तैयारी हुई और १४ अक्टबरको ओकानेल, उसका लडका जॉन, उसके तीनों मदद-गार, 'फ्री मेन' का सपादक जॉन ग्रे, नेशनका सम्पादक गेवन डफी, दोनों कैथोलिक धर्मोपदेशक टिरेल और टिअरने आदि लोग पकडे गये और जमानत पर छूटे। १५ जनवरी सन् १८४४ को मुकदमा शुरू हुआ। ज्यूरियोंके चुनावमें अधिकारियोंने कपटसे बहुत कुछ चालें चलकर और गडबड मचाकर ऐसा प्रयत्न किया कि जिसमें केवल प्रोटेस्टेण्ट ज्यूरी ही चुने जायँ, और इस प्रयत्नमें उन्हें सफलता भी हुई। सभी अभियुक्तों पर यह अभियोग था कि उन्होंने सरकारको डरानेके उद्देश्यसे सभा करनेकी सलाह की थी, और साथ ही इसी तरहके और भी दसबीस अभियोग लगाये गये थे। उनका उद्देश्य केवल यही था कि किसी न किसी अभियोगमें उन्हें दण्ड मिले। ओकानेलने न्यायालयमें अपना निर्दोष होना आप ही प्रमाणित किया था। लेकिन

गलौजकी झडी लगा दी। इधर ' सम्मत सयोग ' आन्दोलनके नेताओं और ओकानेलमें मेल होनेकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती थी, क्योंकि ओकानेल पर उनका विश्वास नही होता था। ग्मार्मन क्राफर्ड आदि कहने लगे कि वह अपना ध्येय स्पष्ट नहीं वतलाता, सिर्फ गडबड करता है, इस लिए उसे सम्मत-सयोग पक्षमें बिना लिये ही आन्दोलन किया जाय तो अच्छा है। लोगोंके सामने क्रॉफर्ड अपने ढग पर राष्ट्रीयताकी कल्पना उपस्थित करता था, और उसे नित्य नये अनुयायी मिलने लग गये थे। उस समय वह इसी विचारसे ओकानेलसे दूर रहना चाहता था कि यदि मै ओकानेलको अपनी सभामें मिला लूँगा तो मुझे और जो अनुयायी मिलनेवाले होंगे वे न मिलेगे। क्रॉफर्डकी यह प्रवृत्ति देखकर ओकानेल सिर्फ उसी पर नहीं बल्कि ' सम्मत-सयोग ' के ध्येय पर भी बहुत आक्षेप करने लगा, जिससे दोनोंमें मेल होनेकी आशा नहीं रह गई। ओकानेलके पीछे हटनेके कारण ' रिपील ' की कल्पना तो कम नहीं हुई, पर उसका आन्दोलन घट गया। ओकानेलसे यद्यपि लोग बहुत ही अप्रसन्न थे तथापि उसके चले जाने पर उसके स्थानकी पूर्तिकरनेवाला और कोई आदमी नहीं था; और इसी लिए सब लोग केवल एक ही विषय ' रिपील ' की चर्चा अवश्य करते थे, पर राष्ट्रकी कृतिमात्रमें स्पष्ट रूपसे शिथिलता दिखाई पडने लग गई थी।

उसी समयके लगभग राष्ट्र पर और भी कई सकट आये। राजकीय पक्षके नेताओंकी तरह अन्य व्यक्तियोंमें भी व्यक्तिगत फूट हो गई थी। ओकानेलका लडका जॉन अपने पिताके साथ रहकर राजकीय आन्दोलनमें उसे सहायता दिया करता था। लेकिन वह स्वय मदबुद्धि था और नये पक्षके लोगोंके साथ ईर्ष्या रखता था। वह डफी डेविस तथ अन्य युवकोंकी प्रत्यक्ष वा परोक्षरूपसे निन्दा करने लगा। वे लोग धर्मान्ध

है, वे ओकानेलकी जगह छीन कर उसे पदच्युत करनेकी चिन्तामें हैं; वे आयर्लैण्डमें फ्रासके अनियंत्रित तत्त्वोंका प्रसार करना चाहते हैं; आदि आदि एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों वृथा अभियोग उन लोगों पर लगाये जाने लगे। ओकानेलके अनुयायियोंमें ऐरे-गैरे लोगोंकी सुगीरकी भरती ही अधिक थी। अडबड बातें कहकर अपनी बुद्धिके अनुसार ओकानेलके मतका प्रसार करना ही उन लोगोंका काम था। लेकिन स्वयं उन लोगोंमें यह समझनेकी योग्यता नहीं थी कि ओकानेलकी कौनसी बात ग्राह्य और कौनसी अग्राह्य है, उसकी असली और सच्ची बातें कौनसी हैं और दुराग्रह तथा विकारवशताके कारण मनमें आनेवाली तरंगें कौनसी हैं। और न उनमें इतनी शक्ति ही थी कि उन बातोंके कहनेके साथ साथ वादविवाद करके किसीको दोनोंका भेद समझा सकें। वे खाली 'हाँजी' 'हाँजी' करना जानते थे। जो कुछ वह कहता था उसीको वे प्रमाण मानते थे, और जो उसके विरुद्ध चू भी करता था उसकी निन्दा करने लग जाते थे। ऐसे अनुयायियो पर जितना दबाव रखना चाहिए दुर्भाग्यवश ओकानेल उन पर उतना दबाव नहीं रख सका। उलटे पार्लमेंट तथा समाचारपत्रोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण प्रतिष्ठा पाये हुए बहुत से नीच लोगोंको भी उसने अपना आश्रय दिया था। इन लोगोंने तथा ऊपर कहे हुए अनुयायियोंने 'नेशन' आदि पत्रोंकी सम्पादकमण्डलीकी अच्छी तरह निन्दा आरम्भ की। राष्ट्रीय पक्षकी इस फूटका राष्ट्रीय कार्य पर बहुत बुरा परिणाम पड़ा।

प्रायः उसी समय यह भी अफवाह उड़ी कि प्रधान मंत्री पील आयरिश लोगोंको कुछ प्रसन्न करके उनकी प्रीति सम्पादित करना चाहते हैं। सच्चे प्रेमी मनुष्यके मनमें क्रोधके उपरांत अनुराग उत्पन्न होना स्वाभाविक है, और यदि पीलके मनमें यह बात आई हो कि आयरिश लोगोंकी पीठ पर कोड़े पर कोड़े पटनेके उपरांत अब उन्हें

जमींदारोंको लगान देकर अपने लड़के बच्चोंको भूखों मारनेकी अपेक्षा उन्हें लगान न देना ही निश्चय करें, और यदि आवश्यक्ता हो तो उस निश्चयको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिए अपने प्राण तक दे दें, क्यों कि इसीमें राष्ट्रका लाभ है।" उस पर मुकदमा चला और वह चौदह बरसके लिए कालेपानी भेज दिया गया। मिचेलको यह आशा थी कि जब मुझ पर मुकदमा चलेगा और मेरे जेल जानेकी बारी आवेगी तब लोग बलवा करेंगे, लेकिन उसकी यह आशा व्यर्थ हुई, लोग अपनी अपनी जगह चुपचाप दबके रहे। लोगोंने बहुत प्रतीक्षा की, लेकिन सुधार होनेका कोई चिह्न दिखाई न देता था। तब अतमें डिलन, डफी, ओब्रायन आदि ऐसे नेताओंने जिन्होंने इस सम्बन्धमें बहुत दिनों तक विचार किया था, अन्तमें विवश होकर विद्रोहका मार्ग स्वीकार किया। इस विद्रोहमें उनके सफल होनेकी कोई आशा नहीं थी, लेकिन केवल इसी विचारसे वे लोग विवश होकर विद्रोहमें प्रवृत्त हुए थे कि आज तक जितना आन्दोलन हुआ है उसे अततक पहुँचानेका और कोई मार्ग नहीं है और यदि इस समय हम लोग विद्रोहमें सम्मिलित न होंगे तो आज तकका हम लोगोंका बकना-झकना व्यर्थ हो जायगा। तदनुसार उन्होंने छोटे मोटे विद्रोह भी किये, पर सब लोग पकड़े गये और उन्हें काले पानीका दण्ड हुआ। सन् १८४८,१८५८ और १८६७ ये तीनों साल विद्रोहके थे और इस बीचका समय आयर्लैण्डके लिए बहुत ही बुरा बीता। अकाल, काश्तकारों और जमींदारोंकी मारपीट, विद्रोह और पार्लमेण्टके स्वार्थी सभासदोंके फेरमें 'राष्ट्र' तो किसीको दिखाई ही न देता था। अँगरेज अधिकारियोंका काम खाली कानूनकी पाबन्दी करना ही रह गया था। इस बीस वर्षोंकी अवधिमें सन् १८६७ में विद्रोह तो मानो अपनी चरम सीमातक पहुँच गया।

पर यह बात भी देखने लायक है कि इतिहासमें भिन्न भिन्न बातोंका जोट किस तरह बेठता है। १८६७ के उपरात तीन वर्षतक आयर्लैण्टमें

किसी प्रकारका आन्दोलन नहीं हुआ। लेकिन सन् १८७० में एक दम-से आयर्लेण्डमें कुछ नई ही बातें आरंभ हुईं। इस वर्षके मई महीनेमें डब्लिनके एक प्रतिष्ठित भोजनगृहमें आयरिश नेताओंकी एक सभा हुई। इस सभामें सब प्रकारके और विशेषत. कसर्वेटिव मतके लोग आये थे। ग्लैडस्टन साहबने अभी हालमें ही प्रोटेस्टेण्ट धर्ममंडल तोड़ा था, इस लिए कसर्वेटिव और प्रोटेस्टेण्ट लोग ब्रिटिश पार्लमेण्टसे नाराज हो गये थे। आयरिश लोगोंके सुख-दु ख-सबधी कायदे-कानून बनानेके सब सूत्र अँगरेजोंके हाथमें चले गये और अब वे लोग जो नाच नचाते वही आयरिश लोगोंको नाचना पड़ता। यह बात कसर्वेटिव लोगोंको भी बुरी जान पड़ने लगी। यद्यपि केथोलिक लोगोंको ग्लैडस्टन साहबका यह धर्ममण्डल तोड़नेका कार्य्य अवश्य अच्छा लगा, परन्तु स्वतत्र पार्लमेण्ट प्राप्त करनेके लिए ओकानेल और उसके अनुयायियोंके बहुत दिनों तक आन्दोलन करनेके कारण आयर्लेण्डके स्वराज्यके सबन्धमें कैथोलिक लोगोंमें एक मत था, और चाहे इस प्रकार-के भिन्न भिन्न कारणोंसे ही क्यों न हो परतु स्वतत्र पार्लमेण्टके सबध-में कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका मत इस समय एक हो गया था। उक्त सभामें कसर्वेटिव मतके लोग ही अधिक आये थे। ओकानेलका प्रतिपक्षी आइजिक बट भी इस सभामें उपस्थित था। लेकिन समयका गुण भी बड़ा चमत्कारिक होता है। इस अवसर पर बटके मनमें भी स्वतत्र पार्लमेण्टके लिए स्फूर्ति उत्पन्न हुई और उसने सभाका नेतृत्व ग्रहण किया। उसकी सूचना पर इस सभाने 'होमरूल' माँग-नेके सबधमें एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। इस निश्चयमें यह कहा गया था कि—"सारे आयर्लण्ड राष्ट्रके लिए जिन कानूनोंकी आवश्यकता हो उनके बनानेका अधिकार रखनेका अधिकार रखनेवाली एक स्वतत्र पार्लमेण्ट अर्थात् हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स

डेविट, शॉ आदि लोगोंकी सहायता मिली। सन् १८८० में पार्लमेण्ट-का नया चुनाव हुआ, उसमें आयर्लैण्डके सब पक्षोंने मिलकर लिबरल पक्षकी सहायता की, जिससे उस पक्षके नेता ग्लेडस्टन साहबके मनमें पार्नेलके सबधमें आदर उत्पन्न हुआ और उन्हें विश्वास हो गया कि वह काम करनेवाला और प्रभावशाली आदमी है। नई पार्लमेण्टमे लिबरल पक्ष चार ही वर्षतक अधिकारारूढ रहा। इस बीचमें जमीनके सम्बन्धमे आयरिश काश्तकारोकी क्षतिपूर्तिके सम्बन्धमें प्रश्न उठे, और आयरिश लोगोंके अनुकूल कुछ कानून भी बने, लेकिन होमरूलका बिल उपस्थित करनेमें और भी दो बरस लग गये।

सन् १८८५ ई० में लार्ड करनारवन आयर्लैण्डका वाइसराय था। उस समय उसने आयरिश लोगोंसे मिलकर होमरूलके सम्बन्धमे उन्हें आधे तीहे वचन भी दिये थे। लेकिन जब तक ग्लैडस्टन साहब सरीखे नेताने होमरूलके काममें हाथ नहीं लगाया तब तक होमरूलके आन्दो-लनने विशेष स्वरूप धारण नहीं किया। अतको १८ अप्रैल सन् १८८६ के दिन आयर्लैण्डको स्वतन्त्र पार्लमेण्ट देनेके सबधमें एक बिल पार्लमेण्टमें उपस्थित हुआ। इस बिलका नाम होमरूल बिल नहीं था, बल्कि 'आयरिश राजकार्य्यका बिल' था, तोभी इस बिलके सम्बन्धमें इग्लैण्डमें बहुत हो-हल्ला हुआ। कन्सर्वेटिव पक्षने विकारवश इग्लैण्डके लोगोंको उत्तेजित करके ग्लैडस्टन साहबके विरुद्ध बहुत रौला मचाया, जैसा पुराने जमानेमें चार्ल्स राजाके राजत्वकालमें 'कैवेलियर' और 'राउण्ड हेड' नामके दो पक्षोंमें झगडा हुआ था, ठीक वैसा ही झगडा इस समय आयरिश होमरूलके अनुकूल और प्रतिकूल लोगोमें खडा हो गया। इतना ही हुआ कि प्रत्यक्ष लडाई नहीं हो गई। कोई किसीका मुँह नहीं देखता था, एकके क्लबमें दूसरा घुसने नहीं पाता था, घरोंमें प्रतिपक्षियोंके जो चित्र टँगे हुए थे, वे भी उतारकर फेंक दिये गये थे।

यहाँ तक नौवत पहुँच गई। ग्लेडस्टनके पक्षमें रह कर सदा उसकी सहायता करनेवाले ब्राइट, लार्ड हारटिंगटन, चेम्बरलेन आदि राजनीतिज्ञ लोग मत्रीके पदसे इस्तीफा देकर घर बैठे। लेकिन प्रधान मत्री ग्लेटस्टन और आयलैंण्डके स्टेट सेक्रेटरी जान मार्लेने अपना निश्चय नहीं छोडा। इस बिलमें कहा गया था कि आयलेण्डको अलग पार्लमेण्ट मिले। उसमें ऐसी योजना की गई थी कि हाउस आफ लार्डसमें २८ सभासद तो ऐसे हों जो आजन्म सभासद रहें और ७५ ऐसे हों जो उस वर्षके लिए चुने जायें और इनका चुनाव कुछ निश्चय आयवाले मत-दाता किया करें और हाउस आफ कामन्समें पाँच वर्षके लिए चुने हुए २०४ सभासद रहें। यह बिल आयरिश होमरूल पक्षको मान्य था। लेकिन ७ जूनके दिन होमरूल बिलके विरुद्ध ३० मत अधिक आये, जिससे ग्लेटस्टन साहबकी हार हुई और उन्होंने प्रधान मत्रीके पदसे इस्तीफा दे दिया। दूसरे महीने जब नया चुनाव हुआ तब उसमें अधिकांश ऐसे ही लोग चुने गये, जो होमरूलके विरुद्ध थे। लेकिन आगे चलकर सात वरसमें धीरे धीरे होमरूलके अनुकूल मत बढने लगा। उस समय बालफोर स्टेट सेक्रेटरी थे, उन्होंने दमनकारक नियमोंका पालन बडी कडाईसे किया। उनकी इस कार्रवाईसे आयरिश लोग तो चुप नहीं हुए, उलटे उनके नेता पार्नेलने उन लिबरल लोगोंको भी होमरूलके अनुकूल कर लिया जो पहले उसके प्रतिकूल थे। सन् १८८८ में पार्नेल पर यह अभियोग लगाया गया कि—" वह खून-खराबी करनेके लिए उत्तेजन देनेवाले लोगोंमेंसे है, और सन् १८८२ ई० में फिनिक्सपार्कमें वर्क और कैवेंडिस नामक अधिकारियोंकी जो हत्या हुई थी वह उसीकी सम्मतिसे हुई थी। " कमीशनके द्वारा इस अभियोगकी जाँच हुई। जिन पत्रोंके आधार पर अभियोग लगाया था वे पत्र बनावटी सिद्ध हुए और उनके लिखनेवालेने आत्महत्या कर डाली। कमीशनके

खडा किया जाता था। लेकिन जिस तरह मछलीका निगला हुआ मानिक लौटना कठिन होता है उसी तरह हाथसे गई हुई राजकीय स्वतंत्रताका वापस होना भी कठिन है। स्वतत्रता देने और लेनेवाले दोनोंके लिए ही यह काम बहुत कठिन होता है। माँगनेवालोंकी तो खैर कोई बात ही नहीं है, परन्तु जिन्हें देना पड़ता है उन्हें न देनेके बहुतसे कारण या बहाने सूझने लगते हैं। साधारण लोग कहने लगते है कि जो होना था वह तो हो गया, अब आगे बतलाओ क्या कहते हो। लेकिन ग्लैडस्टन साहब सामान्य कोटिके मनुष्य नहीं थे, उन्हें यह भोले भावका युक्तिवाद पसद नहीं था। अपनी युवावस्थासे ही आयर्लण्डका हाथ पकडकर उस निराश्रित राष्ट्रके लिए उन्होंने जो लडना आरम किया था वह उन्होंने अपने जीवनके अत तक जारी रक्खा। लेकिन केवल कालकी गतिसे ही होमरूलके प्रतिपक्षियोंमें इतना बल आ गया था, जिसका प्रतिकार ग्लैडस्टन साहब सरीखे नेता भी न कर सके थे। कालकी इसी गतिके कारण लोग कहने लगे थे कि " इस समय जो अवस्था है वही अच्छी है, उसे बनाये रखकर आयर्लण्डके साथ जो कुछ न्याय करना हो वह किया जाय। " उस समय होमरूलका प्रश्न वादग्रस्त था। यद्यपि उस समय कन्सर्वेटिव पक्षका जोर कम नहीं हुआ था तथापि 'रेडिकल' और 'सोशियालिस्ट' पक्ष जो आगे चलकर जोर पकड़नेवाले थे, आयर्लण्डको होमरूल देनेके पूर्ण अनुकूल थे। इससे कुछ ही दिन पहले अधिकारविभागके रूपमें एक बिल बिरेल साहबने पार्लमेण्टमें उपस्थित किया था। लेकिन आयरिश राष्ट्रीय पक्षको यह आशा हो गई थी कि जल्दी ही हमें प्रत्यक्ष होमरूल मिल जायगा, इस लिए होमरूलकी पूरी रोटीकी आशा पर उन्होंने अधिकारविभागकी आधी रोटी छोड दी। होमरूलकी यह सारी रोटी उन्हें कैसे और कहाँ तक मिली, यह बतलानेसे पहले हम संक्षेपमें यह बतला देना चाहते है कि

होमरूलके पक्षपातियोंका कथन क्या था और उसके विरोधी क्या कहते थे।

निष्पक्ष लोग होमरूलके अनुकूल ये युक्तियाँ उपस्थित करते थे— "सन् १८०० में आयरिश पार्लमेण्ट तोडकर ब्रिटिश पार्लमेण्टमें मिलाना मानों एक राष्ट्रका पैर दूसरे राष्ट्रके पैरमें बाँधना था। यदि यह पैर खोलकर आयर्लेण्डको पहलेकी तरह स्वतंत्र पार्लमेण्ट न देना हो तो भी कोई ऐसा मार्ग निकालना चाहिए जिससे दोनोंको सुख हो। स्थानिक पार्लमेण्ट न होनेके कारण आयरिश लोगोंके केवल स्थानिक महत्त्वके प्रश्न भी ब्रिटिश पार्लमेण्टमें उपस्थित करके ब्रिटिश सभासदोंका समय व्यर्थ नष्ट करना पडता है। आयरिश और ब्रिटिश दोनों राष्ट्रोंकी रीति-नीति, रुचि, पसन्द, सिद्धान्त और नियम आदि एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न है। इस लिए स्थानिक कार्य्योंमें ब्रिटिश सभासदोंसे क्यों हस्तक्षेप कराया जाय? और ऐसे पाँच सौ पराये सभासदोंके भ्रम या दुराग्रहके कारण फुटकर बातोंमें आयर्लण्टकी हानि क्यों हो? स्थानिक अधिकारकी भी यदि अँगरेज ही देखभाल करेंगे तो फिर आयरिश लोग अपना काम आप करना और सँभालना कब और कैसे सीखेंगे? और बहुत दिनों तक इन कामोंके दूसरेके हाथोंमें रहनेसे आयरिश लोगोंकी काम करनेकी शक्ति क्यों न नष्ट हो जायगी और वे निर्बल क्यों न हो जायँगे? फुटकर और स्थानिक महत्त्वके काम आप ही करने चाहिए, उस दशामें वे चाहे जैसे हों, अच्छे ही होते हैं। इग्लेण्डको उससे कुछ लाभ भी नहीं है। पार्लमेण्टमें आयरिश हिताहितका बिल उपस्थित होते ही व्यर्थका वितण्डावाद बढ जाता है, बहुतसा समय नष्ट होता है और अँगरेजोंके हिताहितके बिल पडे रह जाते हैं। ब्रिटिश राज्यके रक्षण, सेना, उसके व्यय आदिकी बातें दोनोंके हितकी है, इसलिए उन बातोंका विचार दोनों मिलकर करें। लेकिन यदि अपनी म्युनि-

भिन्न दो राष्ट्रोंको यदि अलग अलग स्वतंत्र पार्लमेण्ट दे दी जायगी तो फिर उनमें स्नेह-भाव रहनेका कौनसा कारण रह जायगा ? उपनिवेश-वालोंको आयरिश लोगोंकी अपेक्षा स्वराज्यके जो अधिक अधिकार हैं उसका कारण यह है कि उनकी ओरसे ब्रिटिश पार्लमेण्टमें कोई सभासद नहीं रहता, पर आयर्लैण्डके तो सौसे अधिक प्रतिनिधि पार्लमेण्टमें रहते हैं, तब फिर वे शिकायत क्यों करें ? सौ आदमियोंको पार्लमेण्टके सामने अपनी शिकायतें पेश करनेमें कभी कठिनता नहीं होनी चाहिए । यदि यह भी मान लिया जाय कि उपनिवेशवाले स्वराज्यका दुरुपयोग करके स्वतंत्र हो गये तो भी—उसमें इंग्लैण्डकी कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं है । अठारहवीं शताब्दीमें अमेरिका स्वतंत्र हुआ तथापि उससे इंग्लैण्डमें कोई कमी नहीं आई, परन्तु होमरूलका दुरुपयोग करके यदि आयर्लैण्ड स्वतंत्र हो गया तो इंग्लैण्डको वैसा ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा जैसा किसीको अपने दरवाजे पर ही अपने परम शत्रुका मकान बनवा देनेसे होता है । 'चैनेल आयर्लैण्ड' और 'आइल आफ मैन' के छोटे टापुओंमें भी स्वतंत्र पार्लमेण्ट है । पर वे बेचारे जरासे टापू अपनी शक्तिका दुरुपयोग करके इंग्लैण्डकी क्या हानि करेंगे ? लेकिन आयर्लैण्ड इतना बड़ा है कि वह त्रासदायक हो सकता है । यह कहना बहुत ही सहज है कि होमरूल देनेके समय आयर्लैंडके अधिकार निश्चित कर दिये जायँ, लेकिन इस कामको प्रत्यक्ष करनेमें बहुतसी अड़चनें हैं । स्थानिक कार्य्य कौनसा है और साम्राज्य संबंधी कौनसा है, इसकी सीमा स्वयं ग्लैडस्टन साहबसे भी अच्छी तरहसे निश्चित न हो सकी थी और उसके संबंधमें आयरिश लोगोंमें भी मतैक्य नहीं होता । इसके सिवा स्थानिक विषयोंमें भी तत्त्वके प्रश्नोंका निश्चित करना ब्रिटिश पार्लमेंटके लिए ही आवश्यक है । कहनेमें तो यह बात बहुत ही ठीक जान पड़ती है कि आयरिश पार्लमेंट

अपने कर आप ही लगाने और खिराजकी रकम इंग्लैंडको दे दिया करे। पर यदि कर वसूल करके आयरिश पार्लमेंट खिराज न दे तो फिर लडाईकी ही नौबत आवेगी। वर्तमान स्थितिमें इंग्लैंडको आयर्लैंडमें खिराज वसूल करनेमें कोई कठिनता नहीं होती। होमरूल पाकर आयरिश पार्लमेंट पहले पहल कदाचित् नम्रताका व्यवहार करे, परन्तु जब उसके पुरानी स्वतन्त्रताके विचार उठेंगे तब क्या सन् १७८२ और १८०० की पुनरावृत्ति न होगी? एक पार्लमेंटमें दो राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंका लडना और बात है और दो पार्लमेंटोंका परस्पर लडना और बात है। पहली तरहके झगडेका फैसला बहुमतसे हो सकता है, पर जब दो पार्लमेंटें लडने लगेंगी तब उनका झगडा निपटानेके लिए तीसरा कौन आवेगा? और फिर अपने हाथका अधिकार छोडकर इंग्लैंड अपनी चोटी दूसरेके हाथमें क्यों दे? सन् १८०० से अर्थात् जबसे दोनों पार्लमेंटें एक हुई है, आयर्लैंडमें जो विद्रोह हुए उनके दमनमें अधिक कठिनता नहीं हुई। परन्तु उससे पहले विद्रोहियोंको पार्लमेंटके सभासदोंका भरोसा और सहारा था जिससे वे विद्रोह बहुत ही कष्टदायक हुए और उनका दमन करना कठिन हुआ। यदि आज होमरूल दे दिया जाय तो इसका जिम्मेदार कौन है कि आयरिश लोग उसके बाद और कुछ भी न माँगेंगे। एक चीज देकर दूसरीकी माँग अपने पीछे लगा लेनेसे कभी न कभी आयरिश लोगोंकी माँगका प्रतिरोध ही करना पडेगा, इससे पहले ही वह प्रतिरोध करना अच्छा है। आज आयरिश लोग अँगरेजोंसे लडते हैं, तो कल हाथमें सत्ता आनेपर आपसमें लडने लगेंगे और थोडेसे प्रोटेस्टेंटों पर बहुतसे कैथोलिक अत्याचार करने लगेंगे और देशमें भारी विग्रह खडा होगा। आयरिश लोगोंकी यदि स्वतन्त्र पार्लमेंट भी हो तो उससे क्या होगा? जैसा कि सन् १८९३ में ग्लैडस्टन साहबने सोचा था, यदि आयर्लैंडको

रामराम करके १२ अप्रेल सन् १९१२ को मि० एस्क्विथने हाउस आफ कामन्समें 'आयर्लैण्डके शासनमें सुधारके लिए' बिल उपस्थित किया। उस दिन पार्लमेण्टमें इतनी भीड थी, जितनी पहले कई वर्षोंसे नहीं हुई थी। बिलका आशय था "आयर्लैण्डमें एक आयरिश पार्लमेण्ट हो, जिसमें सम्राट् तथा दो हाउस हों। पहला हाउस सिनेट चालीस सभासदोंका हो और दूसरा हाउस आफ कामन्स एकसो चौसठ सभासदोंका। पार्लमेण्टका अधिवेशन सालमें कमसे कम एक वार हुआ करे और सम्राट्की आज्ञा तथा अनुमतिसे लार्ड लेफ्टिनेण्ट उसके पास किये हुए बिलोंको स्वीकृत किया करें। आयरिश पार्लमेण्ट देशकी शाति तथा सुशासनके लिए कानून बनावे, पर राजसिहासन या उसके उत्तराधिकार, युद्ध, जल तथा स्थल सेना, सन्धि, परराष्ट्रोंसे सम्बन्ध, सिक्के, नाप तौल, ट्रेडमार्क, कापीराइट, पेटेण्ट, सेविंग्स बैंक तथा कुछ विशिष्ट कानूनो आदिके सबधमें कोई कानून बनानेका उसे अधिकार न हो, और न धर्मसम्बन्धी किसी प्रकारका कानून बनानेका उसे अधिकार हो। शासनाधिकार पूर्ण रूपसे सम्राट्के ही हाथमें हो और उसकी ओरसे लार्ड लेफ्टिनेण्ट शासन करें।" कुछ विशिष्ट कानूनोंमें कुछ निश्चित समयके उपरात आयरिश पार्लमेण्टको परिवर्तन आदि करनेका भी अधिकार दिया गया था। इसके अतिरिक्त अर्थ, शासन और न्याय आदि विभागोंमें भी आयरिश पार्लमेण्टको यथेष्ट अधिकार दिया गया था। इस आयरिश पार्लमेण्टका पहला अधिवेशन सन् १९१३ के सितबर महीनेके पहले मगलवारको होनेका था।

हाउस आफ कामन्समें इस बिल पर बराबर चार दिनतक वादविवाद होता रहा। विवादमें राष्ट्रीय दलकी ओरसे मि० रेडमण्डने इस बिलका स्वागत किया और इसे बहुत ही उपयुक्त तथा महत्त्वपूर्ण बतलाया। यूनियनिस्ट दल तथा अलस्टरवालोंकी ओरसे सरकार तथा मि० एस्-

क्विथ पर खूब बौछारें हुईं। बहुतसे दोष दिखलाये गये और बड़ी बड़ी धमकियाँ दी गईं। पर सरकारकी ओरसे कहा गया कि, इस बिलसे घबरानेकी कोई बात नहीं है, साम्राज्यके सभी भागोंके लोग चाहते हैं कि आयर्लैण्डको स्वराज्य दिया जाय। बहुत कुछ कहा-सुनीके उपरांत १६ अप्रेल सन् १९१२ को बहुतमतसे इसकी पहली आवृत्ति स्वीकृत हुई। उस दिन इसके पक्षमें ३६० तथा विपक्षमें २६६ सम्मतियाँ थीं। लिबरलोंमें एक मात्र सर कोरी ही ऐसे थे, जिन्होंने इस बिलका विरोध किया था।

३० अप्रैलको कामन्स सभामें मि० चर्चिलने उक्त बिलको दूसरी आवृत्तिके लिए उपस्थित करते हुए अलस्टरवालोंसे उसमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की और कहा कि उनका इससे अलग रहना बहुत ही बुरा होगा, इस अवसर पर उन्हें नावको किनारे लगानेमें यथासाध्य सहायता देनी चाहिए। पर यूनियनिस्ट दलकी ओरसे कहा गया कि हम लोग अपने अलस्टरवाले मित्रोंको कोई ऐसी सम्मति नहीं देना चाहते, जिससे उनकी हानि हो अथवा कोई भारी झगड़ा खड़ा हो। यह भी कहा गया कि इस बिलके पास होनेसे आयर्लैण्डमें सिविल युद्ध हो जायगा। २ मईको मि० बाल्फोरने भी इसका खूब विरोध किया और सर एडवर्ड ग्रेने अलस्टरवालोंको समझाने बुझानेका प्रयत्न किया। कई दिनतक वादविवाद होनेके उपरांत ९ मईको दूसरी आवृत्ति भी हो गई। उस दिन इसके पक्षमें ३७२ और विपक्षमें २७१ मत थे। उस दिन हाउस आफ कामन्सने लौटते समय मि० एसक्विथ और मि० रेडमण्डका लोगोंने बहुत आदरसत्कार किया था।

पहले अलस्टरवाले इस बिलको किसी तरह पास ही न होने देना चाहते थे, पर जब उन्होंने रंगढंगसे देखा कि अब इसके सबधमें लोक-

मत बढता जाता है तब उन्होंने एक परिवर्तन या सुधार उपस्थित किया। १ जनवरी सन् १९१३ को सर एडवर्ड कारसनने इस बिलमें यह सुधार कराना चाहा कि इसमेंसे अलस्टरको निकाल दिया जाय, क्योंकि इससे उस प्रान्तवालोंको कोई लाभ नहीं है। आपने यह भी कहा कि यदि अलस्टरवाले इस बिलको स्वीकार न करके लडगये तो उस समय सरकारकी क्या दशा होगी ? पर मि० एस्क्विथने कहा कि, अलस्टरको इससे अलग नहीं रक्खा जा सकता, अलस्टरवालोंको उचित है कि वे सुजनतापूर्वक इसमें योग दें। मि० रेडमण्डने कहा कि इस बिलके पास होनेसे कभी युद्धकी नौबत नहीं आवेगी और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको विश्वास होना चाहिए कि उनकी स्वतत्रता और अधिकारों पर आक्रमण नहीं होगा। पर मि० बोनरलाने कहा कि हमें विदेशियोंका शासन मंजूर है, पर राष्ट्रीय दलका शासन मजूर नहीं। अन्तमें बहुमतसे कारसनका सुधार अस्वीकृत हो गया।

१४ जनवरी सन् १९१३ को प्रकाशित हुआ कि आयरिश पार्लमेण्टके पहले अधिवेशनकी तिथि, होमरूल बिल पास हो जानेकी तिथिसे एक वर्षके अन्दर रक्खी जायगी, और दूसरे दिन १५ जनवरीको वह बिल तीसरी आवृत्तिके लिए कामन्स सभाके समक्ष उपस्थित हुआ। उस दिन बडी भीड थी। मि० बालफोरने प्रस्ताव किया कि यह बिल अस्वीकृत हो। उस दिन बीमार होनेके कारण सर कारसन नहीं आये थे। उस दिन भी खूब वादविवाद हुआ। मि० एस्क्विथने विरोधियोंको बहुत कुछ समझाया बुझाया और विरोध दूर करनेका प्रयत्न किया। बहुमतसे मि० बालफोरका अस्वीकृतसबधी प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ और ३६७ पक्षके तथा २५७ विपक्षके मतोंसे उसकी तीसरी आवृत्ति भी हो गई। उस दिन राष्ट्रीय दल तथा अलस्टरवालोंमें इतना वैमनस्य हो गया था कि पुलिसको

झगडा रोकनेके लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ा था। रातभर स्थान स्थान पर व्याख्यान होते रहे। यूनियनिस्ट लोग कहते थे कि जैसे होगा, वैसे इस बिलको पास होनेसे रोका जायगा और राष्ट्रीय दलके लोग उन्हें समझाने-बुझानेका प्रयत्न करते थे। मि० रेडमण्डने एक स्थान पर कहा था कि अलस्टरवालोंको हम अपना भाई समझते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे आकर हम लोगोंमें सम्मिलित हों। १६ जनवरीकी रातका लन्दनका दृश्य देखनेवालोंको कभी न भूलेगा।

पहले दौरेमें हाउस आफ कामन्समें आयरिश होमरूल बिल पास होते ही तुरत हाउस आफ लार्ड्समें भेज दिया गया और वहाँ उसकी पहली और २७ जनवरीको दूसरी आवृत्ति हुई। ड्यूक आफ डेवनशायरने उसकी अस्वीकृतिके लिए प्रस्ताव किया, पर अर्ल आफ टनरेवनने बिलके पक्षमें सम्मति दी। चार दिन तक वादविवादके उपरात ३१ जनवरीको ३२६ पक्षके तथा ६९ विपक्षके मतोंसे दूसरी आवृत्तिमें हाउस आफ लार्ड्सने आयरिश होमरूल बिल अस्वीकृत कर दिया। बिलके विरोधियोंमें लार्ड कर्जन और लार्ड लैंसडाउन भी थे। विवादके अंतमें लार्ड मार्लीने कहा था कि, सरकारको आशा है कि अलस्टरवालोंका झगडा शात हो जायगा और बिल मजेमें पास हो जायगा।

७ मई १९१३ को हाउस आफ कामन्समें दूसरे दौरेकी पहली आवृत्ति, २३ जूनको दूसरी आवृत्ति और ७ जुलाईको तीसरी आवृत्ति हुई और तीनो आवृत्तियोंमें पास होनेके उपरात नियमानुसार वह फिर हाउस आफ लार्ड्समें भेजा गया, जहाँ उसपर फिरसे विचार हुआ। बहुत कुछ वादविवाद और विरोधके उपरात १५ जुलाईको ३०२ पक्षके और ६४ विपक्षके मतोंसे वह फिर अस्वीकृत होगया। हाउस आफ कामन्समें आयरिश होमरूल बिल तीसरी बार ९ मार्च १९१४ को

उपस्थित हुआ । उस दिन बिलके पहली बार उपस्थित होनेके दिनसे भी अधिक भीड थी, क्योंकि उस दिन मि० एस्क्विथ अलस्टरके सबधमें कुछ विचार प्रकट करनेको थे । इसके संबधमें पहलेसे ही समाचारपत्रोंमें तरह तरहकी बातें निकल रही थीं । कामन्समें अपने अपने पक्षके नेताओंका सब लोगोंने खूब स्वागत किया था । उस दिन मि० एस्क्विथने कहा था कि यद्यपि अलस्टरमें उपद्रव होनेकी सम्भावना है, तथापि बिलका न पास होना भी उतना ही भयकर है । उपयोगिताके विचारसे ही दोनों पक्षोंमें मेल करानेका प्रयत्न किया गया था । न तो इस समय अलस्टर इसमें सम्मिलित हो सकता है और न सदाके लिए वह अलग रह सकता है । इसलिए उसे कुछ समयतक अलग रखना उचित जान पडता है । सरकार चाहती है कि अभी छ' वर्षतक अलस्टर प्रातको आयरिश पार्लमेण्टके अधिकारसे बाहर रक्खा जाय । इतने दिनोंमें आयरिश पार्लमेण्टके कारबार और रग ढंगका पूरा पता लग जायगा । इस बीचमें यदि इग्लैण्ड और स्काटलैण्डके मतदाता चाहें तो उसे और अधिक समयतक अलग रखनेकी सम्मति दे सकते है । अलस्टरके प्रतिनिधि इतने दिनोंतक बराबर पहलेकी तरह ब्रिटिश पार्लमेण्टमें रहेंगे । पर मि० बोनरलाने कहा कि हम सभी दशाओंमें उस बिलके विरोधी है । जबतक सरकार आयर्लैण्डके सभी मतदाताओंकी सम्मति न ले ले तबतक उसे इस प्रकारका परिवर्त्तन करनेका कोई अधिकार नहीं है । मि० रेडमण्डने कहा कि अब तो अलस्टरवालोंको सतुष्ट हो जाना चाहिए, क्योंकि उनके साथ यथेष्ट रिआयत की जा रही है । आशा है कि छ वर्षमें आयरिश पार्लमेण्ट प्रमाणित कर देगी कि उसके कारण अलस्टरवालोंकी किसी प्रकारकी हानि नहीं हो सकती और लोगोंका भय दूर हो जायगा । यदि इतने पर भी अलस्टरवाले न मानें तो सरकारका कर्त्तव्य है कि वह नियमानुसार उसे ज्योंका त्यों पास करके

कानून बना दे । सर एडवर्ड कारसनने कहा कि यदि सरकार समयका बधन निकाल दे तो अलस्टर कनवेन्शन उस पर विचार कर सकती है । इन सब बातोंके उपरात उसकी पहली आवृत्ति हो गई । अलस्टर-वाले उस समय बहुत बिगडे हुए थे और यहाँ तक लड़नेके लिए तैयार थे कि लेडी लण्डनटरीने आवश्यकता पडने पर सहायता करनेके लिए १५० सार्जण्टोंका एक दल भी तैयार कर लिया था ।

जब यूनियनिस्टोंने देखा कि सरकार किसी प्रकार नहीं मानती और वह पूर्ण रूपसे आयर्लैंडको होमरूल देनेके ही पक्षमे है, तब उन्होंने एक नये बिलका मसौदा तैयार किया । वे चाहते थे कि सब प्रान्तोंको अपने अपने अधिकार अलग दे दिये जायँ और उनके सघ स्थापित हो जायँ । पर सरकारकी ओरसे कहा गया था कि शासन-सबधी सूक्ष्म बातो पर विचार करनेके लिए अभी बहुत समय है । ३१ मार्च १९१४ को जब कामन्समें होमरूल बिलकी तीसरे दौरेकी दूसरी आवृत्ति होने को थी उस समय मि० बाल्टर लागने उसे अस्वीकृत करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया । पर वह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ और दूसरी आवृत्ति भी हो गई ।

उस समय लार्ड्स सभा भी बिलमें कुछ सुधार करनेका विचार कर रही थी । साथ ही विरोधी भी शात होने लगे थे और उनका विरोध कम हो चला था । लार्ड्स लोग जो सुधार या परिवर्त्तन करना चाहते थे, १४ जुलाई १९१४ को उसके मसौदे पर विचार हुआ । पर सर-कारकी ओरसे अर्ल बोकम्पने उस सुधारका विरोध किया और कहा कि यदि सब लोग चाहे तो इसके निर्णयके लिए एक कान्फरेन्स की जा सकती है । तिसपर भी लार्ड्स सभामें वह परिवर्त्तन सर्वसम्मतिसे पास हो ही गया ।

उस समय गुप्त रूपसे कुछ लोग आवश्यकता पडने पर लडनेकी भी तैयारियाँ कर रहे थे । उन्होंने अनेक स्थानों पर गुप्त रूपसे हथियार-

लाकर छिपाये थे, जिसके कारण उपद्रवकी आशका बनी हुई थी। अनेक स्थानों पर छिपाये हुए हथियार पकडे भी गये थे। १९ जुलाईको आयरिश तट पर एक नाव पकडी गई थी जिसमें नेशनलिस्टोंकी ३००० बन्दूकें थीं। अलस्टरवालोंके लिए भी एक सिपाही बारेकमें बन्दूकें चुराता हुआ पकडा गया था। होमरूलके झगडेके कारण मत्रिमडलके चार मत्री भी कुछ असतुष्ट हो गये थे और इस बातकी सभावना थी कि वे मण्डलसे अलग हो जायँगे। इतना होने पर भी लिबरल पक्ष अपने विचारों पर दृढतापूर्वक अडा हुआ था। उस समय अनेक बातोंका विचार करके सम्राट् पचम जार्जने अपने उस कर्त्तव्यका पालन किया, जो उन्हें एक नृपतिकी हैसियतसे करना चाहिए था। अर्थात् उन्होंने सब दलोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा करनेका विचार किया। २० जुलाई १९१४ को मि० एसक्विथने कामन्स सभामें कहा था कि सम्राटने सरकार, अलस्टर, नेशनलिस्ट तथा विरोधी (Apposition) सब पक्षोंके दो दो प्रतिनिधियोंकी एक कमेटी नियुक्त करके होमरूलके सम्बन्धमें निर्णय करनेके लिए उसे बकिंगहम पेलेसमें निमत्रित किया है, इस कमेटीके प्रधान पार्लमेण्टके प्रवक्ता (Speaker) होंगे। उसी दिन हाउस आफ कामन्समें मजदूर दलके कुछ लोगोंने अपनी एक स्वतत्र कमेटी करके निश्चय किया कि महाराज जार्जका पार्लमेण्टके कामोंमें यह हस्तक्षेप अनुचित है। पर लार्ड क्रूने हाउस आफ लार्ड्समें कह दिया कि इसे महाराजका अनुचित और अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं समझना चाहिए और न इससे पार्लमेण्टके अधिकारों पर कोई आक्रमण होगा। इस कमेटीकी योजनाका उद्देश्य यही है कि यदि सम्भव हो तो आपसमें समझौता हो जाय और बात बढने न पावे। मजदूर दलकी उक्त टीका इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि स्वतत्र देशोंमें प्रजाके अधिकार कितने विस्तृत होते हैं और लोकमतका कहाँतक आदर किया जाता है।

उस समय यूनियनिस्ट दल समझता था कि इस कमेटीका कोई फल न होगा। साथ ही स्थिति आदि पर विचार करनेके लिए पार्लमेण्टके गैर सरकारी लिबरल मेम्बरोंकी भी एक सभा हुई थी, जिसमें निश्चय हुआ था कि सरकार कोई ऐसी रिआयत न करे, जो राष्ट्रीय दलको मजूर न हो। २१ जुलाईको सम्राट्‌द्वारा निमन्त्रित प्रतिनिधियोंकी एक कान्फरेन्स हुई जिसमें मि० डिलन, बोनरला, कैप्टेन क्रेग, सर एडवर्ड कारसन, मि० रेडमण्ड, मारक्विस आफ लेन्सडाउन, मि० एसुक्विथ, मि० लायड जार्ज सभासद तथा पार्लमेण्टके स्पीकर सभापति थे। पहले सम्राट्‌की सेवामें सब लोग उपस्थित हुए। सम्राट्‌ने उनसे कहा कि यद्यपि आप लोग इसे मेरी अनधिकार चर्चा कह सकते हैं तथापि एक कारणसे मुझे आप लोगोंको आपसमें विचार करनेके लिए निमन्त्रित करना पड़ता है। मुझे अनेक विश्वसनीय और प्रामाणिक व्यक्तियोंसे पता लगा है, कि यह मौका बहुत नाज़ुक है। इस लिए आप लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे सब काम ठीक तरहसे हो जाय और रक्तपातकी नौबत न आवे। आध घंटेतक बाकी लोगोंमें वादविवाद होता रहा, पर निर्णय कुछ भी नहीं हुआ। दूसरे दिन अनेक समाचारपत्रोंने सम्राट्‌के इस प्रयत्न और व्यवहारकी बहुत प्रशंसा की। उस दूसरे दिन डेढ़ घंटेतक, तीसरे दिन ढाई घंटेतक और चौथे दिन प्राय सवा घंटेतक उन लोगोंमें वादविवाद हुआ। पर फिर भी कुछ निश्चय नहीं हुआ। इस सभाकी कार्रवाई गुप्त रक्खी गई थी। इसके उपरान्त डेढ़ घंटेतक मन्त्रिमण्डलमें विचार होता रहा, पर तो भी कुछ निश्चय नहीं हुआ। अलस्टरके अलग किये जाने आदिके सम्बन्धमें, मूल सिद्धान्तोंमें ही लोगोंका मतैक्य नहीं होता था, तब भला निर्णय किस प्रकार होता? उधर सिविल युद्धके लिए लोग गुप्त रूपसे पूरी तैयारियाँ कर रहे थे। एक स्थान पर एक नावपरसे बाहरसे आई हुई १२०० बदूकें नेशनलिस्ट वालंटियर्सने उतारी थीं, जो

यथास्थान पहुँचा दी गई थीं। उन लोगोंने पुलिसको जबरदस्ती दबा और रोक रक्खा था। वालेंटियरों और सैनिकोंमें मुठभेड भी हो गई थी जिसमें तीन आदमी मरे और चालीस घायल हुए थे। पीछेसे जब यह सेना लौटकर डब्लिन पहुँची तब लोगोंने उस पर पत्थर भी फेंके थे। होमरूल बिलके सुधारके सबधमें हाउस आफ़ कामन्समें जो विचार हो रहा था, इस झगड़ेके कारण तथा भावी युरोपीय युद्धकी सम्भावनासे उसमे बाधा पड गई। युद्धविभागने आज्ञा दे दी थी कि जो व्यक्ति नेशनलिस्ट या अलस्टरवाले वालेंटियरोंको बहकाता हुआ पाया जायगा उसके अपराधका विचार सैनिक न्यायालयमें होगा। यह भी कहा जाता है कि शान्ति-रक्षाके लिए ३०।३५ सजे सजाये और तैयार जहाज भी कई दिनोंतक आयरिश तटोंके आसपास घूमा करते थे। राष्ट्रीय दलके लोगोंने यहाँतक निश्चय कर लिया था कि यदि सरकारका होमरूल बिल पास न होगा तो हम लोग अनेक अशोंमें स्वतन्त्ररूपसे शासन प्रबध करेंगे।

इसी बीचमें यूरोपमें भीषण महा समर छिड गया। उस समय इस बातकी आवश्यकता थी कि सारा ब्रिटिश साम्राज्य मिलकर इस नई भीषण परिस्थितिका सामना करे और सब लोग आपसका झगडा बद कर दें। इस लिए १४ सितबर १९१४ को पार्लमेण्टमें सरकारकी ओरसे मि० एस्क्विथने कहा कि सरकारका विचार है कि आयरिश होमरूल बिल कानून बन जाय और Statute Book कानूनोंवाली किताब पर चढा दिया जाय। इसके साथ ही मैं एक और बिल उपस्थित करूँगा जिसके अनुसार युद्धकी समाप्तिसे एक वर्षके अन्दर इसके अनुसार कार्य्य न किया जायगा। उस समय भी यूनियनिस्ट दलने इसका बहुत विरोध किया था। १६ सितबरको होमरूल बिलको स्थगित रखनेका बिल हाउस आफ लार्ड्समें भी पास हो गया और

राम राम करके होमरूल बिल Statute Book पर चढ़कर कानून बन गया।

होमरूल बिल पास तो हो गया पर इंग्लैण्डके घोर युद्धमें फँसे रहनेके कारण दो वर्ष तक आयरिश समस्याकी मीमांसा नहीं हुई। अप्रैल सन् १९१६ में जब सेनफेनर्सका विद्रोह हुआ तब अँगरेज राजनीतिज्ञोंकी आँखें खुलीं और उन्होंने समझा कि वर्तमान शासन-व्यवस्था-से काम न चलेगा। जिस प्रकार हो आयर्लैंण्डके शासनका कोई और प्रयत्न होना चाहिए। पर उस समय मन्त्रिमंडलमें कई यूनियनिस्ट सम्मिलित हो चुके थे और लिबरल मंत्रियोंका बल बहुत कुछ कम हो गया था। तो भी मि० एस्क्विथने आयर्लैण्टका झगडा निपटानेका काम मि० लायड जार्जको सौंपा। उन्होंने निश्चय किया कि अलस्टरके छ जिलोंको छोडकर बाकी आयर्लैण्डको इसी समय स्वराज्य दे दिया जाय, और जो लोग इस समय आयर्लैण्डकी ओरसे ब्रिटिश हाउस आफ कामन्सके मेम्बर है वे ही आयरिश हाउस आफ कामन्सके मेम्बर रहें। यह अवस्था समरके एक वर्ष बाद तक रहेगी। यदि पार्लमेण्ट इस बीचमें आयरिश शासनका कोई स्थायी प्रबंध न कर देगी तो प्रीवी काउन्सिलकी आज्ञासे यह अवधि और बढ़ा दी जायगी। मि० लायड जार्जका कथन था कि अगले सार्वजनिक निर्वाचनके बाद भी कामन्स सभामें आयर्लैण्डके उतने ही प्रतिनिधि रहेंगे जितने आज है। पर आयरिश नेशनलिस्ट ब्रिटिश पार्लमेण्टमें बैठनेका अधिकार छोडना नहीं चाहते थे। इस लिए सरकारको यह निश्चय करना पडा कि जब तक सब पक्ष मुख्य बातों पर सहमत न हो जायँ तब तक सरकार इस सम्बन्धमें कोई और कार्रवाई न करेगी। इस प्रकार उस समय भी आयर्लैण्ड स्वराज्यसे वञ्चित ही रहगया।

७ विद्रोहका आन्दोलन।



बारहवीं शताब्दीमें आयर्लैण्ड और इग्लेण्डका जो सम्बन्ध हुआ था वह समस्त आयरिश लोगोंको सभी अवसरों पर समान रूपसे पसन्द नहीं था। इसलिए बहुतसे लोगोंने समय समय पर अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार इस सबन्धको तोडने तथा आयरिश राष्ट्रको पूर्ण स्वतत्र करनेका प्रयत्न किया था। इन विद्रोहात्मक प्रयत्नोंकी अधिकताके कारण वहाँ एक कहावत सी बनगई है कि आयर्लैण्डमें प्रति पचास वर्षोंमें एक विद्रोह होता ही है। इन सब विद्रोहोंका सविस्तर वर्णन करना इष्ट भी नहीं है और वह थोडेमें हो भी नहीं सकता। इसलिए जिस प्रकार पिछले तीन भागोंमे आयर्लैण्डके नियमानुमोदित आन्दोलनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है उसी प्रकार इस भागमें नियम-विरुद्ध आन्दोलनोंका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

बारहवीं शताब्दीके मध्यमें राजा द्वितीय हेनरीने आयर्लैण्ड पर इग्लेण्डका अधिकार जमाना आरम्भ किया और उसी समय, प्रायः पैंतीस वर्ष बाद, आयरिश अमीरों और रईसोंने पहला ... । सन् १२५९ में जिराल्डिन नामक आयरिश सरदारने ... किया। सन् १३१४ मे स्काटलैण्डका ... परास्त होकर ... लेनेके लिए ... यता ... आयरिश ... किय बाद एक ... सन् १ हुआ और ... आन्दोलन

पर राजद्रोहका अभियोग लगा जिसमें उसका सिर काट डाला गया। सन् १४८७ से १४९७ तकके दस वर्षोंमें, इङ्गलैण्डकी गद्दीके हकदार बननेवाले जो दो आदमी खडे हुए थे, उन दोनोंको आश्रय देकर आयरिश लोगोंने जहाँतक हो सका उपद्रव किये। सन् १५३७ में लार्ड थामस फिट्जरल्डका विद्रोह हुआ। यह बहादुर अमीर किलडेरेके घरानेका था। १५५९ से १५६७ तक प्रसिद्ध आयरिश अमीर शेन ओनीलका उपद्रव होता रहा और १५६८ से १५८६ तक मनस्टर प्रान्तके आयरिश सरदारोंके उपद्रव होते रहे। १५३९ में प्रसिद्ध जिराल्डिनके घरानेके कई आदमियोंने विद्रोह किये। १५९८ से १६०२ तक मनस्टर प्रान्तके दगे होते रहे। १६४१ में राजा चार्लसकी ओरसे आरमाण्ड सरदारके विद्रोह हुए और १६४१ से १६४८ तक अलस्टर, मनस्टर और कनाट प्रान्तके प्रसिद्ध विद्रोह और कतल हुए। १६९८–९० में राजा द्वितीय जेम्सकी ओरसे टिरकानेल नामक सरदारने उपद्रव किये। पर जबसे ये उपद्रव शान्त हुए तबसे रोमन कैथोलिक लोगोंके लिए भयकर कानून बनने लगे और इसके उपरान्तके सौ वर्षोंतक आयर्लेण्डमें कोई बहुत बडा विद्रोह नहीं हुआ, फुटकर दगे फसाद अवश्य होते रहते थे। आयरिश खेतिहरोंके दगे फसादका आरम्भ इसी शताब्दीमें हुआ था, पर इन दगे फसादोंका कोई विशेष राजकीय स्वरूप नहीं था।

ऊपर जितने उपद्रवोंका वर्णन किया गया है उन सबके मूलमें धर्म्म-प्रीति, जब्त हुई जमीनको फिरसे लौटानेकी इच्छा, अपमानका बदला लेनेकी उत्कण्ठा और कैथोलिक राजाओं आदिके सम्बन्धमें पक्षपात आदि अनेक बातें मिली हुई थीं। लेकिन इसके बाद जो विद्रोह हुए उनमें धर्म्मकी अपेक्षा राजकीय हेतु ही अधिक बलवान् जान पडता है। इसके उपरान्त राजकीय हेतुओंसे जो सबसे बडा विद्रोह

हुआ था वह सन् १७९८ में उल्फटोन और लार्ड एडवर्ड फिट्जरल्डने 'युनाइटेड आयरिशमेन' नामक सस्थाकी सहायतासे किया था। इसके पॉच वरस बाद सन् १८०३ में राबर्ट एमेटका छोटासा विद्रोह हुआ था। इसके बादका विद्रोहात्मक आन्दोलन फिनिअन लोगोंका था जो प्राय. सन् १८४८ से १८६७ तक होता रहा। सन् १८४८ में जो आन्दोलन हुआ था वह मुख्यत· 'तरुण आयर्लैण्ड' नामक सस्थाके तरुण नेताओंने किया था। इन नेताओंमें अनेक पत्र-सम्पादक तथा पार्लमेण्टके सभासद् भी थे। इनमेंसे अधिक प्रभावशाली नेता स्मिथ ओब्रायन था जिसकी सक्षिप्त जीवनी आगे चरित्र-मालामें दी गई है। सन् १८४८ वाले आन्दोलनमें ओब्रायनके अतिरिक्त चार्ल्स डफी, डिलन, जान मिचल, थामस मीगर, जान लेलर, जान मार्टिन, मेकमेनस आदि लोग प्रधान थे। १८४९ में जोसफ ब्रेननने कार्कमें विद्रोह करनेका प्रयत्न किया और आगेके नौ वर्षोंमें फीनिअन लोगोंके विद्रोहका वास्तविक आरम्भ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी भर आयर्लैण्डमें फीनिअन लोगोंका ही मुख्य विद्रोहात्मक आन्दोलन होता रहा। इस आन्दोलनका थोडासा वर्णन हम यहॉपर दे देते है जिसमें पाठक यह समझ सकें कि आयर्लैण्डका नियमविरुद्ध आन्दोलन कैसा होता था।

आयर्लैंडमे फीनिअन लोगोंका आन्दोलन पहले पहल सन् १८५२ में आरम्भ हुआ। इससे पहले सन् १८४८ में आयरिश लोगोंमे दो पक्ष हो गये थे—एक पक्ष ग्रटनके ढग पर नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाला और दूसरा पक्ष उल्फटोनके ढग पर विद्रोह आदि करनेवाला था। इस दूसरे पक्षके लोगोंने सन् १८४८ में कुछ प्रयत्न किया था जो निष्फल हुआ। ऊपर कहा जा चुका है कि इस प्रयत्न में 'नेशन' पत्रके सम्पादक लोग स्मिथ ओब्रायन आदि सम्मिलित थे। उन लोगोंको कुछ दिनों तक जेलमे रहना पडा था, परन्तु जेलसे लौटने पर उन

लोगोंने मनमें यह बात अच्छी तरह समझ ली थी कि आयर्लैंडका स्वतंत्र होना यद्यपि उचित और न्याय्य है तथापि उस स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके साधन अभी लोगोंके पास नहीं है, इस लिए केवल आत्मघातक प्रयत्न करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। ओब्रायन और डफी (नेशन पत्रके सम्पादक) ओकानेलके विरुद्ध थे और आखिरी कांटे उन्होंने नाराज होकर उसका पक्ष छोड भी दिया था। लेकिन सन् १८५८ मे आयर्लैंडमें फीनिअन लोगोंका जो उपद्रव हुआ, ये दोनों ही उसके प्रतिकूल थे। यह उपद्रव स्टीफेन्स नामक एक व्यक्तिने आरम्भ किया था। स्किबेरीन नामक नगरमें एक पुस्तकालय था जिसमें एक क्लब भी था और उसका नाम 'फीनिक्स राष्ट्रीय पुस्तकालय और साहित्य सभा' था। उसमे बहुतसे व्यापारी युवक सम्मिलित थे। मई सन् १८५८ में स्टीफेन्स इस क्लबमें गया था। वहाँके लोगोंकी स्वतन्त्रप्रियता और उत्साह आदि देखकर उसने समझा कि इस क्षेत्रमे मेरे विद्रोहात्मक आन्दोलनके बीज अच्छी तरह अकुरित होंगे। इस लिए उसने क्लबके नेता जेरेमिया डोनोवनसे एकान्तमें बातें करके उसे समझा दिया कि आयर्लैंडको स्वतन्त्र करानेके लिए अमेरिकामें जोरोंसे आन्दोलन हो रहा है और यह निश्चय हो चुका है कि आयर्लैंडमें जितने आदमी लडनेके लिए तैयार होंगे उतने ही अमेरिकासे भी सहायता देनेके लिए आवेंगे और इस लिए हथियार आदि भी सग्रह करके ठीक-ठिकाने पर रक्खे हुए है। यह सुनकर डोनोवन फूल गया, उसने क्लबके और लोगोंको मिलाकर एक गुप्तमण्डली स्थापित की और आयर्लैण्डकी स्वतन्त्रताके लिए लोगोंसे प्राण तक समर्पण करनेकी शपथ लेना आरम्भ किया। लेकिन जब उस गुप्त मण्डलीमें यथेष्ट आदमी सम्मिलित नहीं हुए तब स्टीफेन्सने एक ऐसी युक्ति की जिससे लोग धडाधड उसमे सम्मिलित होने लगे। उसने लोगोंसे यह कह दिया कि स्मिथ ओब्रायन, चार्ल्स डफी, सुलिवान, मिचेल आदि नेता इस षड्यंत्रके अनुकूल है और उन्हें इस

गुप्त मण्डलीके उद्देश्य मान्य है। पर वास्तवमें यह बात बिलकुल झूठी थी। धीरे धीरे यह बात सुलिवानके कान तक पहुँची और वह इस चिन्तामें पडा कि लोगोंको स्पष्ट रूपसे मै यह बतला दूं या नहीं कि इस षड्यन्त्रसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यों कि यदि स्पष्ट रूपसे वह प्रकट कर देता कि इस षड्यन्त्रसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है तो मानों प्रकारान्तरसे वह पुलिसको इस षड्यन्त्रकी सूचना देता और तब यदि अपराधियोंके साथ निरपराध भी पीसे जाते तो उसका पाप उसके सिर आता। और यदि वह इस बातको प्रकट न करता तो स्टीफेन्स खूब अच्छी तरह उसे बदनाम करता और उसके कारण बहुतसे युवक लोग फँस जाते, जिससे उसकी और भी बदनामी होती। पर अन्तमें उसने यही निश्चय किया कि इस षड्यन्त्रका खुले आम विरोध करना चाहिए। तदनुसार उसने ओब्रायन और मिचेलकी तथा स्वय अपनी ओरसे नेशन पत्रमें उस गुप्त आन्दोलनका साफ इशारा करके युवकोंको उससे सावधान रहनेका उपदेश किया। सुलिवान उस समय डफीके स्थान पर नेशन पत्रका सम्पादक था, इस लिए उसके लिखनेका अच्छा प्रभाव पडा और बिना कारण भ्रममें पड कर षड्यन्त्रमें सम्मिलित होनेवाले युवक समयपर ही सावधान हो गये। लोगोंसे शपथ लेनेका काम धीरे धीरे रुका और उस समय फीनिअन आन्दोलन कम होने लगा।

२३ नवम्बर सन्‌ १८६३ को उत्तर अमेरिकाके शिकागो नगरमें फिरसे खुले आम फीनिअन आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलनकी कल्पना प्राय पॉच बरस पहलेसे ही हो रही थी। लेकिन किसी आन्दोलनके अच्छा रूप धारण करनेके लिए उसके अधिष्ठान रूपमें एक सस्थाकी आवश्यक्ता होती है। वह सस्था उक्त तारीखको स्थापित हुई। उस सस्थाका सस्थापक जान ओमेहान नामक एक आयरिश जिसके

साथ आयर्लैण्ड छोड कर आये हुए अनेक असन्तुष्ट और अमेरिकाके तत्कालीन युद्धमें लडे हुए योद्धा आयरिश थे। इन लोगोंका प्रयत्न चाहे कितना ही भ्रमपूर्ण क्यों न हो पर तो भी इनकी स्वदेशभक्तिके सम्बन्धमें शका नहीं हो सक्ती थी । उक्त तारीखको सस्था स्थापित करके ओमेहान तथा अन्य सभासदोंने आयर्लैण्ड तथा अन्य स्थानोंके आयरिश लोगोंको सबोधित करके एक घोषणापत्र निकाला। उसमें यह दिखलानेके अतिरिक्त कि आयर्लैण्टमें अँगरेजी राजसत्ता कैसे स्थापित हुई और वह कितनी घातक है, यह भी कहा गया था कि– "सन् १७८२ में इग्लैण्डने आयरिश पार्लमेण्टको स्वतत्रता दी और १८२९ में रोमन कैथोलिक लोगोंपरका बहिष्कार हटा कर उन्हें समान अधिकार दिये। ये दोनो काम आयर्लैण्डके सन्तुष्ट और अतएव निर्बल करनेके लिए किये गये थे। इन कामोंके लिए सच्चे देशभक्तोंको दु ख ही होना चाहिए। क्योंकि जबतक आदमी सन्तुष्ट रहता है तब-तक स्वतत्रताकी ओर उसका ध्यान नहीं जाता। और इस प्रकार राष्ट्र अल्प तथा क्षणिक सुखके लिए बडे और स्थायी सुखको छोड देता है। स्वार्थत्यागसे ही राष्ट्रके लिए अधिकार प्राप्त किये जा सकते है, पर उन दोनों अवसरों पर उक्त दोनों काम करके इग्लैण्डने दुष्ट बुद्धिसे वह अवसर ही न आने दिया जिसमें वे स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिए अपने प्राण देते।" आदि आदि बातें उस घोषणापत्रमें लिखी थीं। यह कहना कि—"केवल देहत्यागसे ही स्वार्थ-त्याग होता है और राष्ट्रके कल्याणके लिए देहत्यागसे बढकर और कोई स्वार्थ त्याग नहीं है" कदाचित् सिपाही पेशेवालोंको ही शोभा दे सकता है, राजनीतिज्ञोंको यह शोभा नहीं दे सकता। लेकिन उस समय फीनिअन लोगोंकी सस्थामें केवल सिपाही आदि ही सम्मिलित थे। स्वदेश-त्याग करने-वालोंके लिए फिर और कोई देश स्वदेश-तुल्य माननेके लिए नहीं रह जाता, अत उनके लिए उनके शरीरका कोई मूल्य भी नहीं रह जाता;

और जो शरीर चारों प्रकारके पुरुषार्थ करनेका साधन है वह यदि केवल एक ही पुरुषार्थ साधनेमें नष्ट हो जाय तो भी उन्हें उसकी कोई चिन्ता नहीं होती। इसके अतिरिक्त उस समय अमेरिकामें जो आयरिश लोग एकत्र थे यद्यपि उनमें स्वदेशभक्ति थी, तथापि आसपासकी भयकर स्थिति देखकर उनकी दृष्टि चाहे बिलकुल नष्ट न हो गई हो पर उसमे धुँधलापन अवश्य आगया था। इसलिए युद्धके सिवा और कोई दूसरा विचार उनके मनमें सहजमें आता ही न था।

फीनिअन सस्थाकी शाखायें आयर्लैंडमें शीघ्र ही फैल गई और कुछ दिनों बाद इग्लैंडमें भी उनका प्रवेश हुआ। इस सस्थाका 'आयरिश पीपुल' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी डब्लिनसे निकलने लगा और उसके द्वारा स्टीफेन्स उज्ज्वल भाषामें हजारों आदमियोंको इस नये 'फीनिअन' मतकी बातें समझाने लगा। लोगोंको 'आयरिश पीपुल' यह उपदेश देता था कि नियमानुमोदित रीतिसे आन्दोलन करनेवाले लोगोंकी बातें न सुनो और न राजनीतिक बातोंमें धर्म्मोपदेशकोंका कहना मानो। प्रायः दो वर्षतक अधिकारियोंने इस समाचारपत्रको चलने दिया, पर अन्तमें सितम्बर सन् १८६५ में सरकारी आज्ञासे पुलिस अफसर 'आयरिश पीपुल' के दफ्तरमें घुसे। उन्होंने छापाखाना जब्त कर लिया और समाचारपत्र नष्ट करके उसके सम्पादकोंको कैद कर लिया। सम्पादकोंमे ओलियारी, टामस लबी आदि जो लोग थे, उनपर अलग कमीशन नियुक्त करके मुकदमा चलाया गया और उन्हें बीस बीस बरसकी काले पानीकी सजा हुई। षड्यन्त्रका नेता स्टीफेन्स जेलके अधिकारियोंसे मिलकर वहाँसे निकल भागा और इस प्रकार उसने अपना छुटकारा कर लिया। इसके उपरान्त बहुत दिनों तक गुप्त रूपसे इस बातकी जाँच होती रही कि उक्त षड्यन्त्र तथा आन्दोलनमें कौन आदमी कहाँ तक सम्मिलित था। उस जाँचने अधिकारियोंको यह

पता लगा कि आयरिश समाजमें इस संस्थाकी जड़ बहुत गहराई तक पहुँच गई है, इस लिए उन्होंने इंग्लैण्डकी सरकारके पास रिपोर्ट भेज कर नये अधिकार माँगे। इसके अतिरिक्त ओलियारी, लवी आदि लोगोंके मुकद्दमोंका हाल समाचारपत्रोंके द्वारा दूर दूर तक चारों ओर पहुँच गया। उससे उन लोगोंकी असामान्य बुद्धिमत्ता, अलौकिक धैर्य और देशभक्ति व्यक्त हुई और लोगोंको विश्वास हो गया कि "वे लोग पापी या अपराधी नहीं थे, बल्कि प्रतिष्ठित थे। उनके उद्देश भी अच्छे थे और उनका प्रयत्न भी उचित था, और इसीलिए न्यायालयके सामने वे अपने समर्थनमें इतना भाषण कर सके थे।" इसपर इंग्लैण्डके लोग अपने मनमें सोचने लगे कि—"ऐसे अच्छे अच्छे आदमी अविचारी क्यों हो जाते हैं? वे आपसे बाहर क्यों हो जाते हैं? और जो प्राण मनुष्यके लिए संसारभरमें सबसे अधिक प्रिय है उसी प्राणको वे फूँककी तरह निकाल देनेके लिए क्यों तैयार हो जाते हैं? उधर पुलिसने तलाशी आदि लेकर युद्धमें काम आनेवाला ऐसा बहुतसा सामान ढूँढ़ निकाला जो लोगोंने जगह जगह पर छिपा कर रक्खा था। सिर्फ़ डब्लिन नगरमें भाले, बरछियाँ, गोले और कारतूस तैयार करनेके तीन कारखाने पकड़े गये। भय होने लगा कि कहीं चारों ओर विद्रोह तो नहीं हो जायगा! अधिकारियोंको सहायताके लिए नई सेना मँगानी पड़ी। १७ फरवरी सन् १८६७ को सर जार्ज ग्रेने पार्लमेण्टके सामने यह सूचना उपस्थित की कि आयर्लैण्डमें कुछ दिनोंके लिए नागरिकोंकी स्वतन्त्रताका कानून रद्द कर दिया जाय, जिसमें अधिकारी लोग जिसे जी चाहे उसे पकड़कर कैद कर लें और इसप्रकार उपद्रव शान्त हो। यह सूचना कामन्स तथा लार्ड्स दोनों सभाओंमें एक ही दिनमें पास हो गई और दूसरे ही दिन उसके लिए राजाकी अनुमति भी मिल गई। इस प्रकार सारे इंग्लैण्डमें इस फीनिअन आन्दोलनका शोर मच गया और आयर्लैण्डकी ओर अँगरेज़ोंका ध्यान आकृष्ट हुआ।

उसी वर्ष सितम्बर महीनेमें मैचेस्टरमें कीली और डीजी नामक दो फीनिअन कैदियोंको पुलिसके हाथसे छुडानेका उद्योग किया गया, जिसमें प्राण-हानि भी हुई। १८ सितम्बरको पुलिस इन कैदियोंको गाडीमें बैठाकर पुलिस-कोर्टसे जेलखानेकी ओर ले जा रही थी, इतनेमें फीनिअन लोगोंकी एक टोलीने हाथमें पिस्तौल लेकर आक्रमण किया। इस साहसपूर्ण कृत्यका समाचार केवल मैचेस्टरमें ही नहीं बल्कि सारे इग्लेण्ड और आयर्लैण्डमें फैल गया और आक्रमणकारियोंके नेता एलन और उसके साथियोंके लिए लोगोंमे कुछ अकल्पित रीतिसे आदर उत्पन्न हो गया। कहा जाता है कि उसे फॉसी हो चुकनेके उपरान्त जब उसकी रथी निकली तब उसके साथ डेढ लाख आदमी थे। इसी प्रकार, आगे चलकर १३ दिसम्बरके दिन बैरेट नामक एक फीनिअनने वर्क नामक अपने एक मित्रको जेलसे छुडानेके लिए 'डाइनामाइट' से जेलकी दीवार उडा दी। इस प्रकारके अपराध, एकके बाद एक, होते जाते थे, इस लिए पार्लमेण्टमें आयर्लैण्डके प्रश्नकी चर्चा जोरोंसे होने लगी। प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममण्डलके सम्बन्धमे नया कानून बनानेवाले ग्लैडस्टन साहबने सन १८६८ और १८६९ वाले फीनिअन आन्दोलनका जिक्र करते हुए कहा था—"आयरिश प्रश्नके सम्बन्धमें पार्लमेण्टके नवीन सिद्धान्त बनानेमे एक दृष्टिसे इस आन्दोलनका बहुत कुछ उपयोग हुआ।" यह बात नहीं थी कि फीनिअन आन्दोलनके कारण आयरिश लोगोंकी मॉगों या झगडोंके गुण-दोष बदले या बढे। पर इस आन्दोलनके कारण आयर्लैण्डमें नागरिकोंकी स्वतन्त्रताका कानून रद करना पडा। बडे बडे शहरोंमें हलचल मच गई, लोगोंको प्राण और सम्पत्तिके नाशका भय होने लगा और शान्तिप्रिय नागरिकोंको अपनी रक्षाके लिए हथियार लेकर पहरा देना पडा। अर्थात् अपनी सदाकी शिथिलता छोड कर इग्लैण्डके लोगोंको आयर्लैण्डका प्रश्न उठानेकी आवश्यकता जान पडने लगी। ३० मार्च सन १८६८ को पार्लमेण्टके

अपने भाषणमें ग्लैडस्टन साहबको यह कहना पडा कि–"बुरी बातोंसे भी तत्त्वज्ञानी मनुष्यको किस प्रकार अच्छा परिणाम निकालना चाहिए, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है। इससे पहले जान ब्राइटने भी नागरिकोंके अधिकारोंका कानून रद करनेके समय इसी प्रकारकी बात कही थी और यह भी कहा था कि यह बात राजनीतिज्ञताने बडा भारी कलङ्क लगानेवाली है कि जब तक ऐसे भयकर अनर्थ न हो तब तक पार्लमेण्टके बडे बडे राजनीतिज्ञोंको न्यायान्यायके प्रश्न उठानेका ध्यान ही न हो। इसके लिए ग्लैडस्टन और ब्राइट दोनो पर ही उनके प्रतिपक्षियोंने खूब बौछारें कीं और स्पष्ट रूपसे उन पर यह दोष भी लगाया कि उनके ऐसे ऐसे भाषण ही इस प्रकारके अनर्थोको उत्तेजना देते है। लेकिन सारे ससारको इस बातका विश्वास था कि ग्लैडस्टन अथवा ब्राइटको इस प्रकारके दगे-फसादका उत्तेजक बतलाना दिनको रात बतलाना है, इस लिए उन महात्माओंको ऐसे दोषारोपणोंका उत्तर देनेकी भी आवश्यकता न पडी। आगेके फीनिअन आन्दोलनका सविस्तर इतिहास बतलानेकी आवश्यकता नहीं। यह आन्दोलन आगे पन्द्रह बीस बरस तक अर्थात् पार्नेलके समय तक थोटा बहुत होता रहा। पार्नेल पर भी यह अभियोग लगाया गया था कि वह इस आन्दोलनमें सहायता देता है। लेकिन इस आन्दोलनसे नियमानुमोदित आन्दोलनको चाहे कितनी ही अप्रत्यक्ष सहायता क्यो न मिली हो पर तो भी इन दोनों प्रकारके आन्दोलन करनेवाले मनुष्य, उनके विचार और गुण धर्म आदि एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न थे। इस लिए पार्नेल आदि नेताओंके आन्दोलनको न तो फीनिअन आन्दोलन सदाके लिए दबा ही सका ओर न किसी प्रकार उसकी हानि ही कर सका।

युरोपीय महासमर छिडनेके प्राय: तीन वर्ष बाद अप्रेल१९१६ मे आयर्लैण्डमें एक और छोटासा विद्रोह हुआ था। पर जैसा कि पीछे से मि० बिरेलने एक अवसर पर कहा था, इसकी गिनती राष्ट्रीय विद्रोहोंमे नहीं हो

सकती। तो भी वह एक ऐसे समयमें हुआ था जब कि इग्लैण्ड एक घोर युद्धमें लिप्त था और उसके सामने जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित था। वह विद्रोह आयर्लेण्डको स्वतन्त्र करनेके उद्देश्यसे हुआ था, इस लिए उसका भी संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दे देना आवश्यक और उपयुक्त जान पड़ता है। युद्धसे कुछ वर्ष पहले आयर्लैण्डके कुछ युवकोंने शिक्षितवर्गमें गेलिक भाषाके प्रचारके निमित्त कुछ प्रयत्न आरम्भ किया था, उसीके साथ साथ प्राचीन आयरिश शिल्पकी उन्नति करना भी उनका उद्देश्य था। इस दलका नाम सेनफेन था। युद्धसे कुछ ही पहले जब होमरूलका आन्दोलन हो रहा था तब आवश्यकता पड़ने पर लड़भिड़ कर होमरूल रोकनेके लिए अलस्टर प्रान्तमें कुछ वालेंटियरोंका एक दल तय्यार हुआ था। उनकी देखादेखी नेशनलिस्ट लोगोंकी भी एक वालेंटियर सेना तैयार हुई थी। जब युद्ध आरम्भ हुआ तब दोनों दलोंने मिलकर साम्राज्यकी सेवा करना निश्चित किया। पर सेनफेनर्सको यह बात पसन्द नहीं आई। उन लोगोंका मत था कि आयर्लैण्ड इस युद्धमें कोई सहायता न दे और तटस्थ रहे। मजदूर दलके कुछ नेता इनके पृष्ठपोषक थे जिनमें मि० रेडमण्डके शत्रु मि० लारकिन भी सम्मिलित थे। इस लिए जो सेनफेनर्स नेशनलिस्ट वालेंटियर्समें थे, वे अलग हो गये और उपद्रव करनेकी चिन्तामें लगे। इनका उपद्रव यहाँ तक बढ़ चला कि अधिकारियोंको हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता हुई। कई जगह तलाशीके समय सेनफेनर्सने पुलिस अफसरोंको गोली मार दी थी। इन्हीं सब उपद्रवोंके कारण सैनिक अधिकारियोंने सेनफेनदलके तीन नेताओंको छ दिनके अन्दर आयर्लैण्ड छोड़ देनेके लिए कहा। इसका विरोध करनेके लिए २० मार्चको एक सभा हुई जिसके सभासदोंने रातके समय कई जगह दंगा फसाद किया जिसमें कई आदमी मारे भी गये।

२१ अप्रेल सन् १९१६ को आयर्लैण्डके पश्चिमी किनारे पर एक

जर्मन गोताखोर और एक लडाईका जहाज दिखाई दिया। जहाजको तो एक अँगरेजी जहाजने रोककर डुबा दिया और गोताखोरने किनारे पहुँचकर सेनफेनर्सके नेता सर राजर केसमेण्टको उतारा। जिस प्रकार सन् १७९८ में उल्फटोन फ्रान्ससे सहायता लाया था उसी प्रकार इस बार केसमेण्ट जर्मनीसे सहायता लाया था। पर सौभाग्यवश सेनाने उसी स्थान पर केसमेण्टको पकडकर लन्दन भेज दिया जहाँ वह टावर आफ लण्डनमें कैद कर दिया गया। २४ तारीखको डब्लिनमें फिर झगडा हुआ जिसमें सेनफेनर्सने कई बडी बडी इमारतों पर आक्रमण करके उन्हे अपने अधिकारमें कर लिया। उस दिन और भी कई स्थानों पर इसी तरहकी घटनायें हुई। डब्लिनमें बारेकको जाती हुई सरकारी सेना भी रोक ली गई। २४, २५ और २६ को दूसरे स्थानोंसे कुमक आई जिसने किसी प्रकार विद्रोहका दमन किया। सब नेताओंने हथियार रख दिये। कुल मिलाकर १००० विद्रोही पकडे गये, जिनमेंसे आधेके लगभग इग्लैण्ड भेज दिये गये। उसी समय आयर्लैण्डमें फौजी कानून भी जारी हो चुका था जिससे शान्ति होनेमें बहुत सहायता मिली। कई आदमियोंको सैनिक न्यायालयकी आज्ञासे गोली मार दी गई और बहुतोंको बडी बडी सजायें हुई। १५ मईको लन्दनमे केसमेण्ट पर शत्रुके साथ मिलकर घोर उत्पात करनेके अभियोगमें मुकदमा चलाया गया। केसमेण्टको फाँसीकी आज्ञा हुई। केसमेण्टने अपील की थी जो १५ जुलाईको खारिज हो गई। ३ अगस्तको केसमेण्टको फाँसी होनेको थी। इससे पहले ही मि० एसक्विथकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिसमें कहा गया था कि केसमेण्टको प्राण दण्ड न हो। उस पत्र पर छ विशपों, २६ पार्लमेण्टके मेम्बरों और ५१ दूसरे बडे बडे आदमियोंके हस्ताक्षर थे। पर प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई और ३ अगस्तको केसमेण्टको फाँसी हो गई। यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि इससे बहुत पहले आयर्लैण्डमें पूर्ण शान्ति हो गई थी।

सारासार-विचार।



पिछले छः भागोंमें आयर्लैण्डका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास तथा आयरिश लोगोंके न्यायानुमोदित तथा अन्य आन्दोलनोंका वर्णन सक्षेपमें दिया गया है। इस इतिहास और इस वर्णनको ध्यानमें रखकर व्यापक और तात्त्विक दृष्टिसे जो सारासार-विचार उठ सकते हैं प्रस्तुत भागमे हम उन्हींका दिग्दर्शन करना चाहते हैं।

आयरिश इतिहासके युगान्तर। ससारके इतिहासकी भाँति राष्ट्रके इतिहासमें भी युगान्तर होते हैं। युगान्तरका मतलब है–काल-विभाग। राष्ट्रके आयुष्यक्रमसे जिस काल-विभागमें कुछ विशिष्ट बातें होती है अथवा पहलेकी बातोंका परिणाम पूर्णताको प्राप्त होता है वह राष्ट्रका युग कहलाता है। इस दृष्टिसे देखते हुए आयर्लैण्डके इतिहासमें नीचे लिखे अनुसार काल-विभाग या युगान्तर होते हैं।—(१) पहला युग पाँचवी शताब्दीतक। इस युगमें आयर्लैण्डमें अनेक जातियोंके लोगोंकी बस्ती कायम हुई, सब लोग एक ही ईसाई धर्ममें लाये गये और उनका राष्ट्र बना। (२) दूसरा युग बारहवीं शताब्दीतक। इस बीचमें स्वदेशी आयरिश राजाओंने अनेक युद्ध करके और पराक्रम दिखलाके ऐसे कृत्य किये जिनके लिए उनके वशजोंने आगे चलकर पँवाडे गाये और जिनका अभिमानपूर्वक उल्लेख किया। इन्हीं दिनोंमें खेती तथा शिल्प आदिका आरम्भ हुआ। (३) तीसरा युग सोलहवीं शताब्दीतक होता है। इस युगमें पहले आयर्लैण्डमें अत कलहका आरम्भ हुआ और अँगरेजोंका आयर्लैण्डमें प्रवेश हुआ। अँगरेजी सत्ता-का चढ़ाव-उतार होते होते उसकी स्थिर रूपसे स्थापना हो गई और, अतमें सोलहवीं शताब्दीमें सारे यूरोपमें धर्म-क्रान्ति हुई। इग्लैण्डके राजा आठवें हेनरीने पोपकी सत्ता हटा दी और स्वय खुले-आम आयर्लैण्डके

राजाकी पदवी धारण की। (४) चौथा युग सन् १७०३ तक माना जाता है। इन सौ सवासौ बरसोंमें आयलैंडमें स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए और धर्म्म-द्वेषके कारण दो एक विद्रोह हुए। लेकिन उनमें आयरिश लोगोंकी हार हुई और उन पर फिरसे स्थायी रूपसे अँगरेजोंका अधिकार जमा। देशमें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी वस्ती खूब बढ़ी और राष्ट्रके दो परस्पर विरोधी अंग स्थापित हुए, एक तो संख्यामें अधिक रोमन कैथोलिक लोगोंका और दूसरा सम्पत्ति, सत्ता और राजाश्रयके कारण प्रबल प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका। हजारों आयरिश लोग मारे गये और हजारों देश छोड़कर भाग गये। प्राय सारी जमीन प्रोटेस्टेण्ट अँगरेज जमींदारोंके हाथमें चली गई और कैथोलिक लोग ऊपरी काश्तकार बने। कैथोलिक लोगोंका सब ओरसे कानूनके द्वारा बहिष्कार हुआ, विद्या, सम्पत्ति तथा मान-सम्मान आदिमें वे स्वदेशमें ही पराये बने और उनकी स्थिति मूर्ख गुलामोंकी सी हो गई। व्यापारविषयक कानून भी बने, जिनके कारण देशका पुराना बचा हुआ थोड़ा बहुत शिल्प भी नष्ट हो गया। अंतमें सन् १७०३ में आयरिश पार्लमेण्टको अँगरेजी पार्लमेण्टमें मिलानेका विचार हुआ, लेकिन यह समझ कर वह विचार कार्य्यरूपमें परिणत नहीं किया गया गया, कि उससे अँगरेजोंकी हानि होगी। आयरिश इतिहासमें यह युग बड़ा ही भयानक हो गया है। (५) पाँचवाँ युग सन् १७०३ से १८०१ तक केवल अट्ठानवे वर्षोंका है। इस युगमें आयलैण्डमें शान्ति थी, इसी युगमें प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथोलिक लोगोंकी द्वेष-बुद्धिमें कमी आरम्भ हुई, स्वधर्म्माभिमानकी अपेक्षा स्वदेशाभिमान अधिक श्रेष्ठ समझा जाने लगा और आयरिश पार्लमेण्टके सुधारके सम्बन्धमें आन्दोलन आरम्भ हुआ। ग्रटन और फ्लड सरीखे राजनीतिज्ञ और वक्ता इसी युगमें हुए, जिनसे आयलैण्डका मुख उज्ज्वल हुआ, नेशनल वालैंटियर लोगोंकी पलटनें तैयार हुईं और देशके लिए

लोग हर तरहका स्वार्थत्याग करनेको तैयार हुए। इसी भरोसे पर आयरिश लोगोने सन् १७८२ में स्पष्ट रूपसे यह निश्चय कर लिया कि-" ऑगरेजी पार्लमेण्ट और आयरिश पार्लमेण्टमें किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है, केवल दोनों देशोंका राजा एक है।" ज्योंही आयरिश पार्लमेण्टके सुधारका वास्तविक आरम्भ होनेको था, त्योंही बीचमें फ्रान्स और अमेरिकाकी राज्यक्रान्ति देखकर बहुतसे आयरिश देशभक्तोंके दिमागमे स्वतन्त्रताका विचार चक्कर मारने लगा और फ्रान्सकी सहायता लेकर सन् १७९८ में उल्फटोनने विद्रोह किया । वह विद्रोह शान्त किया गया और पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता पर आक्रमण हुआ। पिटने लाखों रुपये घूस देकर और पदवियॉ बॉटकर आयरिश पार्लमेंटके सभासदोंको अपनी ओर मिला लिया। सन् १८०१ में आयरिश पार्लमेण्ट तोड दी गई और आयरिश लोगोंके प्रतिनिधि वेस्ट मिनिस्टरमें पार्लमेण्टमें बैठने लगे, डब्लिनमें केवल वाइसराय और शासन करनेवाले अन्य अधिकारी रह गये और राजकार्य्यका मुख्य केन्द्र लण्डन हो गया। (६) छठा युग सन् १८०० से १८९३ तक लिया जा सकता है। इस युगमें रोमन केथोलिक लोगोंके साथ न्याय हुआ, उन्हें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके समान अधिकार मिले और उनके धनसे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डलका पालन होना बद हुआ। कैथोलिक काश्तकारोंको भूमिका स्वामित्व देनेका आन्दोलन बहुत कुछ सफल हुआ । होमरूलका प्रश्न अँगरेज राजनीतिज्ञोंने अपने हाथमें लिया और चाहे होमरूल नहीं मिला तो भी आयरिश लोगोंको स्थानिक स्वराज्यके पूरे अधिकार मिले और साम्पत्तिक स्थितिका सुधार आरम्भ हुआ। सन् १८९३ से आयर्लैण्डके इतिहासके नवीन युगका आरम्भ होना माना जा सकता है। इस युगमें होमरूलका प्रश्न फिरसे उठा और मि० एस्क्किथकी कृपासे होमरूलका बिल पास होकर कानून भी बन गया। पर

युद्धके कारण कुछ दिनोंके लिए उसका पालन रोक रक्खा गया। आयर्लेण्डको स्वराज्य मिलना निश्चय तो हो गया, पर अभी यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि पूर्ण स्वराज्यका सुख उसे कब भोगनेको मिलेगा। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उसका प्रारम्भ हो चला है। यदि इन छः युगोंके नाम रखने हों तो हमारी सम्मतिसे इस प्रकार रक्खे जा सकते हैं।—पहला कान्ति युग, दूसरा कीर्ति युग, तीसरा कलह युग, चौथा दास्य युग, पाँचवाँ उत्साह युग और छठा आकांक्षा युग। इस प्रकारकी युग-परम्परा और भी अनेक राष्ट्रोंके इतिहासमें दिखाई देगी। पुराना ऐश्वर्य्य अपने हाथसे गँवाकर फिरसे नया ऐश्वर्य प्राप्त करना बहुत ही कष्ट-साध्य होता है और उसके प्राप्त होनेतक कभी कभी युगोंके युग बीत जाते हैं।

आयर्लैण्ड और स्काटलैण्डकी तुलना। आयर्लैण्ड जिसप्रकार संयुक्त ब्रिटिश राष्ट्रका एक अंग है, उसी प्रकार स्काटलैण्ड और वेल्स ये दोनों राष्ट्र भी अंग हैं। ये दूसरे दोनों राष्ट्र भी पहले आयर्लण्डकी तरह स्वतंत्र थे, परन्तु कालान्तरमें इंग्लैण्डने उन्हें जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। वेल्स प्रान्त सन् १२८४ में इंग्लैण्डके राज्यमें जोड़ा गया, तभीसे इंग्लैण्टके युवराज 'प्रिन्स आफ वेल्स' अथवा वेलसके राजकुमार कहे जाने लगे। स्काटलैण्ट और इंग्लैंड ये दोनों राष्ट्र सन् १६०१ में एक ही राज्यके अन्तर्गत आये और इसके सौ वर्ष बाद अर्थात् सन् १७०७ में दोनों राष्ट्रोंकी पार्लेमेण्ट सभायें दोनों राष्ट्रोंके लोगोंकी सम्मतिसे एक कर दी गई। एक ओर स्काटलैण्ड और वेल्स तथा दूसरी ओर आयर्लैण्डकी स्थितिमें एक ध्यानमें रखने योग्य अन्तर है। स्काटलैण्ट और इंग्लैण्टके बीचमें एक छोटीसी नदीके सिवा और कोई बाधा नहीं है और वेल्स प्रान्त तो बिल्कुल इंग्लैण्टमें जुड़ा ही हुआ है। यह देश बिल्कुल एक साथ ही लगा हुआ है और बीचकी सरहद

शक्ति होती थी वे लूटमार, युद्ध, और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे और नाम पैदा करते थे। आयरिश लोग शूर अवश्य होते थे, लेकिन उनके शौर्य्यका मुख्य उपयोग सदा अतःकलह प्रदीप्त रखनेमें ही हुआ, राष्ट्रके शत्रुओंको दूर रखने या जीतनेमें उसका विशेष उपयोग नहीं हुआ। इसका कारण यही है कि उन लोगोंमें आपसमें कभी एका नहीं हुआ। आयर्लैंडके लोग अनेक शताब्दियों तक टोलियाँ बाँध कर रहते थे और प्रत्येक टोलीका मुख्य काम दूसरी टोलीके देशमें घुसकर जो कुछ अनाज, गोरू या धन मिले उसे लूट लाना था। लेकिन किसी ऐसे शत्रुको देखकर भी जो सब टोलियोंके लिए समान रूपसे नाशक होता, उनमें आपसके झगडे मिटाकर एका करनेकी सुबुद्धि उत्पन्न नहीं होती थी। आज कल भी अँगरेजी जल तथा स्थलसेनाओंमें आधेसे अधिक प्रसिद्ध योद्धा और वीर आयरिश ही है। तथापि उनका युद्ध-कौशल और शौर्य्य आयरिश लोगोंके 'शत्रुके शत्रु' का नाश करनेमें खर्च होता है। सैनिक अधिकारियोंका मत है कि अँगरेजी सेनामें आयरिश लोगोंके समान शिष्टताका व्यवहार करनेवाले सिपाही दूसरे नहीं है। लेकिन दुर्भाग्यकी बात यह है कि उनकी इस सज्जनतासे उनके राष्ट्रीय कार्य्यको कभी विशेष लाभ नहीं हुआ। स्वदेशमें लडते समय आयरिश सिपाही कभी भलमनसतका बरताव नहीं करता, लेकिन जब वह अँगरेजी अधिकारीकी अधीनतासे काम करने लगता है तब उसके गुणका पूर्ण विकास हो जाता है। आयरिश लोगोंमे कवित्वशक्ति और सहृदयता भी उत्तम श्रेणीकी है और सैनिक ढगके देशभक्ति-प्रेरित सुस्वर कडखे और पँवाडे भी आयरिश लोग ही कहते और बनाते है। पराक्रमके लिए अत्यन्त उपकारी इन कडखों और पँवाडोंसे यद्यपि उनकी स्वातन्त्र्यप्रियताकी अग्नि प्रदीप्त हो सकती है, तथापि एकता न होनेके कारण उस ज्वालासे परतन्त्रताका जूआँ,

नहीं जलाया जा सकता। धर्म्मकी दृष्टिसे देखते हुए उनमें तेजस्विता और तेजी बहुत है। लेकिन कैथोलिक लोगों पर उनके धर्म्मगुरुओं और धर्म्मोपदेशकोंका कुछ विलक्षण प्रकारका प्रभाव होता है। प्रोटेस्टेण्ट पंथको देखते हुए कैथोलिक पथ कुछ कम सुधरा हुआ है। उसमे विधि-नियमोंका झगडा बहुत है और धर्म्मकी सारी इमारत शब्द-प्रमाण पर ही बनी हुई है। इस लिए धर्म्मोपदेशकों आदिके हाथमें शिष्यवर्गकी चोटी पूरी तरहसे है। अर्थात् धार्म्मिक विषयोंमें वे लोग जो आज्ञा अथवा व्यवस्था दें वही उनके शिष्यवर्गको चुपचाप मान लेनी पडेगी। इतना ही नहीं, बल्कि सामाजिक और राजकीय विषयोंमें भी धर्म्मगुरुकी बात ही बहुत कुछ मानी जाती है। कैथोलिक पथ एक विशिष्ट प्रकारके विचारोंकी ओर ही झुका हुआ है और इस पथके लोगोंमे तेजी कुछ अधिक और सहिष्णुता कुछ कम है। अत विधर्म्मी लोगोंके साथ जब उनका सम्बन्ध होता है अथवा व्यवहार करनेका अवसर आता है तब वे नागरिकताकी दृष्टिसे सार्वजनिक हितके कामोंमें उन विदेशियोंसे उतनी सुविधायें नहीं करा सकते जितनी वास्तवमें करानी चाहिएं। वे दैववादी होते हैं। लेकिन उद्योगसे मनुष्यका व्यक्तित्व जितना कसा और कमाया जाता है, उतना केवल दैववादसे और शब्द-प्रमाण मान कर परावलम्बी बननेसे कसा या कमाया नहीं जाता। धार्म्मिक विषयोंमें कैथोलिक लोगोंका मुख्य दोष ऊपर कहा हुआ विधि-नियमोंका बखेडा ही है। सामाजिक विषयोंमें अविवाहित रहनेके सम्बन्धमें धर्म्मकी आज्ञाका जो पक्षपात उनमें दिखाई देता है उसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। शिक्षाके विषयमें अधिकतर लोग श्रद्धा पर ही निर्भर रहते हैं, इस लिए शिक्षित लोगोंमें भी यथेष्ट चतुरता और युक्तिवादप्रियता नहीं दिखाई देती और शिक्षा एकांगी होती है। शिल्प, व्यापार आदिके सम्बन्धमें देखते हुए अविवाहित रहनेकी पद्धति और शब्द-प्रमाण भी

जूऑ आपसके झगडेके कारण ही अपने कन्धे पर रखवाया था। जिस समय यह जूऑ उनके कन्धे पर पडा था उस समय, चाहे आगेके परिणामका ध्यान न होनेके कारण कह लीजिए ओर चाहे यह कह लीजिए कि परकीयोंकी अपेक्षा स्वकीयोंका द्वेष ही आयरिश लोगोंके मनमें अधिक प्रबल था, राष्ट्रमें इतनी एकता उत्पन्न नहीं हुई थी जिसकी सहायतासे विदेशियोंके अधिकारका जूऑ तत्काल ही कन्धेपरसे फेंका जा सकता। इसके उपरान्त आयर्लैंडकी अपेक्षा इग्लैंड दिन पर दिन अधिक बड़ा और प्रबल होता गया, जिससे यह जूऑ और भी भारी होता गया। तथापि इधर शताब्दियोंसे कभी आयरिश लोगोंने एकदिल होकर और दृढ निश्चय करके विदेशियोंका अधिकार हटानेका कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। इग्लैंडमें शान्ति विराजनेके समय और राष्ट्र पर अन्य किसी प्रकारका सकट न रहनेके समय आयरिश लोग एक होकर जो विद्रोह करते, उसके सफल होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। लेकिन–‘ जो अपने शत्रुकी होली वही अपनी दिवाली ’ अर्थात् ‘ अपने शत्रुका सकट ही अपने लिए सबसे अच्छी सन्धि है ’ वाले न्यायसे यदि आयरिश लोग काम करना चाहते, तो अँगरेजी अमलदारीका जूऑ अपनी गरदनसे हटा देनेके लिए उन्हें बहुतसे अवसर मिल सकते थे। इन सातसौ वर्षोंमें इग्लैण्डका सारा समय सुखसे ही नहीं बीता। इस बीचमें इग्लैण्डमें ही दो तीन बार लडाई हुई, राज्यासनके लिए झगडे हुए, राजवश उलट–पुलट गये और राज्यक्रान्तियाँ हुई। इग्लैण्डके ये सब अवसर बहुत ही यातना और चिन्तामें बीते थे। यदि आयरिश लोग चाहते तो इन अवसरोंका स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके काममें अच्छा उपयोग कर सकते थे। लेकिन यह बात बहुत ही स्पष्ट है कि उनसे जिस प्रकार लाभ उठाना चाहिए था उस प्रकार उन लोगोंने लाभ नहीं उठाया।

राजा सातवें हेनरीके गद्दी पर बैठनेसे पहले कई वर्षोंतक इग्लैण्डमें 'गुलाबी झण्डेका युद्ध' नामका प्रसिद्ध युद्ध होता रहा। उस समय देशके बहुतसे लडाके जवान कट गये थे और इग्लैंड राष्ट्र बहुत ही नि सत्त्व और निर्वीर हो गया था। उस समय यदि आयरिश लोगोंने अपना हाथ चलाया होता तो चल गया होता। लेकिन उस समय आयर्लैण्डके लोगोंमें आपसमें ही झगडा हो रहा था। प्राय नब्बे आयरिश सरदार अपने अपने सात आठ सौ अनुयायियोंके साथ एक दूसरेसे लड रहे थे। इतिहासकारोंने आयर्लैण्डकी उस समयकी स्थितिका जो वर्णन किया है उससे जान पडता है कि उन दिनों जहाँ किसी युवक योद्धाको यह मालूम हो जाता कि मेरा तलवारका हाथ अच्छा चलता है तहाँ वह अपने साथ सौ पचास आदमी ले लेता और छोटे मोटे जगल, पहाडी पर या मैदान-में छोटीसी गढ़ी बाँधकर जितनी जमीन मिलती उतनी अपने अधिकार-में कर लेता और एक छोटासा सूबा खडा करके उसका राजा बन बैठता। भला ऐसे समयमे राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय कैसे हो सकता था? इसके उपरान्त एक और अवसर उस समय था, जब कि राजा प्रथम चार्लसके राजत्वकालमें इग्लैंडमें राज्यक्रान्ति हुई थी। राजा और पार्लमेंटके नेताओंमें अनबन हो गई थी और युद्ध आरम्भ हो गया था। उस समय आयर्लण्डके लोगोंने कुछ उपद्रव अवश्य किया था, परन्तु यह उपद्रव मुख्यत स्वदेशकी स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिए नहीं हुआ था। चाहे पहले पहल इस प्रकारकी कल्पना उनके दिमागमें आई हो, पर आगे चलकर यह कल्पना नहीं ठहरी।

ओनील आदि कुछ आयरिश सरदारोंने यह सोचा था कि यदि राजा चार्ल्स रोमन कैथालिक पथ स्वीकार करेगा तो उसे आयर्लैण्डका राजा बनावेंगे और उसके लिए लडेंगे। तदनुसार राजाकी ओरसे विद्रोहका झण्डा खडा किया गया और कैथोलिक लोगोंने बसे हुए

लाभ कर सकता था। लेकिन पहले पहल स्वतत्रता नष्ट होनेके समय आयरिश लोगोंको जो उत्तम प्रकारकी मरदानगी दिखलानी चाहिए थी वह तो उन्होंने दिखलाई नहीं, परन्तु उसके नष्ट होने पर उनमें जो एक गौण प्रकारकी मरदानगी थी, उसकी सहायतासे उन्होंने पॉच सौ वर्षों तक मन.क्षोभ और असन्तोष बना रक्खा और इस प्रकार राष्ट्रका मन और शरीर पीस डाला। वेल्श और स्कॉच लोगोंने स्वतत्रता नष्ट होने पर जो थोडासा वल खाया उसके कारण उन्हें शीघ ही ॲगरेजोंके समान अधिकार मिल गये और कुछ समयमें वे उनके साथ एकजीव हो गये। लेकिन आयरिश लोगोंने वह बात नहीं की। यों तो उनके रोमन कैथोलिक होनेके कारण ॲगरेजोंके साथ उनके एकजीव होनेके मार्गमें आधिक अड़चन थी ही। तथापि आपसमें पूर्ण एक्ता करके अनुकूल परिस्थितिमें भी मिर उठानेकी तैयारी न करके उन्होंने केवल इधर उधर छोटे मोटे विद्रोह किये, और जिस समय विद्रोह भी नहीं हो सकते थे उस समय षड्यत्र, लूट-मार और गुप्त वध आदि करके देशकी अस्वस्थता और असन्तोष तथा राजकर्म्मचारियोंका क्रोध सदा बनाये रक्खा। इस कारण उन्हें स्वतन्त्रता तो मिली नहीं, उलटे उनकी दुरवस्थामें दु सकी ही वृद्धि हुई।

आयरिश लोग अपने इन्हीं गुणों और दोषों तथा पूर्वोतिहास आदि बातोंके कारण राजनीति-प्रिय बने हुए है। उन्हें राजनीति जितनी प्रिय है उतनी और कोई चीज प्रिय नहीं है। शराबीके लिए जेसे शराब और जुआरीके लिए जैसे जूआ है, आयरिश लोगोंके लिए वैसे ही राजनीति है। उसके अभावमें उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं, और ऐसे प्रसंग वहुधा आया करते हैं। क्योंकि आयरिश राजनीति केवल विरोध करना ही है। लेकिन इस विरोधकी भी स्वभावत कुछ मर्य्यादा है। विरोध अपने देशकी पार्लमेंटमें होना चाहिए। और फिर पार्लमेंटकी

अवस्था देखते हुए जितना विरोध पार्नेलके समयमें हो सकता था उतना अब नहीं हो सकता था। क्योंकि पार्नेल और उनके सहकारियोंने पार्लमेंटके नियमोंसे लाभ उठाकर जो धमा-चौकडी मचाई थी, उससे सचेत होकर पार्लमेंटने अपने वादविवादके नियम बहुत कुछ बदल दिये थे। इन नये नियमोंके कारण कोई सभासद किसी विषय पर बहुत अधिक विवाद नहीं बढा सकता। यदि कोई बहुत अधिक विवाद बढाने लगे तो पार्लमेंटका अध्यक्ष सभाकी सम्मति लेकर अथवा अपने अधिकारसे ही उसे रोक सकता है और यदि कोई सभासद इससे भी आगे बढ जाय तो वह सिपाहियोंके द्वारा पार्लमेंटसे बाहर निकलवाया जा सकता है। बहुत बोलकर लोगोंको दुःखी कर देना ही पार्लमेंटका विरोध है, और उसीके रोकनेका यह उपाय है। लेकिन यह उपाय पार्लमेंटके कामोंकी अडचन रोकनेके लिए है। स्वयं अपने पक्षमें मनमानी अडचनें टालनेका सबको अधिकार है और उसे कोई रोक नहीं सकता। इसी लिए सन् १९१४-१५ में जब आयर्लेण्डका होमरूल बिल पार्लमेंटमें पेश था तब आयर्लेण्डके अलस्टर प्रान्तके यूनियनिस्ट दलने अपना राजनीतिक प्रयत्न नहीं छोडा और होमरूलका घोर विरोध किया था। बल्कि इन्हीं लोगोंकी इस राजनीति-प्रियताके कारण होमरूल बिलके पास होनेमें इतना विलम्ब हुआ। विरोधका दूसरा मार्ग है बहिष्कार, अशस्त्रप्रतीकार अथवा उपद्रव आदि। लेकिन एक तो इस प्रकारकी बातोंके लिए एक विशिष्ट समयकी आवश्यकता होती है और उसी विशिष्ट समयमें ये बात हो सकती हैं। सालके ३६५ दिनोंमें वे बराबर हो नहीं सकतीं। और दूसरे इस प्रकारकी घोर और अनुचित बातें सरकारी अधिकारियोंके अनुचित नियमोंसे दुःखी और क्रुद्ध होने पर होती हैं, लेकिन ऐसे नियम प्रतिदिन नहीं बनते। अपने बाकीके सब कामोंको तिलांजलि देकर स्वार्थत्याग करके सरकारके कृत्योंकी केवल

लाभ कर सकता था। लेकिन पहले पहल स्वतन्त्रता नष्ट होनेके समय आयरिश लोगोंको जो उत्तम प्रकारकी मरदानगी दिखलानी चाहिए थी वह तो उन्होंने दिखलाई नहीं, परन्तु उसके नष्ट होने पर उनमें जो एक गौण प्रकारकी मरदानगी थी, उसकी सहायतासे उन्होंने पाँच सौ वर्षों तक मनःक्षोभ और असन्तोष बना रक्खा और इस प्रकार राष्ट्रका मन और शरीर पीस डाला। वेल्श और स्कॉच लोगोंने स्वतन्त्रता नष्ट होने पर जो थोडासा बल साया उसके कारण उन्हें शीघ्र ही अँगरेजोंके समान अधिकार मिल गये और कुछ समयमें वे उनके साथ एकजीव हो गये। लेकिन आयरिश लोगोंने वह बात नहीं की। यों तो उनके रोमन कैथोलिक होनेके कारण अँगरेजोंके साथ उनके एकजीव होनेके मार्गमें अधिक अडचन थी ही। तथापि आपसमें पूर्ण एकता करके अनुकूल परिस्थितिमें भी सिर उठानेकी तैयारी न करके उन्होंने केवल इधर उधर छोटे मोटे विद्रोह किये, और जिस समय विद्रोह भी नहीं हो सकते थे उस समय षड्यन्त्र, लूट-मार और गुप्त वध आदि करके देशकी अस्वस्थता और असन्तोष तथा राजकर्म्मचारियोंका क्रोध सदा बनाये रक्खा। इस कारण उन्हें स्वतन्त्रता तो मिली नहीं, उलटे उनकी दुरवस्थामें दुःखकी ही वृद्धि हुई।

आयरिश लोग अपने इन्हीं गुणों और दोषों तथा पूर्वेतिहास आदि बातोंके कारण राजनीति-प्रिय बने हुए है। उन्हें राजनीति जितनी प्रिय है उतनी और कोई चीज प्रिय नहीं है। शराबीके लिए जैसे शराब और जुआरीके लिए जैसे जूआ है, आयरिश लोगोंके लिए वैसे ही राजनीति है। उसके अभावमें उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं, और ऐसे प्रसग बहुधा आया करते है। क्योंकि आयरिश राजनीति केवल विरोध करना ही है। लेकिन इस विरोधकी भी स्वभावतः कुछ मर्य्यादा है। विरोध अपने देशकी पार्लमेंटमें होना चाहिए। और फिर पार्लमेंटकी

अवस्था देखते हुए जितना विरोध पार्नेलके समयमें हो सकता था उतना अब नहीं हो सकता था। क्योंकि पार्नेल और उनके सहकारियोंने पार्लमेंटके नियमोंसे लाभ उठाकर जो धमा-चोकडी मचाई थी, उससे सचेत होकर पार्लमेंटने अपने वादविवादके नियम बहुत कुछ बदल दिये थे। इन नये नियमोंके कारण कोई सभासद किसी विषय पर बहुत अधिक विवाद नहीं बढा सकता। यदि कोई बहुत अधिक विवाद बढाने लगे तो पार्लमेंटका अध्यक्ष सभाकी सम्मति लेकर अथवा अपने अधिकारसे ही उसे रोक सकता है और यदि कोई सभासद इससे भी आगे बढ जाय तो वह सिपाहियोंके द्वारा पार्लमेंटसे बाहर निकलवाया जा सकता है। बहुत बोलकर लोगोंको दुःखी कर देना ही पार्लमेंटका विरोध है, और उसीके रोकनेका यह उपाय है। लेकिन यह उपाय पार्लमेंटके कामोंकी अडचन रोकनेके लिए है। स्वयं अपने पक्षमें मनमानी अडचनें डालनेका सबको अधिकार है और उसे कोई रोक नहीं सकता। इसी लिए सन् १९१४-१५ में जब आयर्लेण्डका होमरूल बिल पार्लमेंटमें पेश था तब आयर्लेण्टके अलस्टर प्रान्तके यूनियनिस्ट दलने अपना राजनीतिक प्रयत्न नहीं छोडा और होमरूलका घोर विरोध किया था। बल्कि इन्हीं लोगोंकी इस राजनीति-प्रियताके कारण होमरूल बिलके पास होनेमें इतना विलम्ब हुआ। विरोधका दूसरा मार्ग है बहिष्कार, अशस्त्रप्रतीकार अथवा उपद्रव आदि। लेकिन एक तो इस प्रकारकी बातोंके लिए एक विशिष्ट समयकी आवश्यकता होती है और उसी विशिष्ट समयमें ये बातें हो सकती हैं। सालके ३६५ दिनोंमें वे बराबर हो नहीं सकतीं। और दूसरे इस प्रकारकी घोर और अनुचित बातें सरकारी अधिकारियोंके अनुचित नियमोंसे दुःखी और क्रुद्ध होने पर होती हैं, लेकिन ऐसे नियम प्रतिदिन नहीं बनते। अपने बाकीके सब कामोंको तिलाजलि देकर स्वार्थत्याग करके सरकारके कृत्योंकी केवल

वही है। आयलैंडको चाहिए तो था होमरूल, पर उसे न देकर इग्लैड उससे पूछता था कि तुम्हें कहीं म्युनिसिपैलटी चाहिए ? कहीं अधिकार चाहिए ? और आयलैंड 'नहीं' 'नहीं' करता और चिल्लाता था। राम राम करके आयलैंडको होमरूल मिलना निश्चय हुआ और यह चिल्लाहट कुछ कम हुई।

असन्तोषका मर्म्म । आयरिश लोगोंके पॉच सौ वर्ष दासत्वमें और दो ढाई सौ वर्ष आन्दोलनमें बीते । तथापि गई हुई राष्ट्रीयता फिरसे प्राप्त करनेकी उनकी उच्चाकाक्षा नष्ट नहीं हुई थी । यह उच्चाकाक्षा उनके रक्तमें मिली हुई थी। क्योंकि यह उच्चाकाक्षा केवल आयलैंटमें रहनेवाले आयरिश लोगोंमें ही नहीं थी, बल्कि आयरिश वशके उन लोगोंमें भी राष्ट्रीयताकी कल्पना थी जो सैकडों बरसोंसे स्वदेश छोड कर विदेशमें जा बसे थे और जिनका स्वदेशके साथ विशेष सम्बन्ध नहीं था। हिन्दू लोग जिस प्रकार कल्कि अवतारका होना मानते हैं उसी प्रकार आयरिश लोग भी—चाहे वे ससारके किसी भागमें रहते हों—यह मानते थे कि हमारे लिए कभी न कभी स्वतत्रताका दिन अवश्य आवेगा और बहुधा वह दिन अब दूर नहीं है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीमें प्रोटेस्टेंट शासनसे दु खी और त्रस्त लाखों आदमी इग्लैंडको गालियां देते हुए बडे कष्टसे और विवश होकर विदेश चले गये थे। इस प्रकार स्वदेश छोडकर आयलैंडसे जितने लोग आजतक विदेश गये उतने और किसी देशसे किसी समय और किसी कारणसे नहीं गये थे। पर विदेश जाने पर वहॉ उन्हें स्वदेशकी अपेक्षा अधिक सुख मिला। वे स्थायीरूपसे वहाँ बस गये—उन्होंने घरबार बनाया, कामधन्धा शुरू किया और धन कमाया। भला इससे अधिक और कौनसा सुख उन्हें स्वदेशमें मिलता ? देश छोड़कर आयरिश लोग प्रधानत अमेरिका और फ्रान्स गये थे और वहाँ उन लोगोंने ऐसे ऐसे राष्ट्रीय काम

किये, जिनके कारण बहुत दिनों तक उनका नाम बना रहा।, अर्थात् इस नई भूमि पर उनका प्रेम हो गया। तो भी दत्तक लड़केको नये घरमें भोगनेके लिए चाहे कितनी ही सम्पत्ति और सुख क्यों न मिले पर उसकी प्रेमपूर्ण दृष्टि अपने पहले घर पर रहती ही है। और विशेषतः जब पहले घरमें उसके माँ-बाप और भाई बद विपत्तिमें अपने दिन बिताते है तब उसके मनमें स्वभावत उनकी सहायता करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। विदेशमें रहनेवाले आयरिश लोगोंकी भी यही दशा हुई। अपने पूर्वजोंकी जन्मभूमिका ध्यान उन्हें सदा बना रहा। वहाँसे वे अपने देशभाईयोंकी बराबर खबर लेते रहे, सब तरहके राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें बराबर उनकी सहायता करते रहे, होमरूलके आन्दोलनमें अपना प्रत्यक्ष हिताहित समझकर बराबर उसकी चर्चा कान लगाकर सुनते रहे और उनमें इतना उत्साह तथा विश्वास बना रहा कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, और परसों नहीं तो सौ बरस बाद, यदि आयलैंट अनायास राष्ट्र बन गया तो ठीक ही है और नहीं तो यदि आयर्लैंडके लिए लड़ाई करनी पड़ी तो हमारे नाती पोते ही आयरिश लोगोंकी सहायताके लिए दौड़ेंगे। सन् १७९८ के विद्रोहमें फ्रान्सके आयरिश लोग उल्फटोनकी सहायताके लिए आये थे और यह पहले ही कहा जा चुका है कि उन्नीसवीं शताब्दीमें फीनियन लोगोंने राज्यक्रान्तिके लिए जो उपक्रम किया था उसका सारा सामान अमेरिकाके आयरिश लोगोंने ही किया था। अब तक होमरूलके नेता 'जान रेडमण्ड प्राय' प्रतिवर्ष अमेरिकाका एक दौरा किया करते थे और आते समय राष्ट्रीय पक्षके फण्डके लिए 'अमेरिकन आयरिश' लोगोंके स्वेच्छापूर्वक दिये हुए चन्देकी हजारों पाउण्डकी रकम जेबमे भर लाते थे।

हानि ही हुई है *। आजसे सैकडों वर्ष पूर्व आयर्लैंडमें कैथोलिक लोगोंपर जो धार्म्मिक अत्याचार हुए थे यद्यपि उन अत्याचारोंके कर्त्ताओंका कब्रोंमें आज नामो-निशान भी नही है, तथापि उनका स्मरण और क्लेश आजतक आयरिश लोगोंके मनमें वना हुआ है। आयरिश व्यापारियोंके हाथ-पैर तोडनेके लिए सत्रहवीं शताब्दीमे जो कायदे बनाये गये थे उसके वनानेवाले कभीके जमीनमें गाडे जा चुके। यही नहीं बल्कि वे कायदे भी आज रद्द हो गये और इग्लैंड अनियन्त्रित व्यापारके तत्त्वका समर्थन और प्रसार कर रहा है। तो भी इस अनियन्त्रित व्यापारसे लाभ किसका होता है? जिसके हाथ-पेर पहलेसे साबुत है उसका। जनमते ही किसी शिशुको हाथ पेर बॉधकर अन्धेरेमे रख देना और एक दिन उसे बाहर निकालकर कहना कि-" तुम मैदानमें मेरे साथ शर्त्त लगाकर दौडो, और यदि तुम न दौडे तो उसमें मेरा क्या दोष। " और अब इग्लैण्डका आयर्लैंडसे यह कहना कि-" अब करो और मेरे बराबर सम्पन्न हो जाओ। यदि तुम ऐसा न करोगे तो दोष तुम्हारा ही होगा। " दोनों बराबर ही है। ठीक वही बात पार्लमेंटके सम्बन्धमें भी थी। आयर्लैंडकी स्वतत्र पार्लमेंट टूटनेके उपरान्त ॲगरेजी पार्लमेंटमें अबतक प्राय सौ ही सभासद आयर्लैंडकी ओरसे चुने हुए होते है और इन एकसोमे भी फूट रहती है। राष्ट्रीय पक्षके केवल पचास साठ सभासद होते थे जो यह समझ कर चुपचाप एक कोनेमें बैठे रहते थे कि बहुमतके सामने हमारी तो कुछ चलेगी ही नहीं। तब भला आयरिश लोग अपनी पुरानी स्वतत्र पार्लमेंटका वैभव कैसे भूल सकते थे? पर अतमें बहुतसी कठिनाइयोंके उपरान्त ईश्वर

* मूल मराठी पुस्तकमें इग्लैण्ड और आयर्लैंडके वैरकी अच्छी विवेचनाकी गई है। पर अब उस वैरका बहुतसे अशोंमे नाश हो गया है, अत इस अनुवादमे इस सम्बन्धकी बातें बहुत ही सक्षेपमे ली गई है।—अनुवादक।

आयरिश लोगोंके अनुकूल हुआ और उन्हें स्वतत्र पार्लमेंट तथा स्वराज्य मिलना निश्चित हुआ।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि जबसे इग्लैंडने आयर्लैंड पर विजय प्राप्त की तबसे वहाँ बराबर यही होता रहा कि जो काम करनेके लिए आयरिश लोग कहते थे वह नहीं किया जाता था, जो कुछ वे माँगते थे वह सीधी तरहसे नहीं दिया जाता था, और जिस कामके लिए वे मना करते थे वह जबरदस्ती उन पर लादा जाता था। यह सब आयर्लैण्डमें जाकर बसे हुए मुट्ठीभर प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके लिए होता था। आयरिश लोग धार्म्मिक स्वतत्रता और स्वतत्र पार्लेमेण्ट ही माँगते थे, पर ये दोनों चीजें उन्हें नहीं दी गई और उनके धनसे विधर्म्मी मण्डल और विधर्म्मी शिक्षा-पद्धति चलाई गई और सैकडों वर्ष तक जमीदारीकी वह पद्धति वहाँ रही जो क्षण क्षण पर उन्हें कष्ट पहुँचाती थी। आयर्लैण्डमें प्रवेश करने पर पहले सौ दो सौ वर्षों तक अँगरेजोंका जो व्यवहार था उसके लिए उन्हें अधिक दोष नहीं दिया जा सकता। क्योंकि आयरिश लोग भी उनके साथ बदमाशी करते थे। ये पहले सौ दो सौ बरस आयर्लैण्टमे अँगरेजोंकी अमलदारी होनेमें बीते और हर एक देशमे अमलदारी होनेका समय दोनो ही पक्षोंके लिए त्रासदायक होता है। कोई समझदार यह नहीं कह सकता कि अँगरेजोंको हाथमें आया हुआ देश छोड देना चाहिए था, और जब उसे रखना था तब उस पर अपना अधिकार जमाना भी आवश्यक था। अधिकार जमानेके लिए तल्वार निकालनी और रखनी पटती है, पर अँगरेजोंने सदा तलवार निकाली ही रक्खी। आयरिश लोग अपनी स्वतत्रता खोनेके लिए तैयार नहीं थे, इस लिए उन्होंने भी अँगरेजोंको कष्ट पहुँचानेमें कमी नहीं की। लेकिन सन् १६४१ में जब इस झगटेका सदाके लिए फैसला हो गया उस समय अँगरेजोंको यह भय करनेका

कोई कारण न रह गया कि अब आयर्लेण्ड हमारे हाथसे निकल जायगा। अब यह बात अँगरेजोंको भी खुले दिलसे स्वीकार करनी पड़ेगी कि इसके उपरान्त अँगरेजोंको जितनी सहृदयताका व्यवहार करना चाहिए था उतनी सहृदयताका व्यवहार उन्होंने नहीं किया, इतना ही नहीं बल्कि अँगरेजोंने उस समय ऐसे कानून बनाकर आयरिश लोगोंकी राष्ट्रीयता नष्ट करनेका प्रयत्न किया जो सभ्यताके नाम पर कालिमा लगानेवाले थे। और यह बात बहुत ही बुरी हुई कि अट्ठारहवीं शताब्दीमें इग्लैण्डसरीखे राष्ट्रकी अधीनतामें रहकर आयरिश लोग दरिद्र, दीन और हीन हो गये और उनके करीब करीब कगाल होनेकी नौबत आ गई।

सन् १७७८ से रुख कुछ बदल अवश्य गया था, परन्तु इसके उपरान्त भी अँगरेजोंने जो कुछ दिया वह बड़े ही कष्टसे दिया। उत्साहपूर्वक और स्वय बहुत कम दिया। अनेक अवसरों पर यही हुआ कि जब आन्दोलन बहुत बढ गया और हाथाबाँहीकी नौबत आई तब जाकर अँगरेज राजनीतिज्ञोंने आयरिश लोगोंकी प्रार्थना स्वीकृत की। पहले कैथोलिक लोग जमीनके मालिक होकर उसे काममें नहीं ला सकते थे। सन् १७७८ से उन्हें यह अधिकार मिला, परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इग्लैण्डका वह वर्ष अमेरिकाकी गड़बड़की चिन्तामें बीता था। साराटोगामें अँगरेजी सेनाके परास्त होनेके उपरान्त इधर आयर्लण्डमें कैथोलिक लोगोंके कायदेके बन्धन ढीले होने लगे। सन् १७८२ में ब्रिटिश पार्लमेण्टने यह स्वीकृत किया था कि आयरिश पार्लमेण्ट स्वतत्र है, लेकिन उससे पहले आयरिश राष्ट्रीय स्वयसेवकोंकी सेना कवायद सीखकर तैयार हो चुकी थी और उसने बाकायदा तौर पर ही क्यों न हो, भिन्न भिन्न प्रकारोंसे अपनी कारगुजारी और ओजस्विता दिखलाई थी। सन् १७९३ में कैथोलिक लोगोंको म्युनिसिपैलटियोंके

चुनावमें सम्मति देनेका अधिकार मिला। लेकिन उससे पहले जॉन कीओध और उल्फटोन दोनोंने आन्दोलन करके और इग्लैण्डमें डेपुटेशन ले जाकर देश हिला डाला था और अलस्टर प्रान्तके स्वय प्रोटेस्टेण्ट लोगोंने भी ऑखें तेरेरी थीं। १८२९ मे कैथोलिक लोगोंको पूरी स्वतत्रता आवश्य मिल गई, लेकिन उससे पहले आयर्लेण्डकी स्थिति कैसी थी, उसका अच्छी तरह पता उस पत्रसे लगता है, जो उस समयके प्रधान मन्त्री सर रावर्ट पीलने लिमरिकके धर्म्माध्यक्षको एक अवसर पर लिखा था। उस पत्रमें लिखा था–" इस समय इग्लैण्डका किसी दूसरे राष्ट्रके साथ कोई झगडा नहीं है। यह बात दूसरी है कि इस कारण आयर्लेण्डमें शान्ति रखनेके लिए इंग्लैण्टकी सारी सेनामेंसे पॉच षष्ठाश सेना आज छ॰ महीनेसे हम वहॉ रक्खे हुए है। लेकिन प्रत्यक्ष विद्रोहकी अपेक्षा यह स्थिति कहॉ तक अच्छी कही जा सकती है? मै तो इसे और भी निकृष्ट कहूँगा। और जब शान्तिके समय यह दशा है तब युद्ध आरम्भ होने पर क्या होगा, इसकी कल्पना कृपा कर आप ही कर लें। इग्लैण्डके लोगोंके खर्चसे पलनेवाली सेनाका आधा भाग यदि आयर्लैंटमें ही रखना पडा तो यह रखना उन्हे कहॉ तक पसन्द होगा? सन् १७८२ और १७९३ मे जो दशा हुई थी वह हम लोग कैसे भूल सकते है? आप कहेंगे कि–' उस समय इग्लैण्डने आयरिश लोगोंकी प्रार्थनायें स्वीकृत करलीं, यही बडी भूल की।' परन्तु आपको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उस समय वे प्रार्थनायें प्रसन्नतासे नहीं स्वीकृत की गई थीं। उनके स्वीकृत न करनेके कारण राष्ट्र पर जो पहलेसे भी अधिक भयप्रद सकट आनेवाले थे उन्हीं सकटोंसे बचनेके लिए उनकी बातें मानी गई थीं। "

लार्ड मेलबोर्नके शासन-कालमे आयर्लण्डको थामस ड्रमण्ड सरीखा प्रधान सेक्रेटरी मिला था और उसके अच्छे दिन आये थे। उस थोडे-

से समयमें आयरिश लोग यह समझने लगे थे कि केवल न्यायबुद्धिसे ऑगरेज राजनीतिज्ञ प्रजाको सुख दे रहे है। उस समय ओकानेलने भी राजनीतिज्ञता दिखलाकर आन्दोलन कम कर दिया था और ऐसी नीतिका अवलम्बन किया था, जिससे अधिकारियोंको चिन्ता न रह जाय, और वास्तवमें जो आधिकार आयरिश कैथोलिक लोगोंको लिमरिककी सन्धिके समय मिलने चाहिए थे वे उस समय प्राय: १२५ वर्षोंके उपरान्त मिले। लार्ड मेलबोर्नको इग्लैण्डके लोगोंने बहुत दु:खी कर दिया और वे अपनी इच्छानुसार आयरिश लोगोंका कल्याण न कर सके। यदि लार्ड मेलबोर्न और थामस ड्रमण्डके इच्छानुसार सब काम हो जाते और सन् १८३५ से १८४१ तक छ वर्ष ओकानेलने स्वय थोड़ी बहुत, अप्रियता सहकर भी आन्दोलनको जो ठीक दिशामें रक्खा था और अधिकारियोंको लोकमतकी जो उचित सहायता दी थी उसका यदि उचित आदर होता तो वे अनिष्ट न होते जो पीछे सन् १८४२ से १८४८ तक हुए और अधिकारी तथा प्रजा दोनोंको वह कष्ट न भोगना पटता बल्कि फीनियन लोगोंके आन्दोलनमें भी जोर न आता। लार्ड मेलबोर्नको जो कष्ट भोगना पडा उसका फल यह हुआ कि आगे सन् १८६८ तक किसी मत्रीने आयर्लैण्डका प्रश्न उठाकर यह कहनेका साहस नहीं किया कि-' हमें चाहे कष्ट ही पहुँचे तो कोई चिन्ता नहीं, परन्तु जो बात उचित है वह हम करेगे ही।' न्यायकी दृष्टिसे आयर्लैण्डको सुखी करना चाहिए था, लेकिन आयर्लैण्डका प्रश्न सामने आने पर न्यायप्रिय मन्त्री भी यह समझ कर जहाँके तहाँ रह जाते थे, कि हम अधिकारारूढ रहकर तो कुछ कर भी सकेंगे, पर जब हम अधिकार-भ्रष्ट हो जायँगे तब क्या करेंगे? पाँच सौ वर्षमें केवल दो ही ऑगरेज राजनीतिज्ञ ऐसे हुए, जिन्होंने इस बातका आग्रह किया कि आयरिश लोगोंके कष्ट अवश्य दूर होने चाहिएँ। एक तो जॉन ब्राइट और दूसरे ग्लैडस्टन,

इनमेंसे ब्राइटके लिए उत्तरदायित्वकी रीतिसे राज्यसूत्र चलानेके प्रसग थोडे ही आते थे, क्योंकि वे अधिकारका सहारा नहीं लेते थे, बल्कि जो कुछ उन्हें ठीक और सरल जान पडता था वही वे कहते थे। हॉ ग्लेडस्टन साहब अपनी इच्छानुसार काम करके आयर्लैण्डका थोडा बहुत हित कर सके। प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममण्डलका खर्च कम करने और जमीनके सम्बन्धमे कानून बनाकर आयरिश प्रजाको जमींदारोंके अत्याचारसे अशत मुक्त करनेका यश उन्हींको मिला। लेकिन होमरूलके विषयमे उन्हें लार्ड मेलबोर्नसे भी अधिक कष्ट भोगना पडा और अन्तमें होमरूल बिलको पास होते देखनेसे पहले ही उन्हे यह ससार छोड देना पडा। इस सम्बन्धमे सबमे अधिक उल्लेखयोग्य तीसरा नाम मि० एस्क्विथका भी है, जिन्होंने अनेक युक्तियॉ लडाकर और बहुत कुछ लड-झगड कर अतमें आयरिश होमरूल बिल पास ही करा दिया और जिन्हें इस कामके लिए ॲगरेजोंके हाथों विशेष कष्ट भी न सहना पडा। तो भी इसमे सन्देह नहीं कि आयरिश लोगोंको अपने अधिकार प्राप्त करनेमें बहुतसे अशोमे अपने आन्दोलन पर ही निर्भर रहना पडा।

आयरिश आन्दोलनकी मीमासा। कहा जा सकता है कि आयरिश लोगोंका आन्दोलन सत्रहवीं शताब्दीसे आरम्भ हुआ। क्योंकि प्राय उन्हीं दिनों उनके मनमें यह आकाक्षा उत्पन्न हुई कि यद्यपि हम लोग जीते जा चुके हैं, तथापि हमें अपनी स्थिति सुधारकर राष्ट्रीय स्वतत्रता प्राप्त करना है। उस समयसे पहले उनके इतिहासमें कोई ऐसा विशेष उद्योग नहीं दिखाई देता जिसके लिए आधुनिक सभ्यताके ‘ आन्दोलन ’ शब्दका प्रयोग किया जा सके। इससे पहले उनके इतिहासमें जो उद्योग हुए वे प्राय व्यक्तिगत उच्चाकाक्षाके कारण हुए थे और उन्हे विशेष सार्वजनिकस्वरूप नहीं प्राप्त हुआ था। चार आदमी—आदमी ही क्यों बल्कि जानवर भी—जहाँ इकट्ठे

रहते है वहाँ उनमें जीवनकलह आरम्भ होता है । स्वार्थबुद्धिकी प्रेरणासे एक व्यक्ति दूसरों पर अपना अधिकार चलानेका उपक्रम करता है और इस कारण झगडा आरम्भ होता है । लेकिन केवल व्यक्तिगत स्वार्थ-बुद्धिके कारण होनेवाले उद्योगोंसे मनोरजक इतिहास नहीं बन सकता । इस प्रकारके इतिहासके तैयार होनेके लिए स्वार्थ-बुद्धिको उदात्त और सार्वजनिकस्वरूप धारण करना पडता है । यदि यह बात भी मान ली जाय कि सब प्रकारकी प्रवृत्तियोंकी उत्पत्ति अहकारसे ही होती है, तो भी यह स्पष्टरूपसे मानना ही पडेगा कि अहकारका विषय जितना बडा होगा, उसका काम भी उतना ही अधिक होगा और उसका काम जितना अधिक होगा उसका परिणाम भी उतना ही अधिक होगा । जिसके अहकारकी दौड अपने और अपने बाल बच्चोंके छोटेसे ससार तक ही है उसके हाथसे कहाँ तक बड़ा काम हो सकेगा ? लेकिन इसी अहकारके विषयका विस्तार पहले व्यक्ति, तब कुटुम्ब, तब गाँव, तब जाति, तब प्रान्त, तब देश, और तब समस्त ससार तक बढाया जा सकता है । मनुष्यकी बुद्धि और कृतिमें जितने प्रमाणमें यह विस्तार उतरेगा, उसके हाथसे उतने ही प्रमाणमें बडा काम भी होगा । स्वराज्य और परराज्य दोनोंमें ही अहकारका इस प्रकार विस्तार हो सकता है, लेकिन इन दोनों परिस्थितियोंमें मनुष्यमे दो भिन्न भिन्न प्रकारके गुणोंकी आवश्यकता होती है । राष्ट्रके सदा स्वतत्र रहने पर अहकारका विस्तार बहुत अधिक होनेके कारण इग्लैण्ट आदिमें जिस प्रकार लोगोंके बहुत बडे बडे उद्योग करनेके उदाहरण मिलते हैं उसी प्रकार आयलैंटके इतिहासमें ऐसे लोगोंके उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें देशकी स्वतत्रता नष्ट हो जाने पर इतना मानसिक दुःख हुआ था जितना पहले कभी नही हुआ था और जिनके मन पर स्वार्थकी अपेक्षा सार्वजनिक हितका अधिक अधिकार हुआ था । सत्र-

हवीं शताब्दीके आयरिश इतिहासमें अत्याचारके उदाहरण ही अधिक मिलते हे, लेकिन उनमें राजकीय प्रगतिकी दृष्टिसे कोई विशेष मनोरंजक बात नहीं दिखलाई देती। सत्रहवीं शताब्दीके उपरान्त आयरिश लोगोंके मनमे राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय होनेके कारण उनके उद्योगको यथार्थ अर्थमें आन्दोलन कह सकते है और इसी लिए उनके बादका इतिहास मनोरंजक हो गया हे।

आधुनिक राजकीय तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे आन्दोलन दो प्रकारका होता है। एकको बाकायदा या नियमानुमोदित और दूसरेको बेकायदा या नियमविरुद्ध कहते है। वास्तवमें इन दोनों प्रकारके आन्दोलनोंमें साध्य तो एक ही होता हे, परन्तु साधनभेदके कारण उनका स्वरूप और साथ ही नाम भी बदल जाता है। प्रत्येक आन्दोलनके साध्य-साधनका एक मार्ग होता है। इस साधनासे अन्तमें साध्य चाहे सधे और चाहे न सधे, लेकिन उसे साधनेके लिए व्यक्ति अथवा राष्ट्र उस साधनाका अपनी ओरसे उपयोग करते है। साधनाकी योजनामें साध्य और परिस्थितिके सम्बन्धसे और उसी प्रकार साधकके स्वभावके कारण अन्तर पडता है। बल्कि इन बातोंमें इस विचित्रताका सबसे मुख्य कारण स्वभाव ही कहा जा सकता हे। अपनी तात्त्विक परम्पराके अनुसार हम लोग मुख्य सृष्टि-गुण तीन प्रकारके मानते है और वे तीन प्रकार सत्त्व, रज और तम है। जिस गुणका अवलेप मनुष्यके मन पर होता है उसी गुणके अनुसार वह साध्य और साधनाके औचित्यका विचार करता है। निजके और सार्वजनिक कार्य्योंमे यद्यपि बहुत बडा भेद है तथापि स्वभावके जो गुण दो मनुष्यके निजके व्यवहारोंमे नित्य दिखाई देते है, यदि यह मान लिया जाय कि वे गुण-दोष उसके सार्वजनिक व्यवहारोंमें भी दिखाई देंगे तो कोई हानि न होगी। यह बात नहीं है कि इस नियममें अपवाद न हों, अपवाद भी अनेक मिलते है।

लेकिन वे अपवाद इतने दृढ नहीं होते, जिनसे उक्त सामान्य नियममें बाधा पडे। बाकायदे और बेकायदेका भेद करते हुए यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि अर्वाचीन राजकीय इतिहासमें कायदोंका बधन एक व्यवच्छेदक लक्षण बन गया है और राजसत्ताधारी व्यक्ति और वर्ग इस बन्धनको स्पष्टरूपसे मानने लगे है। सभ्यताके पूर्व कालमे 'जिसकी लाठी उसकी भैस' वाला न्याय ही चलता था। आजकलकी तरह पहले भी सब प्रकारके नियमोंका उत्पत्ति-स्थान राज-सत्ता ही था। तथापि नियमोंका स्वरूप अस्पष्ट और प्रवर्त्तन अनियमित रहनेके कारण उस समय यह अवस्था थी कि राजा जब जो कुछ कह देता था तब वही नियम हो जाता था, और यदि प्रजा न्यायानुमोदित व्यवहार करना चाहती तो भी वैसा व्यवहार करना उसके लिए बिलकुल सुलभ नहीं था। लेकिन आजकलके बदले हुए जमानेमें कानूनके लिखे जानेकी प्रथा होने और राजकर्म्मचारियों पर प्रजाका कुछ न कुछ दबाव रहनेके कारण उनका प्रवर्त्तन भी नियमित ही होता है और यह समझने तथा निश्चय करनेके लिए कि अमुक बात नियमानुमोदित है या नियम-विरुद्ध, स्थूल मानसे कुछ न कुछ साधन मिलता है।

सत्रहवीं शताब्दीसे अब तक सार्वजनिक अहकार-बुद्धिसे प्रेरित होकर आयर्लैण्डके नेताओंने नियमानुमोदित और नियमविरुद्ध दोनों प्रकारके आन्दोलन किये है। अत अब हमें थोडेमें यह देखना है कि उन आन्दोलनोंसे गत तीन शताब्दियोंमें इस राष्ट्रका इतिहास कैसा हुआ और उसके लोगोंकी राजकीय स्थिति किन उपायोसे कितनी सुधरी। आयरिश लोगोंके लिए अँगरेजोंके साथ द्वेष करनेके चाहे कितने ही कारण क्यों न हों और चाहे उनकी उच्चाकाक्षा कितनी ही अमूर्त्त क्यों न हो तो भी प्रत्यक्ष व्यवहार और राजकीय वादविवादमें बोलनेके समय यह बात नहीं है कि वे शुद्ध स्वतत्रता या प्रजासत्ताक

राज्य ही माँगते हों। सन् १७९८ के विद्रोहके पहले आयर्लैण्डके लोक-मतकी स्थिति कैसी थी, इसके सम्बन्धमें स्वय उल्फटोनने अपने आत्म-चरित्रमे लिखा है कि इस समय अर्थात् आयर्लैण्डको स्वतन्त्र पार्लमेण्ट मिलने पर और अँगरेजी मन्त्रि-मण्डलकी कार्रवाई अत्यन्त कष्टदायक होने पर भी आयरिश राष्ट्रकी कभी यह इच्छा नहीं थी कि इग्लैण्डका और हमारा सम्बन्ध बिलकुल टूट ही जाय और जब टोनने लोगोंके सामने स्वतन्त्रताका प्रश्न उपस्थित किया तब लोगोंकी ओरसे उसे विशेष प्रकारकी उत्तेजना नहीं मिली। अब भी आयरिश राष्ट्रके वही जिम्मेदार नेता पार्लमेण्टके सभासद होते है जिन्हें आयरिश लोग लोग चुनते है और साधारणत यह कहा जा सकता है कि वे लोग जो कुछ कहते है अथवा जो मत प्रकट करते है वह उसी राष्ट्रका मत होता है। ग्रटनसे लेकर आज रेडमण्ड तक 'पार्लमेण्टरी' नेताओंमें-से किसीने भी शुद्ध स्वतन्त्रताका झण्डा नहीं खडा किया। इसमें सन्देह नहीं कि समाजमे अनेक ऐसे फिरे हुए दिमागके लोग भी दिखाई देते है, जो उन नेताओंके हाथसे कुछ न होता देखकर उनके सन्तापमे अपने अविचारको भी मिला देते है और निराश होनेके कारण आवेशमे आकर कह बैठते है कि—"अच्छी बात है, जब हम थोडा माँगते है और तुम नहीं देते हो तब हम सभी ले लेते है, कुछ भी नही छोडते।" परन्तु ये उद्गार सारे राष्ट्रके नहीं होते। पौराणिक अहिसत्रमें यजमानने पहले केवल अपराधी तक्षककी आहुतीका ही सकल्प किया था। लेकिन जब इन्द्रने तक्षकको अपने पीछे छिपा लिया तब 'इन्द्राय तक्षकाय स्वाहा' की दूनी आहुतीका सकल्प हुआ। इसी तरह आयरिश 'राष्ट्र' की सदाकी माँग स्वतन्त्र पार्लमेण्ट तक ही थी, पर वह अँगरेज लोग देते नहीं थे। अच्छा होमरूल ही सही, पर वह भी नहीं, तब इस प्रकारके धृष्टतापूर्ण उद्गार निकलने लगे कि अब निसर्गसिद्ध स्वतन्त्रता ही चाहिए, फुटकर बातोंसे

काम नहीं चलेगा। यह युक्तिवाद कि–" केवल होमरूल ही मॉगा तो भी पार्लमेण्ट और राजा अडचन डालते है, तब फिर न इस पार्लमेण्टकी ही जरूरत है और न ,इस राजाकी। "–केवल उसी समय निकलता है जब और कोई उपाय नहीं रह जाता और जिद्द हो जाती है। और इस दृष्टिसे देखते हुए स्वतन्त्रताकी मॉगके इन उद्गारोंका उत्तरदायित्व आयरिश लोगोंकी अपेक्षा होमरूल तक न देनेवाले राजकर्मचारियों पर ही अधिक है।

आयर्लैण्टके इतिहासको जो मनुष्य स्थूल दृष्टिसे देखेगा, सम्भव है कि पहले पहले वह यही समझेगा कि वह इतिहास विद्रोहों, दगे-फसादों और विरोधके मार्गसे ही भरा हुआ है। परन्तु सूक्ष्म विचार करनेवालेको कुछ निराली ही बात दिखाई देगी। विद्रोहों और दगे-फसादों आदिका स्वरूप ही ऐसा होता है कि मनुष्यके मन पर शान्तिके कामोंकी अपेक्षा उनका अधिक प्रभाव पडता है। लेकिन यह बात नहीं है कि जो बात मन पर जितनी ही जमे या नक्श हो, वह उतनी ही उपयुक्त और परिणामकारी भी हो । सृष्टिके इतिहासकी उत्पात, भूकम्प और बाढ आदि बातें ही अधिक ध्यानमें रहती है, परन्तु सृष्टिके नित्यके चरित्रक्रममें और विशेषत उसकी प्रगतिमें उत्पात आदिका बहुत ही थोडा उपयोग होता है। सर्वध्वसक भूकम्पका स्मरण हम लोगोको खूब रहता है, परन्तु नित्य प्रति दोनो किनारों पर धीरे धीरे मिट्टीके कणोंका थर लगाकर वहॉकी जमीनको उपजाऊ बनानेवाली नदीकी कृतिको जब तक हम विशेष रूपसे स्मरण न करें तब तक क्या हमें कभी उसका स्मरण रहता है ? राष्ट्रोंके इतिहासोंकी लडाईयाँ हमारी स्मरणशक्तिकी जितनी जगह घेरे रहती है उतनी जगह और कोई बात नहीं घेरती। लेकिन ऐसी लडाइयाँ कितनी थोडी मिलेंगी जिनसे इतिहासका सारा स्वरूप या मार्ग ही बदल गया हो ?

फ्रान्सके 'सेण्ट बार्थलोम्यू' की हत्याओंका स्मरण इतिहासके पाठकों-को सदा बना रहता है, लेकिन ये हत्यायें जिस कारण हुई उस धर्म-सुधारके बीजको लगानेवाले व्यक्तिका नाम भी हमें नहीं मालूम रहता! प्लासीकी लडाईकी तारीख हमारे यहाँके छोटे छोटे लडकोंको भी जबानी याद रहती है। लेकिन इस लडाईसे भी अधिक महत्त्वकी बात दिल्लीके बादशाहका अँगरेजोंको दीवानीकी सनद देना है। तथापि उसका पता बडे-बडों और सुशिक्षितोंको भी नहीं रहता। नारायणराव पेशवा पर सुमेरसिंह गारदीके वार करनेका दृश्य हमारी आँखोंके सामने खूब बना रहता है, लेकिन ओंकारेश्वरके मैदानमें मराठे राजनीतिज्ञ लोगोंकी आँखें बचाकर जो बालूके पिंड पर हाथ रखकर शपथ खाते है और इस प्रकार बारभाईकी जो कार्रवाई आरम्भ करते है उसका दृश्य कितने थोडे लोगोंकी आँखोंके सामने रहता है? इन सबका कारण यह है कि कार्य्य तो स्थूल होनेके कारण दिखाई देते हैं और कारण सूक्ष्म होते है, इसलिए वे दिखाई नहीं देते। लेकिन सच्चे तत्त्वज्ञोंकी विचारसामग्री दृश्यकी अपेक्षा अदृश्य बातोंमें और अलौकिककी अपेक्षा लौकिक बातोंमें ही अधिक रहती है।

आयर्लेण्डमें असन्तोष चाहे कभी नष्ट न हुआ हो और आयरिश इतिहासको ऊपर ऊपर देखनेवालेको चाहे यही मालूम हो कि उसमें अराजनिष्ठा और मारकाटके सिवा और कुछ भी नहीं है, तो भी उसका ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है। १६४१ का विद्रोह, १७९८ का विद्रोह, फीनियन लोगोंका आन्दोलन और १८४८ के दंगे फसाद तो पाठकोंको दिखलाई पडें और मन पर नक्श हो जायँ, लेकिन प्रत्येक पीढीमें आयरिश नेताओंने जो नियमानुमोदित आन्दोलन किये हैं वे नहीं दिखलाई पडेंगे, इसका दोष या तो निरीक्षकके सहज स्वाभाविक गुण पर और या उक्त कारण पर होना चाहिए, आयरिश लोगोंके इति-

हास पर नहीं। ऊपर कही हुई बातोंमेंसे सन् १६४१ का विद्रोह धर्म्मके लिए हुआ था, स्वराज्यके लिए नहीं। सन् १७९८ का विद्रोह राजकीय कारणोंसे हुआ था, लेकिन लोकसमाज उल्फटोन (१७९८) और राबर्ट एमेट (१८०३) के विशेष अनुकूल नही था। इसमें सन्देह नही कि फीनियन आन्दोलन और सन् १८४८ के दंगे फसाद भी राजकीय कारणोंसे ही हुए थे, लेकिन इन प्रसगों पर तो लोगोंने उतनी भी सहायता नही की, जितनी उल्फटोनको मिली थी। विरोधके मार्ग और काश्तकारोंके दंगे-फसादमें जो मार-पीट हुई उसका कारण राजकीय स्वतत्रताकी अपेक्षा छोटी श्रेणीका था। उस समय लोग जमींदारोंको दिक करके उनसे रिआयतें कराना चाहते थे। अर्थात्—वास्तवमें अराजनिष्ठाके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। सन् १९१६ में सिनफेनर्सका जो दगा हुआ था वह अवश्य बहुत बेमौके हुआ था और उसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यको हानि पहुँचाना था। पर उसमें इतने थोडे लोग सम्मिलित हुए थे, जिससे हम उसे राष्ट्रीय विद्रोह कह ही नहीं सकते। स्वय नेशनलिस्ट वालटियरोंने, सिनफेनर्स विद्रोही जिनका एक अग थे, इस विद्रोहके दमनमें सहायता दी थी। सन् १८७६ में पूना प्रान्तमें और इससे कुछ वर्ष पहले नासिक और जुन्नर प्रान्तो तथा खानदेशमें जो दगे हुए थे उनका जितना राजकीय स्वरूप माना जा सकता है, आयरिश लोगोंके उक्त दगोंका उनसे अधिक राजकीय स्वरूप नहीं था। 'ओक बॉयज', 'व्हाइट बॉयज', 'हार्ट्स आफ स्टील', 'रिबन सोसायटी' आदि जो गुप्त सभायें दगे करनेके लिए स्थापित हुई थीं उनका उद्देश्य अमीर जमींदारोंको हानि पहुँचाना और उन्हें दण्ड देकर तथा अन्य उपायोंसे गरीब खेतिहरोंकी शिकायतें सरकारके कान तक पहुँचाना था। कागजपत्रोंसे प्रमाणित होता है कि कई अवसरों पर उन्होंने अधिकारियोंके पास

राजनिष्ठापूर्ण प्रार्थनायें भी भेजी थीं। 'फ्राउड' सरीखे इतिहास-कारोंने भी जिन्हें आयरिश लोगोंसे घृणा है और तनिक भी सहानुभूति नहीं है, यह बात प्रमाणित की है। यह भी देखना पड़ता है कि लोक-मत ऐसे दगोंके कहाँ तक अनुकूल था, और इस दृष्टिसे विचार करते हुए दिखाई देता है कि अँगरेज जमींदारोंसे आयरिश समाज कितना ही बुरा क्यों न मानता हो और गरीब खेतिहरों पर उसे कितनी ही दया क्यों न आती हो, तो भी अत्याचारको वह समाज अत्याचार ही समझता था और वह उसका केवल निषेध ही नहीं करता था, बल्कि प्रतिकार करनेका भी प्रयत्न करता था। इस प्रयत्नमें रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टका भेद नहीं रह जाता था। यद्यपि ये फसादी लोग अच्छे हेतुसे प्रेरित होकर दगे करते थे, तो भी उनके द्वारा अनुचित कार्य्य होते थे और हानि पहुँचानेकी कुछ मर्य्यादा न रह जाती थी, इस लिए सभी समझदार और विचारशील नेता जहाँ तक हो सकता था मिलकर ऐसे अत्याचारोंका प्रतिकार करते थे।

आयर्लैंडमें अँगरेजी अमलदारीके कारण जिन लोगोंको वास्तवमें और बहुत कष्ट पहुँचा वे लोग कैथोलिक ही हैं। यदि मनमें अराजनिष्ठा रखनेका सचमुच किसीके लिए कोई कारण था तो वह कैथोलिक लोगोंके लिए ही था। क्योंकि जमीनके कानूनों, शिक्षाके कानूनों, धर्म्मके कानूनों, और नागरिताके अधिकारके कानूनों आदि सबसे उन्हींको कष्ट पहुँचा। कैथोलिक लोगोंकी तरह व्यापारसम्बन्धी कानूनोंसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको भी पहले पहल अवश्य कष्ट हुआ, परन्तु उस कष्टका शीघ्र ही अन्त हो गया। और यदि आयरिश पार्लमेण्टके टूट जानेसे हानि हुई तो वह कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनोंकी बराबर हुई। तात्पर्य्य यह कि अँगरेजोंको शत्रु समझनेका कारण मुख्यत कैथोलिक लोगोंके लिए ही था। लेकिन यदि सारे इतिहास-क्रम पर दृष्टि

डाली जाय तो जान पडेगा कि कैथोलिक लोग विशेष अराजनिष्ठ नही थे। आयरिश लोगोंके साथ पूर्ण सहानुभूति रखनेवाला इतिहासकार 'लेके' है। इस इतिहासकारने अपने आयर्लैंडके इतिहासमें यह स्पष्ट कहा है कि अठारहवी शताब्दीमें कैथोलिक लोगोंमें वास्तविक अराजनिष्ठा इतनी कम थी कि उसे देखकर सचमुच बहुत आश्चर्य होता है। इसका एक कारण यह था कि इग्लैडकी गद्दी पर बैठनेवाले कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों राजा उन्हें समान ही जान पडने लगे थे। धर्म्माभिमानके कारण उन्होंने कैथोलिकपन्थी राजा द्वितीय जेम्सका पक्ष लिया था और उसकी ओरसे वे लडनेके लिए भी तैयार थे, परन्तु 'ब्राइन' की लडाईके उपरान्तका उसका विलक्षण व्यवहार देखकर उन्हें यह जान पड़ने लगा था कि हम लोगोंने व्यर्थ कष्ट उठाया। अराजनिष्ठा और भयकर अन्दोलनके मूल कारण आयर्लैण्डमे बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट लोग ही थे, कैथोलिक लोग तो केवल धार्मिक स्वतत्रता पाकर ही प्रसन्न हो जाते। प्रजा-स्वातन्त्र्यके विचार प्रोटेस्टेण्ट और प्रेसबिटरेनियन लोगोंके दिमागमें ही थे और इसीलिए पार्लमेण्ट स्वतत्र करनेके आन्दोलनमे वे ही आगे हुए थे। तथापि यह माननेका कोई विशेष कारण नही था कि प्रोटेस्टेण्ट लोग ही स्वय स्वतत्र रीतिसे विद्रोह करेंगे। उल्फटोन स्वय प्रोटेस्टेण्ट था और इसमें सन्देह नहीं कि कुछ अंशोंमें वह आयर्लैण्डके उत्तरी भागके प्राटेस्टेण्ट और प्रेसबिटेरेनियन लोगोंके मनकी बात जानता था, तथापि सन् १७९८ में फ्रेंच राजनीतिज्ञोंके सामने आयर्लैंडकी वास्तविक स्थिति उपस्थित करते समय उसे यह स्वीकार करना पडा था कि आयरिश लोग स्वयं विद्रोह नहीं करेंगे। उसे यह आशा थी कि यदि फ्रेंच सरकार आयर्लैण्ड पर चढ़ाई करके लोगोंको हथियार देगी तो बहुतसे कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट उसे आ मिलेंगे। लेकिन जब प्रत्यक्ष समय आया तब यह

आशा भी विफल हो गई। क्योंकि जब फ्रेंच जहाजोंका पहला भाग आयरिश किनारेके पास आकर रुका था तब लोगोंकी ओरसे विद्रोहका झण्डा खड़ा करनेके चिह्न भी दिखाई नहीं देते थे।

आयर्लेण्डके लोकमतके स्वाभाविक नेता देशके सुशिक्षित विचारशील और सम्पन्न लोग थे। यदि प्रत्येक पीढीके इन नेताओं पर दृष्टि डाली जाय तो पता लगेगा कि सौमेंसे नव्वे नेता नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले थे। नियम विरुद्ध आदोलन करनेवाले नेताओंमेंसे लार्ड फिटजरल्ड, टोन, एमेट, मिचेल, ओब्रायन आदि प्रसिद्ध है। लेकिन नियमानुमोदित आदोलन करनेवाले भी आरम्भसे अबतक बराबर होते आ रहे हैं और लोकमतकी दृष्टिसे देखते हुए दूसरे प्रकारके इन नेताओंको जितनी सहायता मिली उतनी पहले प्रकारके नेताओंको नहीं मिली। यह बात नहीं है कि पहले प्रकारके (नियम-विरुद्ध आदोलन करनेवाले) नेता कुछ कम बुद्धिमान् थे। इसमें सन्देह नहीं कि टोन, एमेट और ओब्रायन आयर्लेंडके लिए ग्रेटन और ओकानेलके बराबर ही भूषणभूत रहेंगे। इन नेताओंकी देश-भक्तिके सम्बधमें कभी किसीको कुछ सन्देह नहीं था। यही नहीं बल्कि उन्होंने उस भक्तिके लिए अपना शरीर तक गँवा दिया। इसके अतिरिक्त और अनेक दंगे फसाद करनेवालोंकी तरह उनकी नीति निम्न-श्रेणीकी नहीं थी, बल्कि वह बहुत ही उच्च श्रेणीकी थी। लेकिन चाहे यह कह लीजिए कि उनके काम समाजको पसन्द न थे और वह उससे सहमत न था, चाहे यह कह लीजिए कि समाजमें उनके कदमपर कदम रखकर चलनेका साहस नहीं था और चाहे यह कह लीजिए कि समाजके लिए उस समय उनके साहसका कोई उपयोग न हो सकता था, पर उनके द्वारा विशेष कार्य्य न हो सका और उन्हें प्राण देने पडे। इसके विरुद्ध ग्रेटन और ओकानेल सरीखे नेताओंने यद्यापि नियमानुमोदित

आन्दोलनका राज-मार्ग ग्रहण किया था, तो भी उन्हें अपने हाथसे थोडा बहुत प्रत्यक्ष कार्य्य करनेका यश मिला था। क्योंकि ग्रॅटनको आयरिश लोग 'स्वतन्त्रताका जनक' और ओकानेलको 'कैथोलिक लोकरक्षक अवतार' कहते है। यदि शिल्प-शास्त्रके शब्दोंमें कहा जाय तो टोन और एमेटका उपयोग आयरिश राष्ट्रकी इमारतमें महराब पर बनाये हुए वेलवूटोंकासा था और ओकानेल तथा पार्नेलका उपयोग नकाशी किये हुए पायेके पत्थरका सा हुआ। अर्थात् पहले प्रकारके देश-भक्तोंके कारण उस इमारतकी सुन्दरता और शोभा बढ़ी और दूसरे प्रकारके देशभक्तोंके कारण जिस प्रकार उसकी शोभा बढी उसी प्रकार उसे आधार भी मिला।

आयर्लैण्डके नियमानुमोदित और नियमविरुद्ध आन्दोलन दोनों एक प्रकारसे मिले-जुले दिखाई पडते है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सब लोग अपने अपने स्वभावके अनुसार अपना अपना साधन-मार्ग निश्चित करते है। आयरिश आन्दोलनके प्रत्येक युगमें-(१) आदिसे अन्त तक नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले, (२) आदि से अन्ततक नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले और (३) भिन्न भिन्न समयों पर प्रसंगके अनुसार दोनों प्रकारके आन्दोलन करनेवाले लोग भी दिखाई देते है। लेकिन पहले और दूसरे प्रकारके अर्थात् ऐसे लोग बहुत ही कम है जिन्होंने जन्मभर केवल एकदेशीय विचारोंके अनुसार ही अपना व्यवहार नियमित रक्खा हो और तीसरे प्रकारके लोग बहुत अधिक दिखाई देते हैं। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। नेताओंमें ऐसे कट्टर वैदिक लोग बहुत ही कम मिलते है, जो कानूनके अक्षरोंको श्रुति ही मानते हों और यह समझते हो कि जरा भी उनके बाहर न जाना चाहिए अथवा उनमेंका एक स्वर भी न बदलना चाहिए। जो कानून और शासन-पद्धतिको बिलकुल व्यर्थ समझ कर उठते

बैठते बन्दूक चलाते हों और तलवारकी मूठ पर हाथ ले जाते हों। ऐसे लोगोंको यदि नेतृत्व मिल भी जाय तो वह अधिक दिनों तक रह नहीं सकता। जो नेता कार्य्यक्षम होगा वह यह प्रतिज्ञा करनेसे पहले कि—"केवल कानूनके अक्षरोंके अनुरावसे ही मैं कदम उठाऊँगा और कानूनकी निश्चित की हुई मर्य्यादाके बाहर मैं अपने शरीरका कोई भाग या झोंक भी जाने न दूँगा।" दस पाँच बार विचार करेगा, क्योंकि मनुष्यका स्वभाव ऐसी प्रतिज्ञाके विरुद्ध है और भूल करना मनुष्य धर्म्म है। दूसरी बात यह है कि इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले नेताओं पर सब लोगोंका समान विश्वास नहीं रहता। 'गणेशथोपडी' आदि खेलोंमें यदि कोई खिलाडी यह प्रतिज्ञा करे कि—"मैंने आज तक कभी मार नहीं खाई और आगे भी कभी न खाऊँगा।" तो लोग उस पर हँसेंगे और उसे कोई अपने साथ खेलने न देगा। क्योंकि खेलमें कभी न कभी वह पकडा जाकर चोर बनेगा ही, और उसे चपत खाना ही पडेगा। तीसरे वर्गके नेताकी बात अलग है। वह कभी इस बातकी भी प्रतिज्ञा नहीं करता कि अपने जीवनमें मैं कभी नियमानुमोदित मर्य्यादाके बाहर पैर भी नहीं रक्खूगा और अविचार, आवेश अथवा वृथाभिमानके कारण सहसा उसके द्वारा उस रेखाका उल्लघन भी नहीं होता। उसका प्रामाणिकतापूर्वक सदा इस बातका प्रयत्न रहता है कि कानूनकी मर्य्यादाका उल्लघन न हो, लेकिन जब राजनीतिक आन्दोलन अच्छा स्वरूप धारण कर लेता है और कानून भी अपनी मर्य्यादाका उल्लघन करके आगे कदम बढाने लगता है तब वह केवल परिणामके भयसे अपना पैर पीछे नहीं हटाता। उसे आरम्भसे ही इस बातका निर्विकल्पक ज्ञान रहता है कि हम नियमानुमोदित रीतिसे व्यवहार कर रहे हैं और यह बात उसके मनके समाधानके लिए यथेष्ट होती है। तथापि किसी अवसर पर यदि उसे इस

बातका सविकल्पक ज्ञान भी हो कि परिस्थिति बदलनेके कारण केवल औपचारिक रीतिसे हमारे द्वारा कानूनकी मर्य्यादाके उल्लघनकी सम्भावना है तो वह इस भयसे कि व्यक्तिश' हमें अनिष्ट फल भोगना पडेगा, अपने अगीकृत कार्य्यसे पीछे नहीं हटता। इस लिए प्रत्येक प्रगमनशील राष्ट्रमें ऐसे नेता अवश्य दिखलाई देते है, जो नियमत और हेतुपुर सर नियमानुमोदित रीतिसे व्यवहार करते है, लेकिन केवल अपवादत या उपाधि-दोषके कारण जान बूझकर या अनजानमें जिनसे नियमविरुद्ध व्यवहारकी भूल हो जाती है। उनके द्वारा यह अपवाद प्राय उसी समय होता है जब ससारको यह दिखलानेकी आवश्यकता होती है कि अमुक कानूनकी प्राण-प्रतिष्ठा चाहे राजसत्ताके कारण ही क्यों न हो,पर उसकी उत्पत्ति सदोष है और इस लिए उसे न मानना चाहिए। और ऐसे कृत्यके लिए नीति-शास्त्रकी सम्मति भी मिलती है। लेकिन जिन लोगोंके द्वारा ऐसे अपवाद हो जाते है, उन्हें इन अपवादोंके कारण 'नियमविरुद्ध व्यवहार करनेवाले' बतलाना भूल है। प्रसिद्ध अँगरेज देशभक्त हैम्पडनने 'शिप मनी' नामक कर देनेसे इकार किया था और दक्षिण आफ्रिकामें देशभक्त कर्म्मवीर गाधीने रजिस्टरेशन आदिके कानूनोंको मानकर उनके द्वारा अपने देशवासियोंकी अप्रतिष्ठा करानेकी अपेक्षा जेल जाना अधिक उत्तम समझा था। लेकिन यह बात सभी लोगोंको माननी पड़ेगी कि ये दोनो नियम-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाले नहीं कहे जा सकते। यदि उक्त तत्त्वोंका आयरिश इतिहास पर उपयोग करके देखा जाय तो पता लगेगा कि आयरिश नेताओंमेंसे उन्हींके पक्षमें प्रचण्ड बहुमत था जो नियमश नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले ही थे और केवल नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले नेता बहुत ही थोडे थे। यहाँ 'नेता' शब्द ऐसे मनुष्योंके लिए लाया गया है जिन्होंने थोडा बहुत लोकमत तैयार किया था, अथवा

जो यथार्थमें कुछ दिनों तक लोकमतके निदर्शक गिने जाते थे। ऐसे आदमीको कोई नायक या नेता नहीं कहता जो मौके बे-मौके इसी उद्देश्यसे हथियार उठाता हो कि लोग हमारे तलवार-के हाथ देखकर हमारी प्रशसा करें। चार्लमाट, ग्रॅटन, फ्लड, क्यूरन, डेनियल ओकानेल, जॉन किओघ, आइजिक बट, पार्नेल, डिलन, ओब्रा-यन, रेडमण्ड आदि आयरिश नेता नियमानुमोदित आन्दोलन करने-वाले थे और उनमेसे कई नेताओंको जेल भी जाना पडा था। लेकिन केवल इतनेसे ही कभी किसीने यह नहीं कहा कि वे नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले थे। जिस प्रकार गेंद-बल्लेके खेलमे स्वय चाला-कीसे प्रतिपक्षीका बल्ला गिरा देने या 'अम्पायर' से पूछ कर उसकी भूलसे लाभ उठानेकी होशियार खिलाडियोंकी युक्ति होती है, उसी प्रकार दक्ष और कुशल राजकर्म्मचारियोंकी यह एक निश्चित और अनुभवसिद्ध युक्ति है कि वे किसी न किसी प्रकारसे जिस प्रजा-पक्षीय नेताको तग करना चाहते है उनके सम्बन्धमें यह फेसला करा लेते है कि उसके अगका प्रत्यक्ष भाग नहीं तो कमसे कम उसकी झोंक अवश्य कानूनकी मर्य्यादाके बाहर गई है और इस प्रकार उसके मत्थे नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेकी छाप लगा देते है। लेकिन केवल इतनेसे ही वह नेता नियम-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाला नहीं ठहर सकता, जिसकी प्रवृत्ति सदा नियमानुमोदित आन्दोलन करनेकी ओर ही रहती हो। सन् १७८२ के लगभग आयर्लैंडमें राजकीय आन्दोलन बहुत जोरों पर आया था। अमेरिकामें परास्त होनेके कारण इग्लैंड निर्बल और भय-भीत हो गया था। पास ही फ्रान्समें शासनके उलटने-पलटनेका रग दिखाई देने लगा था जिससे अँगरेज राजनीतिज्ञोंको यह आशंका होने लगी थी कि कहीं इग्लैंडका तख्त भी तो न डगमगायगा, आयर्लॅण्डमें धार्म्मिक पीडन चरम सीमातक पहुँचनेके उपरान्त सहिष्णुताका उदय

हुआ था और कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट दोनों पक्ष यह समझने लगे थे कि यह धार्मिक भेद मानना मूर्खतापूर्ण है, और प्रोटेस्टेंट लोगोंने स्वय-सेवक सैनिकोंकी पलटनें और तोपखाने सिखलाकर तैयार कर लिये थे। ऐसे अवसर पर ग्रॅटनने स्वभावत यहाँतक कह डाला था कि यदि इग्लैंडने आयरिश पार्लमेण्टको स्वतत्रता देना स्वीकार किया तो अच्छी बात है, नहीं तो फिर जो होना होगा सो होगा, और कदाचित् इग्लैंडके हठके कारण युद्ध भी हो जाता तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ग्रॅटन एकाध पलटनका कर्नल बनकर लड़ता, अथवा कमसे कम नेता-की हैसियतसे वह पार्लमेंटमें इस देश-भक्त सेनाकी प्रशसा और उसके कार्य्योंका समर्थन अवश्य करता। लेकिन ऐसे अवसर पर किसीने यह नहीं कहा कि वह नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाला है। आयर्लैंडके अनभिषिक्त राजा ओकानेलका सारा जीवन अँगरेजोंके दोष दिखलाने, न्यायालयोंमें सरकारके विरुद्ध लडने, महती सार्वजनिक सभाये करने, समाजमें खलबली मचाने, समितियाँ, सभायें और सस्थायें स्थापित करने और पार्लमेंटमें सरकार पर टूटकर आक्रमण करनेमें ही बीता, और ऊपर बतलाई हुई निश्चित युक्तिसे सरकारने उस पर बेकाय-दगीकी छाप लगानेका दो तीन बार प्रयत्न भी किया और अन्तमें एक बार वह प्रयत्न सफल भी हुआ, जिसके कारण कुछ दिनोंतक उसे कारागारमें रहना पडा। लेकिन स्वय उसने न्यायानुमोदित आन्दोलनका बाना कभी नहीं छोडा। यही नहीं बल्कि उसे रखनेके लिए उसने अपनी जन्मभरकी सारी लोकप्रियताको तिलाजली दे दी और ऐसे अवसर पर जब कि उसके एक शब्द पर प्राण देनेके लिए उसके हजारों अनुयायी तैयार थे उसने लोगोंसे यह कहकर कि-" शान्तिका भग मत करो। " और सिर्फ एक सिपाहीका हुकुम मानकर अपने आपको गिरिफ्तार करा दिया और अन्तमे कारागार भी भोगा। यद्यपि वह सभामें बोलनेके समय कभी

कभी बहुत आवेशमें आकर बेसुध सा हो जाता था, तथापि उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि यदि अन्यायपूर्वक मनुष्यके एक बूंद लहूके गिरनेसे भी सारे राष्ट्रकी राजकीय मुक्ति होती हो, तो भी उस मुक्ति पर लात मारनी चाहिए और उस रक्त-बिन्दुको गिरनेसे बचाना चाहिए। कभी किसी-ने यह नहीं कहा कि वह नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाला है। यह बात प्रसिद्ध ही है कि पार्नेल, डिलन, ओब्रायन आदि नेताओंको सर-कारने दण्ड देकर कारागारमें भेजा था। सौमें नब्बे अँगरेज यही समझते थे कि लैण्ड लीग और नेशनल लीगकी उत्तेजनासे ही आयर्लैंडमे बहुतसे अपराध होते है और पार्नेल आदि नेता गुप्तरूपसे इन अपरा-धोंमें सहायता देते है। लेकिन कोई न्यायी इतिहासकार पार्नेलको नियम-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाला नहीं कहेगा। नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले लोगोंमेंसे लार्ड फिडजरल्ड, उल्फटोन, राबर्ट एमेट, शीअर बन्धु, मिचेल, स्मिथ ओब्रायन और माइकेल डेविट आदि प्रसिद्ध है। इनमेंसे टोन, ओब्रायन और माइकेल डेविट दूसरे वर्गकी अपेक्षा तीसरे वर्गमें ही अधिक आते है। क्योंकि उल्फटोनने सार्वजनिक काम-का जो आरम्भ किया वह विद्रोहका झण्डा खडा करके नहीं किया। यद्यपि वह स्वय प्रोटेस्टेण्ट था, तो भी उसने केथोलिक लोगोंके अधि-कारका प्रश्न उठाकर नियमानुमोदित आन्दोलन आरम्भ किया। इस आन्दोलनमे उसने जॉन किओघको अच्छी सहायता दी थी, और केथोलिक लोगोंकी ओरसे डेपुटेशन लेकर वह विलायत गया था। वह बहुत ही चलता हुआ और बुद्धिमान् था और उसने वेरिस्टरीकी परीक्षा दी थी। यदि सन् १७७६ मे अमेरिकामें और १७८९में फ्रान्समें राज्यक्रान्ति न हुई होती और फ्रान्स तथा इग्लेण्डमें युद्ध होनेकी सम्भावना न होती, तो बहुधा वह विद्रोहके झमेलेमें न पडता। स्मिथ ओब्रायनके आरम्भके अनेक वर्ष नियमानुमोदित आन्दोलनमें ही बीते थे, लेकिन डेनिअल

ओकानेलके नियमानुमोदित आन्दोलनका खेदकारक परिणाम देख कर ही उसके साथके युवकोंको केवल परिस्थितिके कारण नियमविरुद्ध मार्गका अवलम्बन करनेकी उत्तेजन मिली थी। जिस समय माइकेल डेविटके सार्वजनिक आयुष्यक्रमका आरम्भ हुआ था, प्रायः उसी समय आयर्लैण्डमें फीनिअन लोगोंके विद्रोहात्मक आन्दोलनकी लहर आई थी और अपनी युवावस्थाके उत्साहके कारण वह भी उस लहरमें पड गया था। परन्तु दस वर्ष तक काले पानीकी सजा भुगतकर लौटने पर लैण्ड लीगका नियमानुमोदित आन्दोलन उसीने आरम्भ किया और पार्नेलको उस आन्दोलनमे सम्मिलित करके आन्दोलनको जोर पहुँचाया। एक माइकेल डेविट ही क्या, बल्कि फीनिअन आन्दोलनके फेरमें युवावस्थामें पडे हुए बहुतसे आयरिश लोग विद्रोहके मार्गका शौक छोड कर नियमानुमोदित आन्दोलनसे कार्य्य सिद्ध करनेके लिए पार्नेलके साथ हो गये और उन्हींके जोर पर तथा व्यावहारिक कर्त्तृत्वकी सहायतासे पार्नेलको ब्रिटिश पार्लमेण्टमें आयर्लैण्डका प्रश्न हाथमें लेना पडा।

आन्दोलनके इस अगके सम्बन्धमें एक और बात ध्यानमें रखने योग्य है। वह यह कि यद्यपि आयर्लैण्डमें समय समय पर गुप्त मण्डलियोंका प्रसार हुआ, तथापि वह प्रसार कभी अधिक दिनों तक नहीं ठहरा और जब इन गुप्त मण्डलियोंका काम खुले आम आरम्भ होता था तब उसके थोडे ही दिनो बाद इस उद्योगके सम्बन्धमें लोकमतकी प्रतिकूलता व्यक्त होती थी। अन्य मार्गोंका अवलम्बन करनेवाले जो लोग यह प्रतिकूलता व्यक्त करते है उन्हें यह निषेध आलकारिक शब्दोंमें और ऐसी रीतिसे प्रकट नहीं करना पडता, जिसमें यह निषेध सरकारी अधिकारियोंकी दृष्टिमे पडे। देशके एक वर्गके लोगोंके व्यवहारके सम्बन्धमें दूसरे वर्गके लोगोंके निषेध व्यक्त करनेके अनेक दूसरे शिष्ट-मान्य मार्ग है। क्योंकि किसी बुराईके

राजकीय आदोलनके अन्तर्गत होनेसे ही क्या होता है ? काम जो बुरा है वह बुरा ही है। रेंडीका तेल ओषधि ही क्यों न हो, पर जो चीज बदबूदार है वह बदबूदार ही है। कुनैनकी गोली खानेके समय यद्यपि यह समझा जाता है कि कदाचित् इससे हमारा बुखार कम हो जायगा तथापि उसे यह सार्टीफिकेट कोई नहीं देगा कि—" यह बहुत मीठी होती है। " गुप्त मण्डलियों और षट्यत्रोंके कारण साहसी मनुष्योंको यद्यपि यह जान पड़ता है कि हमारे स्वदेशाभिमानकी लहर धीमी पडती है, लेकिन साथ ही उन्हे वे त्रुटियाँ भी दिखाई पडने लगती है जो ऐसी सस्थाओंके हाथमें आदोलनका नेतृत्व चले जानेके कारण होती है। स्वतत्र कमीशन नियुक्त करके पार्नेल और उनके सहकारियों पर जो मुकदमा चलाया गया था उसके प्रमाणों आदिसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्कट विचारके उन नेताओंने भी पहलेसे ही इस बातका ध्यान रखा था कि देशके आदोलन पर गुप्त मण्डलियोंका गुप्त पाश न पडे और आदोलनको उस वोसेसे बचाया था। पार्नेलके शिष्य और रेडमण्डके प्रतिपक्षी विलियम ओब्रायनने, जिसके लिए कुछ दिनों पहले आयरिश कनवेन्शनमें बडी मारपीट हुई थी, अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमे उसने गुप्त मण्डलियोंके विरुद्ध अपना मत स्पष्ट रूपसे प्रकट किया था। ओब्रायन कानूनको देवता माननेवाला आदमी हरगिज नहीं था, तो भी उसका यह सिद्धान्त अवश्य था कि कानूनका ध्यान रखनेकी जिस प्रकार मर्य्यादा है उसी प्रकार देशभक्तिके नामसे होनेवाले कामोंकी भी मर्य्यादा है। फीनिअन विद्रोहके समय ओब्रायन छोटा था, लेकिन उसका बडा भाई उस षड्यत्रमें सम्मिलित था, इस लिए अद्भुत-रम्य युवावस्थाकी देशभक्तिसे प्रेरित होकर उत्पन्न होनेवाला शौक पूरा करनेके लिये वह भी इसमें सम्मिलित हो गया था। लेकिन आगे चलकर जब वह सयाना हुआ तब उसने कहा-

“ यदि राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके प्रचण्ड और विशाल कार्य्य तथा विद्रोहके साधनोंका परस्पर मिलान किया जाय तो यह बात अच्छी तरह मनमें बैठ जाती है कि केवल गुप्त मण्डलियोंके द्वारा देशको स्वतन्त्रता दिलानेकी कल्पना बिलकुल अविचारपूर्ण और पागलपनकी है। ”

आयर्लैण्डमें सन् १८४० से १८५० तक राष्ट्रीय आन्दोलनके उदयके समय ‘ नेशन ’ पत्रकी सम्पादक-मण्डलीके लिए भी कानूनकी मर्य्यादाका उल्लंघन करनेका प्रसग आया था। लेकिन राष्ट्रीय मतके बुद्धिमान् प्रसारक चार्ल्स गबन, डफी और डेविसने उन लोगोंकी दाल नहीं गलने दी जो उन पर अत्याचार करनेवाले थे। ए० एम० सुलिवानने, जो किसी समय ‘ नेशन ’ पत्रका सम्पादक था, आयर्लैण्डके लोगोंके मनकी स्थितिका वर्णन ‘ नवीन आयर्लण्ड ’ नामक पुस्तकमें किया है। वह वर्णन आयर्लैण्डकी आजकी स्थितिके लिए भी प्रयुक्त हो सकता है, अत उसे हम यहाँ दे देते है। वह कहता है—“आयर्लण्डमें सभी तरहके स्वभावके लोग है। इसमें सन्देह नहीं कि उनमेंसे बहुतसे लोगोके मनमें उतावलेपनके कारण अथवा निराशा और देशभक्तिके आवेशमें नियमविरुद्ध प्रयत्न करनेकी भी तरग उठती है। लेकिन यदि समस्त आयरिश समाजका लोकमत देखा जाय तो यही जान पडता है कि उनका निश्चय यही है कि इस समय हाथकी राजकीय सत्ता और उसकी सहायतासे मिलनेवाले लोकमत तथा इसी प्रकारके दूसरे शस्त्रोंका उपयोग करके ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करनी चाहिए। ” उसके इस कथनका सबसे अच्छा प्रमाण वर्त्तमान युरोपीय महासमरके समय अँगरेज अधिकारियोंको मिल गया जब कि कैसरकी आयर्लैण्डमें विद्रोह खडे होनेकी आशा विफल हो गई और आयर्लैण्डवालोंने इग्लैण्डको न्याय-पक्षमें समझ कर सब प्रकारसे उनकी सहायता करना अपना परम देशभक्ति-पूर्ण कर्त्तव्य समझा और यह समझ कर

उस कर्त्तव्यका पालन किया कि इसी पर हमारी सारी भावी स्वतन्त्रता, वैभव और सुख निर्भर है।

तथापि इस इतिहाससे एक और महत्त्वपूर्ण बात प्रमाणित होती है। वह यह कि केवल कानूनको ही श्रुतिके समान मान कर चलनेसे किसी नेताका ठीक तरहसे काम नहीं चल सकता। अठारहवीं शताब्दीमें आयर्लेण्डमें ऐसे अनेक निर्लज्ज लोग हो गये हैं जो यह समझते थे कि देशहितसरीखी अमूल्य वस्तु बेचकर चार पैसे पैदा करनेके लिए ही ईश्वरने हमें देश दिया है और इसके लिए वे ईश्वरका आभार मानते थे। इसी कारण उन्नीसवीं शताब्दीमें भी जान सेडलिअर, विलियम किओघ, एडमण्ड ओप्लहरटी आदि अनेक ऐसे लोग हो गये हैं, जिन्होंने केवल अपनी बात बनाने और उन्नति करनेके लिए ही नियमानुमोदित देशसेवाका ढोंग रचा था। इस प्रकारके लोग देशका नाम लेकर और उसे अपवित्र करके जो काम करते हैं, उसकी आवश्यक प्रतिक्रिया षड्यन्त्रकारियों और अत्याचारके समर्थक साहसी युवकोंके द्वारा ही होती है। लेकिन वास्तविक प्रगतिका सबसे अधिक उपयुक्त मार्ग सदा इन दोनों छोरोंके बीचमें ही कहीं होता है। प्रत्येक अत्याचारका निषेध करना बहुत ही आवश्यक है, तथापि उस निषेध पर सहजमें ही यह आक्षेप किया जा सकता है कि केवल निषेध करनेके समान सहज और अपने बचावका और कोई काम नहीं है। जो लोग केवल अपनी रक्षाके लिए ही अत्याचारका निषेध करते हों उनका निषेध कौडी कामका भी नहीं है। वास्तविक मूल्य पार्नेल आदि ऐसे ही लोगोंके निषेधका है, जिन्होंने अत्याचारप्रिय युवकोंके मनसे असद्-उद्देश्य निकाल कर उनके धैर्य, देशभक्ति और उद्योग-प्रियताका उपयोग करनेके लिए उनके सामने सदुद्देश्य रक्खा, उनके सच्चे गुणोंको हानि न पहुँचाते हुए उनके मनसे तामस विचार उसी तरह निकाल दिये,

जिस प्रकार सुदर फूलोंवाले पोधेको हानि न पहुँचाते हुए क्यारियोंमेंसे निरर्थक ओर हानिकारक घास-फूस आदि निकाल देते है, जिन्होंने शारीरिक तथा नैतिक सामर्थ्यका मेल मिलानेके लिए अपने प्राणोंकी भी चिन्ता नहीं की और आवश्यकता पढनेपर जिन्होंने जेल जाना भी स्वीकार किया। चाहे हिन्दुस्तानमें हो और चाहे आयर्लैण्टमें हों, जब इस प्रकारके ओजस्वी परन्तु सदय, उत्साही परन्तु विचारी, अत्याचार-शत्रु परन्तु साहसी और अपने बचावकी चिन्ता न करते हुए निषेधके काममें प्रवृत्त होनेवाले और एक बातके निषेधके साथ ही साथ उसकी अपेक्षा देशसेवाकी दूसरी अच्छी बातोंका प्रचार करनेवाले लोग होंगे तभी अत्याचार रुकेगा।

आयर्लैण्डमे लोकमतके नेता। प्रत्येक देशमें लोकमतके नेता प्राय॰ ऐसे ही दिखलाई देते है, जो प्राय॰ मध्यम स्थितिके वर्गमें उत्पन्न हुए है। इसका एक कारण यह है कि सच्चे सुशिक्षित लोग मुख्यतः इसी वर्गमें होते है। यह कहनेमे कोई हानि नहीं है कि कनिष्ठ श्रेणी और अशिक्षित वर्गकी बहुधा समव्याप्ति ही होती है आर अशिक्षित मनुष्योंके मनमें देशहितसरीखे व्यापक और उन्नत विचारोंकी बातोंका सहसा आना कठिन ही होता है। इस वर्गके लोग स्वराज्यकी अपेक्षा सुराज्यका मूल्य ही अधिक समझते है। वे लोग उसी अधिकारीको पसन्द करते हैं, जिसके शासनसे तुरन्त सुख मिले, फिर उनका राजा और महाराज सब कुछ वही है। सुराज्य और स्वराज्यका भेद मार्मिक और रसिक मनुष्य ही समझ सकते है। यह बात अशिक्षित लोग नहीं समझ सकते कि बिना स्वराज्यके यदि सुराज्य हो भी, तो वह अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि आयर्लैण्डमें ब्रायन और कारमेक राजासे लेकर और हिन्दुस्तानमें अजातशत्रु धर्मराजसे लेकर महाराज पचम जार्ज तकके

भिन्न भिन्न शासन-कालोंमें करोड़ों खेतिहरोंकी प्रत्यक्ष स्थिति और सुख दुःख आदिमें समय समय पर जो अन्तर पड़ा कार्य्य-कारण सम्बन्धसे उनका सूत्र ठेठ राजातक ले जानेका ज्ञान उन्हें कभी हुआ हो। कन्धे पर लाठी रखकर दिनरात खेतीके कामोंमें लगे रहनेवाले खेतिहरोंको यदि बिना कष्टके पेट भर रोटी मिल जाय तो उनकी दिवाली हो जाती है। जिस राजाके शासन-कालमें उन्हें पेट भर रोटी मिलती है वह राजा यदि स्वदेशी हो तो उन्हें उसका विशेष हर्ष नहीं होता और यदि विदेशी हो तो उसका विशेष विषाद नहीं होता। यह तो कनिष्ठ और अशिक्षित वर्गकी स्थिति हो गई। मान-मरतबे और धन सम्पत्ति आदिके कारण जो वर्ग श्रेष्ठ माना जाता है, उसकी बात भी एक प्रकारसे इसी कनिष्ठ वर्गके समान होती है। कनिष्ठ वर्गके लिए शिक्षा दुर्लभ होती है और सहजमें उसे वह मिल भी नहीं सकती, इस लिए उसके मनमें देशके सम्बन्धमें व्यापक और उन्नत विचार नहीं आते, लेकिन श्रेष्ठ वर्गके लिए शिक्षा सब प्रकारसे सुलभ होती है, लेकिन उनके पास बिना शिक्षाके भी पेट भरनेके साधन होते हैं, इस लिए उनमेंसे बहुतोंको शिक्षाकी न तो आवश्यकता ही होती है और न उसका महत्त्व ही मालूम होता है। उन्हें इस बातका भी भय होता है कि हमारे मान-मरतबे और धन-सम्पत्ति आदिमें कहीं धक्का न लगे, हमारी वर्तमान उत्तम स्थिति कहीं बिगड़ न जाय और धीरे धीरे हम निर्जीव न हो जायँ। और यदि उनमें देश-कार्य्य-संबधी व्यापक बातों पर विचार करनेकी योग्यता भी हो तो भी उन विचारोंके कार्य्यरूपमें परिणत होने और देशकार्य्यमें उनके नेता बननेमें उनकी स्वार्थ-बुद्धि अड़चन डालती है। देश-कार्य्यके आन्दोलनोंमें इस श्रेष्ठ वर्गके लोग यदि नेता बनकर सम्मिलित भी हों तो ज्योंही वह आन्दोलन बढ़ेगा और विजयश्रीका मुहँ दिखाई देने लगेगा त्योंही वे पीछे हटने लगेंगे। वेदान्तमें जब बुद्धिमानका,

उदाहरण देना होता है तब जोंक (तृण-जलौका-न्याय) का उदाहरण देते हैं। जोंक जब घास पर चलने लगती है तब वह अपना पिछला पैर उसी समय उठाती है जब अगला पैर किसी तिनके पर बहुत मजबूतीसे जमा लेती है। यह नहीं कहा जा सकता कि जोंक प्रगमन-शील प्राणी नहीं है, लेकिन उसके मनमें प्रगतिकी अपेक्षा अपने आधार और सुरक्षितताका विचार अधिक प्रबल होता है। अपनी मान-मर्य्यादाके फेरमें पड़े हुए और आनिष्टमें भी जो कुछ घी मिल जाय वही अपनी रोटी पर चुपड लेनेवाले देशके 'श्रेष्ठ' वर्गके लोगोंकी भी राजनीतिमें इसी जोंककी सी दशा होती है। वे लोग समझते हैं कि- "इस समय जो कुछ है उससे अधिक अच्छा भी और कुछ हो सकता है, परन्तु जो कुछ है वह भी एक प्रकारसे अच्छा ही है।" लेकिन मध्यम स्थितिके लोगोंकी बात इन दोनों वर्गोंसे अलग होती है। कनिष्ठ वर्गकी अपेक्षा वे अधिक सुशिक्षित होते हैं और श्रेष्ठ वर्गके लोगोंकी तरह उनका पैर मान-मर्य्यादा और धन सम्पत्तिके कीचडमें फँसा हुआ नहीं होता। अतः देशके लोकमत और राष्ट्रीय आन्दोलनके नेता होनेके वे पूर्ण रूपसे योग्य होते हैं। प्रत्येक देशमें एक बार प्रस्थापित राजनीतिकी रुख इस प्रकार बदलनेमें बहुत ही कठिनता होती है जिसमें प्रजाका अधिक लाभ हो। और यह बात भी नहीं होती कि राजकीय आन्दोलनकी नदीमें चार हाथ चलाकर और परम्पराके प्रवाहकी धार तोड़कर किनारे तक पहुँचनेका साहस करनेवाले अच्छे तैराक कभी बीचमें ही न डूब जाते हों। तथापि इस कामके करनेके लिए तैराक पर स्वार्थका बोझा जितना ही कम हो उतना ही अच्छा होता है। सार्वजनिक आन्दोलनमें मध्यम स्थितिके लोग जो धनुषसे छोड़े हुए तीरके समान कार्य्यक्षम होते हैं उसका कारण यही है कि तीरके फलकी तरह उनका मस्तिष्क शिक्षाके कारण तीक्ष्ण रहता है और तीरके पंख-

की तरह उनके शरीरका भार हलका होता है। इसी लिए राष्ट्रीय कार्य्योंमें ये लक्ष्यवेध ठीक और शीघ्र कर सकते हैं।

आयर्लैण्डका क्या, और हिंदुस्तानका क्या, जिस देशका इतिहास देखिए, उक्त सिद्धान्तकी सत्यता प्रत्यक्ष हो जाती है। आयर्लैण्डके कनिष्ठ वर्गके लोगोने जहाँ तक कष्ट भोगा जा सकता था वहाँ तक कष्ट भोगा और जब उनसे कष्ट नहीं भोगा गया तब उन्होंने सिर्फ डंडोसे अक्षम्य रक्तपात करके अपना शोक-क्षोभ ऐसी रीतिसे शान्त किया, जो उनके तथा दूसरोंके लिए घातक था। ओक बॉयज, व्हाइट बॉयज, पीप आफ डे बॉइज, हार्टस आफ स्टील, रिब्बन सोसायटी, डिफेण्डर्स आदि अनेक प्रकारके विद्रोही और उपद्रवी लोग आयर्लैण्डमें हुए। प्राय ये सब स्वय ही नहीं समझते थे कि हमें क्या चाहिए, और जब वे समझते थे तब उनकी माँग बहुधा उनकी तत्कालीन स्थितिमें कष्ट देने वाली एकाध फुटकर बातके सम्बन्धमें ही होती थी। यह नहीं कहना चाहिए कि उन्होंने राष्ट्रीयता प्राप्त करनेके लिए रक्तपात किया था; उनके कष्ट वास्तविक थे। लेकिन उनके दगे-फसादसे अनेक वार निरपराधी लोग भी मारे जाते थे और तवेलेकी बला बन्दरके सिर जाती थी। उनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं होता था। उधर आयर्लैण्डके श्रेष्ठ वर्गके धनिक और जमींदार अपनी जमींदारीकी आमदनीसे ही चैन करते थे। राष्ट्र-कार्य्यका उन्हें स्वप्नमें भी ध्यान नहीं होता था। वास्तवमें जमींदारो और विशेषत सुशिक्षित जमींदारोंको ही राष्ट्र-कार्य्यमें नेता बनना चाहिए था। लेकिन आयर्लण्डके ये लोग बहुत ही अत्याचारी और व्यसनी थे। इनके यहाँ लडनेवाले बकरे, शिकारी कुत्ते, घुडदौडके घोडे, बडे बडे जुआरी, मस्त पहलवान और लडनेवाले, फरमायशी खाना पकानेवाले बावर्ची और शराबके घडे ही दिखाई पडते थे। इन्हें कोई अच्छी पुस्तक या सुशिक्षित स्नेही या

सात्त्विक और धार्म्मिक आश्रित अथवा सलाहकार नाम मात्रको भी न मिलता था। लेकिन लोग कहते है कि मुफ्तका माल मुफ्तमें ही जाता है। आयरिश जमींदार गरीव काश्तकारो पर अत्याचार करके लाखों रुपये लेते थे और उनका उक्त रीतियोंसे अपव्यय होता था। उन्हें शराबके नशेमें कलका ध्यान ही नहीं रहता था, तव जिस राष्ट्रकार्य्यको देखनेके लिए कई कई पीढियों तक नजर दौडानेकी आवश्यकता होती है भला वह राष्ट्र-कार्य्य उन्हें कैसे दिखाई देता? उक्त वर्णन पढकर हिन्दुस्तानके नवावों और अनेक ऐसे पुराने ऐयाश अमीर घरानोंका स्मरण होता है जो अव नष्ट हो गये है और जिनके लिए वहुत ही दुःख होता है। जिन लोगोंको स्वाभाविक रूपसे नेता वनना चाहिए था उनकी यह दशा होनेके कारण और आरम्भमें आयरिश लोगोंमें विना नेताके आगे कदम वढानेकी योग्यता और धैर्य्य न होनेके कारण उन्हें दूसरी श्रेणीके उन नेताओंका पल्ला पकडना पडता था जो केवल स्वार्थके कारण राजनीतिक कामोंमें पडते थे और उनके पीछे चलनेसे उन्हें सदा गड्ढेमें गिरना पडता था। आयर्लण्डकी यह स्थिति अठारहवीं शताब्दीके मध्य तक थी। परन्तु आगे चलकर वह धीरे धीरे वदल गई। धर्म्म-सहिष्णुता वढने लगी, कैथोलिक लोगोंके विरुद्ध वने हुए कानूनोंके वन्धन ढीले पडने लगे, शिक्षाका प्रचार होने लगा और इस प्रकार धीरे धीरे राष्ट्रीयताकी कल्पनाका अकुर फूटने लगा। इस समय मध्यम वर्गके सुशिक्षित लोग राष्ट्रीय कार्य्योंमें नेता वनने लगे और तवसे वे ही अवाधित रूपसे नेता वने रहे। इन वातोंके कारण वदली हुई परिस्थितिमे जमींदारोंका महत्त्व कम होने लगा। मध्यम और कनिष्ठ वर्गके लोगोंमें मेल हो जानेके कारण ऐसे कानून वनने लगे जो जमींदारोंके अत्याचार और लोभमें अडचन डालने लगे, तव उनकी ऑखोंका धुध दूर हुआ और वे भी राष्ट्रीय कार्य्यमे कुछ कुछ मन लगाने लगे।

आयर्लेण्डमें गत डेढसौ वर्षोंसे राष्ट्रीय कार्य्योंका नेतृत्त्व स्वतन्त्र पेशेवाले लोगोंके हाथमें ही रहा है और उनमें बेरिस्टर वकील और विद्याव्यसनी लोग ही प्रधान हैं। ग्रॅटन, फ्लड, शील, क्यूरन, ओकानेल, आइजिक बट आदि नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले और टोन, शीअर बन्धु आदि नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले सब बैरिस्टर ही थे। राबर्ट एमेट कालिजसे निकाला हुआ अंडर ग्रॅजुएट था, ल्यूकस चिकित्सक (एम डी) था, स्विफ्ट, मालिनो, बर्क्ले, बर्क आदि नेता अपनी विद्वत्ताके कारण जगत्-प्रसिद्ध थे। टामस मूर प्रसिद्ध कवि हो गया है। बडा डिलन, डेविस डफी, सुलिवान, ओब्रायन, ओकोनर, मेकार्थी आदि प्रसिद्ध विद्वान् समाचारपत्र-सम्पादक और लेखक थे। जान किओघ अच्छा व्यापारी और पार्नेल अच्छा जमींदार था। स्वय सम्पन्न होने पर भी देशकार्य्यमें नेता बनानेवाले अर्ल आफ चार्ल माट, लार्ड फिटजरल्ड, स्मिथ ओब्रायन सरीखे लोगोंके नाम बहुत कम मिलते है और इसका कारण ऊपर बतलाया जा चुका है। आयर्लेण्डके इतिहासके आरम्भमें ओनील, एडमण्ड आदि शूर राजा लडाई और विद्रोह करके इतिहासका नाम बदनाम कर गये, लेकिन उनका समय अँगरेजी राजसत्ताके पूर्णरूपसे स्थापित होनेसे बहुत पहले था और इसीलिए राष्ट्रीय आन्दोलनके इस सम्बन्धमें हमने विशेष रूपसे उनका नाम नहीं लिया। स्विफ्ट, मालिनो, आदिने प्रत्यक्ष राजकीय आन्दोलनमें कभी नेतृत्व ग्रहण नहीं किया था, परन्तु इनके लेख विद्वतापूर्ण, सारगर्भित और कड़े होते थे और उनके कारण समाजमें बडी खलबली मच जाती थी। मालिनो शास्त्रज्ञ और सच्चा तत्त्ववेत्ता था, तथापि उसमें उज्वल देशभक्ति थी, इसलिए उसने सन १६९८ में 'अँगरेजी कानूनोंसे आयर्लेण्डकी क्या स्थिति हुई' नामक पुस्तक लिखी और राजाको समर्पित

की। उसके कारण इग्लैण्डमें बडी खलवली मची और उस पुस्तकको राजद्रोही ठहराकर ब्रिटिश पार्लमेण्टने आज्ञा दी कि वह चौराहे पर जला दी जाय। स्विफ्ट राजनीतिज्ञ नहीं बल्कि धर्म्मोपदेशक था; तथापि उसने 'ड्रेपिअरके पत्र' नामक जो लेख प्रकाशित किये थे उनमें अँगरेजी शासन पर खूब बौछार की थी। इस लिए उसके लेखक पर मुकद्मा चलाना निश्चित हुआ और आयर्लैण्डके वाइसरायने इश्तहार दिया कि जो व्यक्ति उन पत्रोंके लेखकका पता लगा देगा उसे तीन हजार रुपया इनाम दिया जायगा। डा० ल्यूकसके लेख भी राजद्रोहात्मक और विद्रोहपूर्ण ठहराये और चौरस्ते पर जलाये गये थे। अधिकारियोंने इस बातकी कसम खा ली थी कि जिस तरह होगा उस तरह उसे अपराधी ठहराकर जेल भेजेंगे। इसलिए उसे कुछ दिनों तक आयर्लैण्ड छोडकर इग्लैण्डमें रहना और वहीं अपना चिकित्साका व्यवसाय करना पडा था। उसके सम्बन्धमें ग्रॅटनने कहा है कि—" आयर्लैण्डमें राष्ट्रीय स्वतत्रताकी कल्पनाकी नीव उसीने डाली थी। आयर्लैण्डके उस खाली समयमें स्विफ्टके उपरात भयकर शब्द 'स्वतत्रता' का उच्चारण करनेवाला ल्यूकस ही हुआ।" एडमण्ड बर्क इग्लैण्डमें रहता था । तो भी आयरिश लोकमतके प्रधान नेताओंमें उसकी गिनती होती थी । अमेरिकामे स्वतत्रताके लिए जो युद्ध हुआ था, बहुतसे अशोंमें उसका कारण बर्क ही था और आगे चलकर फ्रान्समें राज्यक्रांति करनेवाले लोगो पर उसने जो क्रोध दिखलाया था उसके कारण उसकी उस कीर्त्तिमें बट्टा नहीं लगता जो उसे स्वतत्रताके भक्त और मित्र होनेके कारण प्राप्त हुई थी। ग्रॅटन सदा अपना व्यवहार ऐसा रखता था जिसमें पार्लमेण्टमें एक पक्ष सदा उसके देशके कार्य्यके अनुकूल रहे और कभी झगडे-फसादमें न पडकर नियमानुमोदित रीतिसे आन्दोलन करता था।

लेकिन सन् १७८२ के लगभग जब आयरिश पार्लमेण्टकी स्वतन्त्रताका प्रश्न बहुत जोरों पर था तब यही राजनीतिज्ञ यह कहनेके लिए तैयार हो गया था, कि यदि आयर्लैण्डकी प्रार्थना इंग्लैण्ड स्वीकृत न करेगा, तो फिर जो होना होगा सो होगा। अधिकारियोंकी दृष्टिसे देखते हुए जन्मभर नियमानुमोदित रीतिसे और नम्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाले इस राजनीतिज्ञने जब इंग्लैण्डकी कठिनाइयोंसे लाभ उठाकर पार्लमेण्टके स्वतन्त्र होते ही प्रतिबन्धक व्यापारके कानूनोंको रद्द करनेकी बात उठाई थी, तब लिबरल पक्षके इस मित्रको ' कृतघ्न ' और ' भयकर विद्रोही ' कहनेमें इंग्लैण्डवालोंने कसर नहीं की, क्योंकि इसी सुप्रसिद्ध अवसर पर इसी नम्र राजनीतिज्ञने इंग्लैण्टके प्रति इस प्रकार उत्कृष्ट शब्दोंमें कहा था—" किसीका चाहे कितना ही बड़ा उपकार क्यों न होता हो, तो भी किसी पुरुषसे अपनी सदसद्विवेक बुद्धि, स्त्रीसे अपना पातिव्रत और राष्ट्रसे अपनी स्वतन्त्रता नष्ट करनेके लिए कहनेके समान अधमता ससारमें और कोई नहीं है।" सन् १७९८ के आयरिश-विद्रोहके समय इस नम्र राजनीतिज्ञ पर ' युनाइटेड आयरिशमैन ' नामक गुप्त मण्डलीमें सम्मिलित रहनेके अभियोग पर मुकदमा चलनेकी पूरी तैयारी हो गई थी। लेकिन वह प्रसग बड़ी कठिनाइयोंसे टला। अधिकारियोंके सन्देहका केवल इतना ही आधार था कि इस गुप्त मण्डलीका नीलसन नामक एक नेता ग्रटनके पास उससे यह पूछनेके लिए गया था कि-"क्या आप इस मण्डलीके सभासद होंगे?" और उस सभाके उद्देश्य आदि जो उसने ग्रटनके टेबुल पर रक्खे थे वे उसी तरह पड़े रह गये। लेकिन ग्रटनने उसी समय स्पष्ट कह दिया था कि-" मैं सभासद नहीं होऊँगा।" सन् १७९८ और १८०१ वाले विद्रोहोंका निषेध भी उसने स्पष्ट रूपसे किया था। परन्तु केवल गुप्त पुलिसकी रिपोर्ट उसके विरुद्ध थी। अधिकारियोंने

यह रिपोर्ट प्रसिद्ध कर दी और इसलिए राजाने प्रिवी कौन्सिलमेंसे उसका नाम निकाल दिया। इतना ही नहीं, बल्कि सन् १७८२ में जिन लोगोंने उसे मानपत्र दिया था और उसके चित्र सभामडपमें लगाये थे उन्हीं राजभक्त परन्तु विचारशून्य और डरपोक लोगोंने उसकी तसवीरें मकानसे निकाल कर फेंक दीं, उसे दिया हुआ मानपत्र फेर लिया और जिस रास्तेका नाम उसके नाम पर रक्खा था उस रास्ते परसे उसके नामकी तख्ती निकाल कर फेंक दी। लेकिन यह मनुष्य वास्तवमें इतना निस्पृह बुद्धिमान् और तेज मगर कानूनका ध्यान रखकर बोलनेवाला और कायदे-कानूनको माननेवाला था कि आगे चलकर जब वह पार्लमेंटका सभासद् हुआ तब बडे बडे अँगरेज राजनीतिज्ञ भी उसे देखकर आदरसे उसके सामने मस्तक झुकाते थे। फ्लड लोकपक्षका नेता माना जाता है। पार्लमेण्टके वादविवादमें उसकी कडी टीका और राजकर्म्मचारियोंकी शिकायत कभी कभी ग्रटनसे भी आगे बढ जाती थी। उसकी वार्तोंसे खयाल होता था कि यह विद्रोहका नेता भी होगा। तथापि सन् १७८०-८२ में जब आयरिश स्वयसेवकोंकी सेवामें सैनिक भाव संचार करनेका समय आया तब वह ठीक मौके पर पीछे हट गया। मन्त्रिमण्डलमें अथवा उसकी अधीनतामें बडी तनख्वाहकी नौकरी पानेकी आशा जन्मभर उसके मनमें बनी ही रही। शील और क्यूरन वक्ता थे। वे लोकपक्षकी ओरसे पार्लमेण्टमें सदा ही अधिकारियोंका विरोध करते थे और लोकमतके नेता माने जाते थे। तथापि शीलने आगे चलकर न्यायाधीशका पद स्वीकार किया और क्यूरन सन् १८०१ वाले विद्रोहके इतना प्रतिकूल था कि जब उसकी लड़कीके प्रेमी और भावी दामाद रावर्ट एमेट पर विद्रोहका मुकदमा चला तब उसने उसका वकालतनामा लेना भी नामज़ूर कर दिया। इन दोनों ही वक्ताओंने अनेक राजकीय अपराधियोंकी ओरसे बहुत अच्छी वकालत की थी,

तथापि समझमें नहीं आता कि उक्त कारणोंसे उनके उक्त व्यवहारोंके लिए हम उन्हें क्या कहें। केवल आइजिक वटको हम सच्चा नरम-दलका आदमी कह सकते है, क्योंकि उसने स्वय कभी नियमानुमोदित मार्गका अतिक्रमण नहीं किया और वह पार्नेलके विरोधके मार्गका भी विरोधी था। तथापि दूसरे पक्षसे देखते हुए नरम दलके इस नेताने फीनिअन सरीखे भयकर आन्दोलनमें मिले हुए और षड्यत्रकारियोंके मुकदमोंकी बहुत जोरोंसे पैरवी की थी, उसने प्रार्थना की थी कि फीनिअन लोगोंको एक दमसे क्षमा कर दिया जाय और जब बीस वर्षके अनुभवसे ब्रिटिश पार्लमेण्टसे आयरिश लोगोंको अधिकार मिलनेका उसका सुख-स्वप्न टूट गया तब उसने उतरती उमरमें आयरिश पार्लमेण्टको स्वतत्र करनेके आन्दोलनमें नेतृत्व ग्रहण किया। डेनियल ओकानेलके सम्बन्धमें तो यह कहना बहुत ही कठिन होता है कि वह नरम दलका था या गरम दलका। क्योंकि उसने अपना सारा जीवन न्यायाधीशों और अधिकारियोंकी फजीहत करने और उनके कामोंकी कटी टीका करनेमें ही बिताया। सेकडों सस्थायें स्थापित करके हजारों व्याख्यान देकर और लाखों आदमियोंकी सार्वजनिक सभायें करके देशके कोनेकोनेमें उसने ऐसा असन्तोष फैला दिया था कि मानों वह राज्य-क्रान्तिकी तैयारी ही कर रहा है और इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलनको वह बहुत जोरों पर ले आया था। स्वत द्वन्द्वयुद्ध करके उसने एक बार अपने प्रतिपक्षीके प्राण भी लिए थे। वह उन लोगोंमेंसे था, जो खुलकर यह कहा करते थे कि लोग तो स्वय कभी अधिकारियों पर आक्रमण नहीं करेंगे, पर अधिकारी यदि अपनी मर्य्यादा छोड कर खुराफात करेंगे तो ईश्वरकी कृपासे और राष्ट्रके भाग्यसे जो हो जाय वही अच्छा है। उसने सैनिक शब्दोंकी सहायतासे राष्ट्रीय आन्दोलनके अंगों और उपांगोंके नाम भी रक्खे थे। तथापि यह पहले ही कहा जा

चुका है कि नियमानुमोदित कार्य्यके लिए जब क्लानटार्फ नामक इतिहास-प्रसिद्ध स्थानमें लाखों आदमियोंकी अपूर्व सार्वजनिक महासभा करनेका संकल्प हो चुका था, तब उसने सभासे एक दिन पहले सन्ध्याके समय केवल वह जरासा कागज देखकर उक्त सभा रोक दी थी, जो सरकारकी आज्ञासे सभा रोकनेके सम्बन्धमें निकाला गया था, और मुकदमा चलने पर जब उसको सजा हो गई तब उसे एक अदना सिपाहीके पीछे पीछे जेल जाना पड़ा था। उसका यह सिद्धान्तिक वचन भी सभी लोग जानते है कि यदि निरपराधके रक्तकी एक बूँद गिरनेसे भी राष्ट्रीय मोक्ष मिलनेकी सम्भावना हो तो उसके लिए रक्त-पात न करो। उसके कार्य्य-क्रममें भिन्न भिन्न समयोंमें ब्रिटिश पार्लमेण्टसे न्याय कराने और स्वतत्र पार्लमेण्ट माँगनेकी दो विरोधी बातोंका समावेश हुआ था। डेविस, डिलन, डफी और सुलिवान ये नेता 'नेशन' पत्रके सम्पादक थे। उन लोगोंने इस पत्रके द्वारा आयरिश लोगोको सर्वोत्तम प्रकारका राष्ट्रीय धर्म्म सिखलाया था। वे ओकानेलको नरम दलका बतलाते और उसकी निन्दा करते थे। तथापि राष्ट्रीय धर्म्मका मुख्य उपदेशक डेविस स्वय मार काट और षड्यत्र आदिका विरोधी था।

तथापि यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि ऐसा कोई नहीं था, जो कानूनको श्रुति वचनके समान ही मानता हो। 'नेशन' पत्रके सम्पादक डफी पर तीन बार मुकदमा चला था। परन्तु अन्तमें वह अमेरिकामें जाकर एक उपनिवेशका प्रधान मन्त्री बना और पीछे सरकारने उसे 'सर' का खिताब भी दिया। डफीके बाद सुलीवान पहले 'नेशन' पत्रके सम्पादक-मण्डलमें था और अन्तमें वह उसका प्रधान सम्पादक बना। उसने भी अपने पत्रके द्वारा राष्ट्रधर्म्मकी बहुत अच्छी तरह शिक्षा दी थी। परन्तु उसके समयमें जो फीनिअन आन्दोलन हुआ था उसमें वह सम्मिलित नहीं था, और जब उसे मालूम हुआ

कि रासा आदि फीनिअन लोगोंने अपनी गुप्त मण्डलीमें मेरा नाम भी सम्मिलित कर लिया है तब उसने अपने समाचारपत्रमें स्पष्ट रूपसे गुप्त मण्डलका विरोध किया और अनेक युवकोंका मन उस आदोलनसे फेर दिया। माइकल डेविट फीनिअन मण्डलमें सम्मिलित था। पर-देशसे आयलैण्डमें अस्त्र शस्त्र आदि लानेके प्रयत्नमें वह पकड़ा गया था, जिससे उस पर मुकदमा चला और वह दस वर्षके लिए काले पानी भेज दिया गया। वहाँसे लौट कर उसने लैण्ड-लीगका आदोलन किया और फिर इस आदोलनके लिए भी उस पर मुकदमा चला। तथापि आगे चलकर पार्नेलकी तरह उसने भी अपने आपको गुप्त मण्डलसे अलित ही रक्खा। पार्नेलके समान अँगरेजी राज्यसे द्वेष करने वाला और कोई हुआ था या नहीं, इसमें सन्देह ही है। लैण्ड लीग तथा नेशनल लीग आदिके कामोंमें फीनिअन लोगोंके साथ खुले आम सम्बन्ध रखकर नियमानुमोदित आन्दोलनमें जहाँ तक हो सक्ता वह उन लोगोंसे सहायता लेनेमें कसर नहीं करता था। तथापि जब 'टाइम्स' पत्रने उस पर हाइडपार्कमें होनेवाले खूनके साथ सहानुभूति रखनेका मिथ्या अभियोग लगाया, तब उसे बहुत ही बुरा मालूम हुआ और उसने भरी पार्लमेण्टमें कहा कि इस अभियोगकी खुले-आम तहकीकात होनी चाहिए और तब कमीशनके सामने उसके वकीलने सिद्ध कर दिया कि किसी गुप्त वधकी मन्त्रणामें वह सम्मिलित नहीं था। पार्नेलके उपरान्तके आयरिश नेताओंने खुले आम और सार्वत्रिक बहिष्कार आरम्भ किया। तथापि हाइडपार्ककी हत्याके उपरान्त गत तीस वर्षोंमें आयलैण्टमें इस प्रकारका कोई विशेष राजनीतिक अत्याचार नहीं हुआ।

आयरिश लोकमतके जितने नेता हो गये है यदि उन सबका वृत्तान्त देखा जाय तो एक और बातका भी पता चलेगा। भिन्नभिन्न आयरिश

नेताओंके भिन्नभिन्न कार्य्योंके जो उदाहरण हमने दिये है उनसे प्रकट होगा कि सार्वजनिक कार्य्य करनेवाले व्यक्तियोंकी नीतिको सदा एक ही नाम नहीं दिया जा सकता। शासन-विधान वास्तवमें ऐसा ही है कि राजनीतिकी तरह उसे भी अनेक रूप धारण करने पडते हैं और अपने चारित्र्यके मूल तत्त्वका ध्यान रखकर काम करनेवाले शासन-विधायककी कृतिको भी देश काल और प्रसगके अनुसार भिन्नभिन्न रूप धारण करते हुए देखा जाता है। एक तो स्वय शासन-विधायकोंके स्वभावमें, बुद्धि और कार्य्य-क्षमतामें उनकी अवस्थाके अनुसार अन्तर पडनेकी सम्भावना होती है और ससारके किसी राष्ट्रमें ऐसा एक भी शासन-विधायक न मिलेगा, समाजमें उपस्थित किया हुआ जिसका पहला भाषण या लेख वैसा ही हो, जैसा कि उसका अन्तिम भाषण या लेख हो। उसकी देश-सम्बन्धिनी चिन्ता, निर्लोभता और योग्यता आदि सभी बाते उसके चरित्रके आरम्भसे अन्त तक एक ही तरहकी कायम रह सकती है, लेकिन जिस सार्वजनिक कृत्यको लोग अच्छा कहते हैं उसीको वे कल बुरा कहने लगेंगे और शायद फिर उसीको परसों अच्छा कहने लगेंगे। दूसरी बात यह है कि परिस्थिति बदलनेके कारण अथवा अपनी भूल आप ही समझ कर मनुष्य कभी कभी अपना मत बदलता है और यदि वह प्रामाणिक और निर्भय होता है तो वह स्पष्ट रूपसे यह कहनेमें जरा भी नही हिचकता कि मैने अपना मत बदल दिया है। इसी प्रकार बहुतसे काम करनेवाले आदमियोंकी मुख्य दृष्टि कार्य्य पर रहती है और वे अपनी सुसगतताकी प्रसिद्धिकी अपेक्षा कार्य्यसिद्धिका ही विशेष ध्यान रखते हैं। ग्लैडस्टन साहब पार्लमेण्टमें प्रवेश करनेके समय 'टोरी' थे, पर अन्तमें वे पक्के 'लिबरल' हो गये। चेंबरलेन साहबकी बात इससे बिलकुल ही उलटी हुई। लार्ड रोजबरी पहले आयरिश होमरूलके पक्षपाती थे, पर आगे चलकर वे बड़े भारी साम्राज्यवादी और होमरूलके शत्रु बन गये। यह कोई नहीं

कह सकता कि ये सब परिवर्त्तन केवल अपने हितके विचारसे अथवा मनोधैर्य्यके अभावके कारण हुए। आयरिश नेताओंमेंसे प्राय हर एक पर विसगतताका आरोप लाया जा सकता है और यदि इस विसगतताके दो ही उदाहरण देने हों तो डेनिअल ओकानेल और आइजिक वट दिये जा सकते है। साथ ही सार्वजनिक काम करनेवालेका लोग जो अनेक अवसरों पर आदर करते है वे उसके द्वारा होनेवाली प्रत्यक्ष कार्य्य-सिद्धिका आदर करते हैं, उसके प्रयत्न और परिश्रम का आदर नहीं करते। क्योंकि परिणामरहित प्रयत्न और फलरहित कर्म्मकी यद्यपि एक प्रकारकी विशेष योग्यता होती है, तथापि उसके समझनेके लिए सर्वसाधारणका मन यथेष्ट सस्कृत नहीं होता। यह कहना सहज है कि कर्म्मके फलकी चिन्ता न करो, पर इस बातको प्रत्यक्ष आचरणमें लाना बहुत ही कठिन होता है और जनताके लिए तो वह और भी कठिन होता है। एक बात यह भी है कि सार्वजनिक कार्य्य करनेवालेकी विजयश्री और प्रसिद्धिका तेज अधिक समयतक समान रूपसे नहीं ठहरता, उस पर बराबर पालिश करते रहनेकी आवश्यकता होती है। लेकिन न तो ऐसे कार्य्य या प्रसग ही किसीके हाथकी बात है, जिनसे कीर्त्ति बनाये रखनेके लिए बराबर पालिश की जाया करे और न यश ही किसीके अधिकारमें है। इसलिए इतिहासमें दो प्रकारके नेता मिलते है। एक प्रकारके नेताओंके द्वारा उनके जीवनमें एकाध ऐसा भारी काम हो जाता है कि उस समय उसके कारण उन्हें अनुपम कीर्त्ति प्राप्त होती है। लेकिन यह यश स्थायी नहीं होता, शीघ्र ही नसीब मलटा खाता है और आगे चलकर चाहे वे जन्मभर रगटते या पचते ही क्यो न रहें, पर कोई उनके प्रति साधारण कृतज्ञता भी प्रकट नहीं करता। दूसरे प्रकारके नेताओंकी यह बात है कि चाहे उनमें अलौकिक कृत्य करनेकी योग्यता न होनेके कारण कहिए और चाहे उन्हें वैसा अवसर न मिलनेके कारण कहिए, यद्यपि उनके कार्य्योंसे

लोगोंकी ऑखोंमें चकाचौध नहीं हो जाती, तथापि उनके यशोनिर्झरका पानी बारहों मास बना रहता है और उन्हें जन्मभर इस बातका यश मिलता रहता है कि वे लौकिक दृष्टिसे अथवा अपने ही मनसे थोडा बहुत देशकार्य्य करते रहते है। पहले प्रकारके नेता एक दृष्टिसे देखते हुए अवतारी होते हैं और उनके अवतारवाले कामके समाप्त होनेके उपरान्तका समय, उनके लिए भी और लोगोंके लिए भी, एक प्रकारसे बुरी ही तरहसे बीतता है। आयरिश इतिहासमें इस प्रकारके दो तीन स्पष्ट उदाहरण है। सन् १७८२ में जब ग्रटनके प्रयत्नसे आयरिश पार्लमेण्ट स्वतन्त्र हुई, तब उसकी अवस्था लगभग तीस वर्षकी थी। लेकिन कुछ ऐसा विलक्षण सयोग हुआ कि एक ही समयमें देशमें राष्ट्रीय आंदोलन जोरों पर आया, प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका धार्मिक वैर नष्ट हुआ और अमेरिकामें ॲगरेज परास्त हुए। उस समय ग्रटन सरीखे चलते हुए राजनीतिज्ञ और वक्ताने पार्लमेण्टमें प्रवेश करते ही जो कुछ कहा वही होता गया और आयरिश लोगोंके पार्लमेण्टकी स्वतन्त्रता मॉगते ही ब्रिटिश पार्लमेण्टने वह स्वतत्रता उन्हें दे दी। उस समय लोगोंने एक स्वरसे ग्रटनको 'राष्ट्रजनक' की पदवी दे दी, केवल इतना ही नही बल्कि पार्लमेण्टने तुरन्त एक लाख पाउण्ड अर्थात् उस समयके अनुसार दस लाख रुपयेकी रकम उसे इस लिए देना निश्चय किया कि जिसमें वह आगेसे बैरिस्टरी न करे और आरामसे बैठकर केवल देश-कार्य्यमें मन लगा सके। लेकिन ग्रटन इतनी बडी रकम नहीं लेता था, इस लिए उससे कहा गया कि कमसे कम पचास हजार पाउण्ड तो तुम अवश्य लो, जिससे लाचार होकर वह रकम उसने लेली। इसके उपरान्त वकालतका काम छोडकर उसने सारा जीवन केवल लोकसेवाके काममें बिताया। लेकिन इस अवतारी कामके हो जानेके उपरान्त उसने अपने जीवनके जो प्राय: तीस वर्ष और बिताये, उनमें स्वय उसका कोई दोष न होने पर भी उसके यशका ह्रास होने लगा।

और अन्तमें वह यश प्राय नष्ट हो गया। पर इस बीचमें वास्तवमें उसने बडे ही महत्त्वके काम किये थे। सन् १७८२ में जब पार्लमेंट स्वतत्र हो गई तब उसके उपरान्त अट्ठारह वर्षतक उसने उस पार्लमेंटके सुधारके लिए अविश्रात परिश्रम किया। लेकिन अँगरेज जमींदार, रिश्वत देकर बहकाये हुए सभासद और अँगरेजी मन्त्री आदि सभी इस सुधारके विरुद्ध थे, इस लिए उसे निराश होना पडा। सन् १७९८ में उल्फटोनका विद्रोह हुआ और शान्तिके लिए ग्रटनने जो उद्योग किया था वह व्यर्थ हुआ और सन् १८०१ में आयरिश पार्लमेंट तोडकर ब्रिटिश पार्लमेंटमें मिला दी गई। सन् १७९८ के उपरान्त ग्रटन उद्विग्न होकर कुछ दिनोंके लिए विदेश चला गया था। उस समय उस पर राजद्रोहके षड्यत्रमें सम्मिलित रहनेका मिथ्या सन्देह किया गया, जिसके कारण उसे बहुत कष्ट उठाना पडा। इसके उपरान्त जब शान्ति हो गई तब कई वर्षोंतक वह ब्रिटिश पार्लमेंटका सभासद होकर काम करता रहा। उस समय अँगरेज राजनीतिज्ञ भी उसका आदर करते थे। पर सन् १७८२ के ग्रटन ओर अबके ग्रटनमें जमीन और आसमानका फरक था। वास्तवमें स्वय प्रोटेस्टेण्ट होकर भी १७८२ के उपरान्त उसने अपना सारा समय रोमन कैथोलिक लोगोंको स्वतत्रता दिलवानेके लिए अत्यत परिश्रम करनेमें बिताया। यदि आयरिश लोगोंके मित्र और शत्रु दोनोंसे ही देशभक्तिके लिए किसीको समान धन्यवाद मिला तो वह ग्रटनको ही मिला था। इतना होनेपर भी आगे चलकर स्वय आयरिश लोग ही उसका आदर न करने लगे। उसकी मृत्युके कुछ ही पहले जो चुनाव हुआ था उसमें दगा हो-गया था, जिसमें उसे जख्मी होना पडा था और अन्तमें आयरिश स्वतत्रताके सम्बन्धमें निराश होकर उसे मर ही जाना पडा। डेनिअल ओकानेलके समान लोकप्रिय नेता आयर्लेण्डमे आज तक और कोई हुआ ही नहीं। वह आयरिश लोगोंका अनभिषिक्त राजा ही था, और

इसमें भी कोई कमी न रहे, इस लिए एक इतिहासप्रसिद्ध स्थानकी बडी भारी सार्वजनिक सभामें उसके भक्तोंने उसके सिरपर राष्ट्रीय चिह्नका राजमुकुट भी प्रत्यक्ष रूपसे रख दिया था। लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है क्लानटार्फमें जो भारी सभा होनेवाली थी, उसे रोकनेके लिए सरकारने घोषणपत्र निकाला जिसे उसने मान लिया। इससे उसी समय उसकी सारे जन्मकी प्राप्त की हुई लोकप्रियता क्षणभरमें नष्ट हो गई और फिर उसके सब कुछ करने पर भी गया हुआ समय न लौटा। ओकानेलकी लोकप्रियता बहुतसे अंशोंमें सकारण थी। सौ बरसतक लात खाकर गिरे रहनेवाले कैथोलिक लोगोंमें पहला बैरिस्टर और पार्लमेण्टका पहला समासद ओकानेल ही था। अपने कामोंमें उसने वकालतकी चतुरता, वक्तृत्व, धैर्य्य और परोपकार वृत्तिकी सहायता लेकर समाज पर विलक्षण प्रभाव डाला था। उस समय उसके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध हो गया था कि सरकारी अत्याचारसे पीडित अनाथोंका ओकानेल ही नाथ है और इसीलिए उसने जो काम उठाया उसका महत्त्व बढा। सन् १८२९ में जब कैथोलिक लोगोंको स्वतत्रता दिलानेका उसका भगीरथ प्रयत्न सफल हुआ तब उसकी कीर्ति चरम सीमा तक पहुँच गई। उसे इस बातका अहकार हुआ कि अब मै जो आन्दोलन आरम्भ करूँगा, वह अवश्य सफल होगा। इसलिए उसने आन्दोलन आरम्भ किया, जिसने बहुत कुछ रग भी पकडा। लेकिन उसका अवतार वास्तवमें सन् १८२९ में ही समाप्त हो गया था, इस-लिए उसके उपरान्त उसने जो आन्दोलन किये उनमें सफलता नहीं हुई और अधिकारियोंने उसका मुँह बद कर दिया। सन् १८४४ में उस पर मुकदमा चला और उसे नौ महीनेका दण्ड हुआ। उस समय उसकी बातें माननेवाले और उसके सिर पर मुकुट रखनेवाले लाखों आदमियोंमेंसे एकने भी उसके लिए हथियार न उठाया। युवक लोग उसे नरम दलका बतलाने लगे। यद्यपि अपीलमें वह छूट गया तथापि

एक बार उसकी जो लोकप्रियता नष्ट हुई वह नष्ट ही हो गई। पार्नेल-की भी यही बात है। लैण्ड लीग और नेशनल लीगके सम्बन्धमें उसने जो प्रयत्न किये थे वे बडे ही महत्त्वके थे। पार्लमेण्टमें उसने विरोधका जो मार्ग ग्रहण किया था उसमें उसे सफलता हुई और इसलिए उसे ऐसा यश मिला जैसा और किसी नेताको पार्लमेण्टमें नहीं मिला था। हाइड पार्कमें होनेवाले खूनके साथ उसका जो सम्बन्ध जोडा गया था और उसके लिए जो कमिशन नियुक्त हुआ था, उसके कारण उसका वह यश दूना हो गया और जिस दिन कमीशनने उसके अनुकूल फैसला किया उस दिन तो उसकी कीर्त्ति चरम सीमातक पहुँच गई। परन्तु शीघ्र ही एक स्त्रीके एक मामलेमें उसका यश जो एक बार नष्ट हुआ वह सदाके लिए नष्ट ही हो गया। ग्लैडस्टन तथा अन्य लिबरल राजनीतिज्ञोंने उसे छोड दिया। इतना ही नहीं बल्कि उसके पक्षके लोगोंने भी उसे नेतृत्वसे पदच्युत किया और दुःख तथा अपयश-में ही उसका अन्त हुआ। आज अनेक वर्षोंके उपरान्त केवल ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेवालोंको ग्रटन, ओकानेल और पार्नेलकी योग्यता निस्सन्देह उससे कहीं अधिक जान पड़ेगी, जितनी उसके आखिरी दिनोंमें स्वय उसके देशभाइयोंको जान पडी थी। तथापि अनेक अवसरों पर सार्वजनिक काम करनेवाले नेताओंका चरित्र नदीके प्रवाहके समान होता है। आज उसका प्रवाह एक ओर है और दूसरी ओर साफ मैदान दिखाई देता है, और कल देखिए तो जहाँ मैदान था वहाँ जोरोंसे पानी बह रहा है और पानीवाली जगह पर साफ मैदान दिखाई देता है। ऐसी अवस्थामें वे ही लोग वास्तवमें धन्य है, जो अपने सिद्धान्त और अपने तत्त्व, अपने उद्दिष्ट और अपनी कार्य्यसिद्धि, सबका प्रवाह, आरम्भसे अन्त तक चट्टान तोडकर उसके बीचसे बहनेवाली नदीकी तरह स्वच्छ, निर्मल, एकमार्गी और अनिरुद्ध रख सकें। लेकिन इस-प्रकार धन्यवाद प्राप्त करनेवाले लोग वास्तवमें बहुत ही कम होते है।

९ आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तान।



साम्य-दर्शन। यहाँ तक हमने आयर्लैण्डका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास बतलाया है। इससे पाठकोंके ध्यानमें यह बात आ गई होगी कि किन किन बातोंमें आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानमें विशेष समानता है। इसके लिए आयर्लैण्डके इतिहासको केवल स्थूल उपमानके रूपमें लेना चाहिए। सब तरफसे और फुटकर बातोंमें भी समानता ढूँढने बैठना ठीक उसी प्रकार अयुक्तिक होगा जिस प्रकार यह कहने पर कि—'यह स्त्री गजगामिनी है' यह पूछना कि—'तब फिर उसका सूँड दिखलाओ।' सृष्टिमें जितना साम्य है उतना ही वैषम्य भी है। करोडों आदमियोंमें जिस प्रकार ठीक एक ही आकृतिके दो आदमियोका मिलना कठिन है इसी प्रकार ऐसे दो राष्ट्रोंका मिलना भी कठिन है, जिनके इतिहास ठीक एकसे हों। तथापि मनुष्यका स्वभाव सब स्थानोंमें एक ही होता है और पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागोंमें भौतिक तत्त्व बहुधा समान लक्षणात्मक ही होते है। इस लिए मनुष्योंकी तरह राष्ट्रोंमें भी इतना साधर्म्य अवश्य मिल सकता है, जिससे वस्तुतः नहीं तो स्वरूपतः भ्रम अवश्य उत्पन्न हो जाय। साधर्म्य और वैधर्म्य ढूँढ निकालनेके लिए एक प्रकारकी मार्मिकताकी आवश्यक्ता होती है। यदि मनुष्य मार्मिक हो, तो भेद न भूलकर वह साधर्म्य देख सकता है। हिन्दुस्तान और आयर्लैण्डके साधर्म्य और वैधर्म्य देखनेका काम मार्मिकतापूर्वक और केवल सत्यके अन्वेषणकी दृष्टिसे करना चाहिए, नहीं तो आदमी चक्करमें पड जायगा। अस्तु, अब हम पहले साधर्म्यका विचार करते हैं।

सभ्यताके अगों और उपागोंकी दृष्टिसे देखते हुए आयर्लण्ड और हिन्दुस्तानमें बहुत कुछ समानता है। सेल्ट और ट्यूरन ये दोंनों

प्रकारके लोग एक ही नाम 'यूरोपियनके अन्तर्गत अवश्य आ जाते है' तथापि स्वभाव और गुणकी दृष्टिसे उनमें बहुत अन्तर है। आयरिश लोग सेल्ट शाखामेंके है और अँगरेज लोग ट्यूटन शाखामेंके। आयरिश मानव कुल भाषा, स्वभावगुण और चरित्रकी दृष्टिसे अँगरेज मानव-कुलकी अपेक्षा भारतवर्षके आर्य्य मानव-कुलके अधिक समीप है। आयरिश भाषा बहुत साफ और सस्कृतकी तरह मृदुव्यजनपूर्ण है। इतना ही नहीं बल्कि तुलनात्मक भाषा-शास्त्रके विद्वानोंका मत है कि रूप और विकृति आदिकी दृष्टिसे आयरिश भाषा वस्तुत सस्कृत भाषाके जितना समीप है उतना वह युरोपियन भाषाओंके भी समीप नहीं है। सभ्यताकी प्रगतिकी दृष्टिसे विचार करते हुए आयरिश लोगों और भारतवासियोंके गुण और दोष एक ही स्वरूपके है। ससारके इतिहासमें दो प्रकारके लोग दिखाई देते है। एक प्रकारके लोगोंमें सभ्यताका जन्म बहुत जल्दी होता है, लेकिन कुछ निश्चित सीमातक पहुँचनेके उपरान्त उसकी गतिका अन्त हो जाता है। दूसरे प्रकारके लोगोंमें सभ्यताका जन्म बहुत देरसे होता है, परन्तु जब एक बार उस सभ्यताका आरम्भ हो जाता है तब फिर उसमें बराबर उन्नति ही होती जाती है। कुछ लडके बचपनमें बडे तेज होते है और उनकी बुद्धि शीघ्र पक्व होती है, और कुछ लडके बचपनमे बिलकुल बोदे होते है परन्तु उनकी बुद्धि बराबर बढती जाती है। दोनों ही तरहके लड़कोंके सम्बन्धमें उनके बचपनके अनुभवसे जो तर्क या अनुमान किया जाता है वह उनके बडे होने पर ठीक नहीं उतरता और उनके चरित्रक्रममें बहुत बडा और स्पष्ट अन्तर पड जाता है। हिन्दुस्तानकी तरह आयर्लैण्डमें भी सभ्यताका उदय बहुत प्राचीन कालमें हुआ था।

जिस समय इग्लैडके लोग शरीरमें रग पोतकर और खाल ओढकर जगलोंमें भटकते फिरते थे, उस समय हिन्दुस्तानके ऋषि गहन धर्म-

विचारमें निमग्न रहते थे और साथ ही ऐहिक प्रवृत्तिके लोग भी उत्तम प्रकारका सासारिक सुख भोगते थे। आयर्लैंड पर जिससमय विदेशियोंके आक्रमण हुए उससमय सेल्टिक मानव-वंशके लोग बहुत सभ्य थे। नारमन लोगोंकी अपेक्षा आयरिश लोगोंकी भाषा अधिक प्रौढ़ और अर्थपूर्ण, कविता अधिक सरस और सगीत अधिक मधुर होता है। परन्तु राजकीय दृष्टिसे आत्म-सरक्षण और प्रगतिके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है वे गुण आयरिश लोगोंमें उतने नहीं थे जितने होने चाहिए। हिन्दुस्तान पर जिस समय मुसलमानोंके आक्रमण हुए थे, उस समय हिन्दुओंके सामने सभ्यताकी दृष्टिसे देखते हुए विदेशी लोग वैसे ही दिखाई पढनेके योग्य थे जैसे दादाके सामने पोते। लेकिन ससारके इतिहासमें राजकीय पराक्रम और सभ्यताका मेल सदा नहीं दिखाई देता। इन दोनोंकी प्रगतिके नियम अलग अलग है और इसीलिए पाँचवीं और छठी शताब्दीमें दक्षिण युरोपमे जो यह चमत्कार दिखलाई दिया कि जगली लोगोंने सभ्य लोगोंको जीत लिया, ग्यारहवीं शताब्दीमें वही चमत्कार आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानमें दिखलाई दिया।

राज्य प्राप्त करनेके मार्ग इतिहासमें प्राय. एक ही स्वरूपके हुआ करते है। जिस प्रकार स्त्री-विषयक लोभके कारण ॲंगरेजोंका प्रवेश आयर्लैण्डमें हुआ उसी प्रकार स्त्री-कर्तृक लोभके कारण उनका प्रवेश हिन्दुस्तानके कमसे कम एक भागमें हुआ। परस्त्रीलम्पट मेकडरमाट और स्वस्त्रीलम्पट रघुनाथराव पेशवाकी समानता तुरन्त ही लोगोंको ज्ञात हो जाती है। इसी प्रकार प्रजाजनोंमे भेद रखकर अथवा बढाकर राजसत्ता प्रवल करनेकी युक्ति इतिहासमें नई नहीं है। यदि यह देखा जाय कि आयर्लैण्डमें प्रोटेस्टेण्ट कैथोलिक लोगोका धर्म्म वैर ॲंगरेजोंके लिए कितना उपयोगी हुआ और विजातीय जमींदारोंके वहाँ वसनेके समयसे स्वतत्रताकी अभिलाषा करनेवाली

आयरिश प्रजाका किस प्रकार दमन हुआ, तो इस बातका पता तुरन्त लग जायगा कि भारतवर्षमें अँगरेजी सरकार हमारे मुसलमान भाइ-योंको क्यों इतना सुहलाती और पुचकारती और आसाम प्रान्तमें बसे हुए अँगरेजोंकी मनमानी कार्रवाइयोंसे क्यों इस प्रकार आँख बचाती है। जब यह देखा जाता है कि आयर्लैण्डके वीरोंने आपसमें ही लडकर किस प्रकार परायोंका हित साधन किया, तो भारतवर्षमें भी 'आत्मै-व रिपुरात्मन' वाले दैवी वचनकी सत्यताका प्रमाण मिल जाता है। इसी प्रकार जब यह देखा जाता है कि आयरिश राजाओंके मनमें स्वतंत्रताकी इच्छा उत्पन्न होने पर भी भिन्न भिन्न अवसरों पर अपने अपने बल पर परन्तु केवल अपना ही हित करनेके लिए वे आपसमें किस प्रकार एक दूसरेसे लड़े और ससारको ईसापनीतिमेंकी 'किसान और उसके लडके' वाली कहानीका किस प्रकार अच्छा उदाहरण दिखला दिया, तो पाठकोंको तुरन्त यह जान पडने लगेगा कि हम हिन्दुस्तानके पेशवाओ, सिन्धिया, होलकर, मोगलों, अमीरों और सि-क्खोंके भिन्न भिन्न अवसरों पर किये और विफल हुए प्रयत्नोंका प्रतिबिम्ब आयरिश इतिहासमें देख रहे है। सन् १६४१ वाले आयर्लैण्डके विद्रोह और सन् १८५७ वाले भारतवर्षके विद्रोहमे बहुत बडी समानता है। दोनोंके ही मूलमें धर्म्मान्धता और जातिद्वेष था और पीछेसे उन्हें गुप्त राजकीय हेतुओंका सहारा था, पर यह भी पता लगता है कि वह सहारा यथेष्ट नहीं था। इन दोनों विद्रोहोंमें दोनों पक्षोंमें समान रूपसे निन्दनीय और अनुचित कृत्य किये गये और दोनोंमें ही विशिष्ट वर्गके देशी लोगोंने आवेशमें आकर अपनी बहादुरीका कमाल कर दिया। तथापि अन्तमें स्वय अँगरेज अपने अमूल्य गुण सहिष्णुताके कारण और एक दूसरे वर्गके देशी लोगोंकी सहायताके कारण इन विद्रोहोंको शान्त कर सके। स्वर्गीय श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्तकी पुस्त-

कसे पाठकोंको यह बात माळूम होगी कि सत्रहवीं शताब्दीमें आयलैंण्डमें व्यापारसंबधी जो अन्यायपूर्ण नियम बने थे, हिंदुस्तानमें उनकी समानता ईस्ट इंडिया कम्पनीकी आरम्भिक अमलदारीमें बंगाल और मदरास प्रान्तोंमें मिलेगी। परन्तु यह मानना ही पडेगा कि इस विशिष्ट विषयमें अधिक स्पष्ट समानता नहीं है। यदि यह मान लिया जाय कि आयलैंण्डके प्रोटेस्टेट जमींदारोंकी जगह भारतवर्षमे स्वयं अॅगरेजी सरकार है तो उनके इतिहासके एक अगकी समानता उस आदोलनसे सिद्ध हो जायगी जो इन दोनों देशोंमें जमीनके संबंधमें हो रहे है। यद्यपि अभी हालमें आयलैंडवाले भारतवासियोंसे बहुत आगे बढ गये है, तथापि स्वराज्य अर्थात् बहुतसे अंशोंमे स्वतत्र पार्लमेण्टके अधिकारकी उच्चाकाक्षाके सबधमें भारतवासियों और आयरिश लोगोंमें पूरी पूरी समानता है। ओर इस अन्तिम साध्यको प्राप्त करनेके लिए लिबरल पक्षके आसरे पर प्रार्थना ओर डेप्युटेशन आदिकी सहायतासे विलायतका लोकमत अनुकूल करने और उसके बल पर पार्लमेण्टसे सुधार करा लेनेके साधनों और मार्गोमें आयलैंण्ड और हिन्दुस्थानमें पहले जो समानता थी, सौभाग्यवश भारतमें इधर दस बारह वर्षसे अच्छे ढग पर होनेवाले राष्ट्रीय आदोलन और दुर्भाग्यवश कुछ मूर्खोके द्वारा होनेवाले अनुचित साहसपूर्ण कृत्योंसे उस समानताकी ओर भी अधिक पूर्ति हो जाती है।

इन दोनों देशोंका समीकरण करते हुए यह पता चलेगा कि अॅगरेजी सत्ता अर्थात् सम्राट् जार्जके नियमित अधिकार, पार्लमेण्टके अनियमित अधिकार, स्टेट सेक्रेटरी ओर वाइसरायके प्रत्यक्ष शासन, प्रजाकी पूर्ण परतन्त्रता आदि बातोंमे ये दोनों देश एक समान ही नहीं है बल्कि प्रत्यक्ष एक ही है। दोनों ही देश अकल्पित रीतिसे एक ही साम्राज्यके अवयव हुए, दोनोंको ही अपनी वर्तमान

स्थितिके सम्बन्धमें सन्तोप नहीं हुआ ओर उनके मनमें स्वय ही अपना कारबार चलानेकी इच्छा उत्पन्न हुई । दोनोंको ही इग्लैण्डके राजाका अधिराज्य मान्य है और कानूनके द्वारा जो राजसत्ता स्थापित हुई है उसे नष्ट करनेकी उनकी इच्छा नहीं है । लेकिन जिस यत्रके योगसे उस राजसत्ताका काम चलाया जाता है, साधारणत दोनो ही राष्ट्रोंके लोगोंकी समान रूपसे यह इच्छा है कि उस यत्रकी रचनामें कुछ परिवर्त्तन करके उसे अधिक लोकोपयोगी बनाया जाय और उसकी गति, दिशा आदि बाते निश्चित करनेमें प्रजासे अबकी अपेक्षा अधिक सहायता ली जाय । भारतवासी, आज कल जो यह कहते है कि हमें औपनिवेशिक स्वराज्य चाहिए उसके सम्बन्धमें कुछ लोग यह आक्षेप करते है कि साम्राज्यके भिन्न भिन्न भागोंकी परिस्थिति एक दूसरेसे भिन्न होती है, इसलिए औपनिवेशिक स्वराज्य मॉगना पागलपन है। एक दृष्टिसे देखते हुए यह आक्षेप ठीक भी है । क्यों कि आयर्लण्ड और हिन्दुस्तान दोनोंको स्वराज्य तो अवश्य चाहिए, तथापि यह बात नहीं है कि किसी एक उपनिवेशके स्वराज्यका नमूना बिना किसी प्रकारका परिवर्त्तन किये ज्योका त्यों इन दोनोंमेंसे किसीके लिए भी उपयोगी होगा । स्वय आयर्लण्डने जो स्वराज्य मॉगा है उसके रूप आदिमें गत सौ वर्षोंमें दो तीन बार परिवर्त्तन हुए । ग्रटन (१७८२) ओकानेल (१८४४) आयजिक बट (१८७३) और पार्नेल (१८८०–९०) के मॉगे हुए स्वराज्योंमें भी एक दूसरेसे कुछ न कुछ अन्तर था । और तो और, स्वयं ग्लैडस्टन साहबने सन् १८८६ और १८९३ मे जो दो होमरूल बिल पार्लमेण्टके सामने उपस्थित किये, उन दोनोंमें भी बहुत अन्तर था । हिन्दुस्तानके सम्बन्धमें विचार करते समय, यदि उसे स्वराज्य अर्थात् स्वतत्र पार्लमेण्ट मिलनेका अवसर आ जाय तो शायद इन सबसे भिन्न एक अलग नमूना तैयार करना पडेगा। परन्तु ये सब स्वरूप सूक्ष्म

दृष्टिसे देखते हुए एक दूसरेसे चाहे कितने ही भिन्न क्यों न हों, तथापि उनका स्थूल स्वरूप एक ही होगा। और वह स्वरूप यह है कि इंग्लैंड और हिन्दुस्तान दोनोंको जोडनेके लिए बादशाही सत्ताके 'सोनेकी सिकडी' के समान अबाधित रहते हुए कर लगाने, वसूल किये हुए करोंको खर्च करने, कायदेकानून बनाने और राजकार्य्यमें भूल करने पर अधिकारियोंको जवाब-देह बनाने आदि ऐसी बातोंका अधिकार हो। यही अधिकार दोनों देश माँग रहे हैं, जिनका सच्चे स्वराज्यमें समावेश होता है। आयर्लैण्डमें पहले एक ऐसी ही पार्लमेंट थी, जो सन् १८०१ में टूट गई। वही पार्लमेंट अथवा उसी तरहकी दूसरी पार्लमेण्ट आयरिश लोग चाहते हैं। हिन्दुस्तानके लिए पार्लमेंट बिलकुल नई चीज है। परन्तु वे उसे चाहते हैं। आयर्लैंडकी यह आकांक्षा यद्यपि पूरी नहीं हुई है, तथापि सन् १९१४ वाले होमरूल बिलके पास हो जानेसे उसके कुछ अंशोंकी पूर्ति अवश्य हो गई है, पर भारतवर्षकी आकांक्षा दिन पर दिन बलवती होती जा रही है और यहाँ इस बातका प्रयत्न किया जा रहा है कि होमरूल या स्वराज्यके आन्दोलनमें यथासाध्य शीघ्र सफलता प्राप्त हो, और वर्तमान युद्धकी समाप्ति पर इस आकांक्षाके पूर्ण रूपसे नहीं तो आंशिक रूपसे अवश्य पूर्ण होनेकी सम्भावना है। क्योंकि विलायतके अधिकारियों और प्रजाका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जा रहा है। और आयर्लैण्डको तो वर्तमान युद्धकी समाप्तिसे पहले ही सच्चे स्वराज्य-सुखका कुछ अंश 'कनवेन्शन' के सहमत होने पर भोगनेको मिल जायगा।

यदि राजकीय विषयको छोड दिया तो भी अनेक बातें ऐसी हैं, जिनमें आयर्लैण्ड तथा हिन्दुस्तानमें बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। दोनों ही देशोंके लोगोंका गुजारा प्रायः खेती पर ही होता है और दोनों ही देशोंमें व्यापार और शिल्प आदि बहुत ही कम है। दोनों

ही देशोंके किसान बहुत दरिद्र है, उन्हें जल्दी जल्दी अकालकी पीड़ा होती है और उससे उन्हें बहुत कष्ट होता है। दोनों ही देशोंमें धर्म्मोपदेशकोंकी बहुत प्रबलता है। विधि, नियम, शब्द-प्रमाण और मूर्त्ति-पूजा आदिके कारण आयरिश लोगोंके कैथोलिक धर्म्म और सर्वसाधारण हिन्दू धर्म्ममें बहुत कुछ समानता दिखाई देती है और प्रत्यक्ष धर्म्म-व्यवहारमें हिन्दुस्तानके लोगोंकी तरह आयरिश लोग भी बहुत ही दृढ़निग्रही, श्रद्धालु, भावुक और दयालु है। दोनों देशोंके लोगोंके गुणों और दोषोंमें कुछ विशेष प्रकारका साधर्म्य दिखाई देता है। आयरिश लोग बुद्धिमान परन्तु चचल, उत्साही परन्तु जल्दबाज, प्रेमी परन्तु सीधे और वक्ता परन्तु वक्तृत्वलुब्ध होते हैं। आयरिश लोगोंके मनकी दशा बहुतसे अशोंमें बगालियोंके मनकी दशाके समान है। उनके मन पर प्रत्येक बातका बहुत जल्दी प्रभाव होता है, परन्तु वह प्रभाव दृढ नहीं होता, और यदि हो भी तो अधिक समय तक नहीं ठहरता। लालित्यकी दृष्टिसे उनकी कविता और कला सुन्दर होती है, परन्तु उनमें गुरुता या विचारोंकी गहनता अधिक नहीं होती। उनकी कल्पना-शक्ति भारी होती है, पर उनके सकल्प गम्भीर और दृढ़ नहीं होते। इसी लिए वे कोई स्थायी काम नहीं कर सकते। आयरिश लोगोंके समान मिलनसार, विनोदी और आनन्द मगल करनेवाले लोग दूसरे स्थानमें कम ही मिलेंगे। परन्तु उनके गुणोंके साथ वक्रीपन, अविचार, अदूरदर्शिता आदि अवगुण भी मिले हुए है, इसलिए उनके गुणोंका यथेष्ट फल नहीं होता। आयरिश जाति रणशूर है। अँगरेजी जल और स्थल-सेनामे आधेसे अधिक प्रसिद्ध योद्धा आयरिश लोग ही है। तथापि उनकी युद्ध-कुशलता और शूरतासे आज तक उनके देशकी अपेक्षा विदेशको ही अधिक लाभ पहुँचा है। इसके अतिरिक्त आयर्लेण्डमें जितने रणशूर देशभक्त हुए, उतने ही घरके भेदी होकर लका जलानेवाले और

सद्व्यवहारकी आवश्यकता होती है जमीनका लगान वसूल करनेमें उतने सद्व्यवहारकी आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त हिन्दू लोग कैथोलिक लोगोंके समान निग्रही और धर्मनिष्ठ होने पर भी सहिष्णुतामे उनसे बढकर है। इन्हीं सब कारणोंसे हिन्दुस्तानमें ॲगरेजोंके द्वारा धार्मिक पीडन नही हुआ।

यदि इस बातका ध्यान रक्खा जाय कि जमीनके सम्बन्धमें आयर्लैंडके प्रोटेस्टेण्टोंकी जगह पर हिन्दुस्तानमें स्वय ॲगरेज सरकार है, तो इसमें सन्देह नहीं कि इस समय हमें आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानकी स्थितिमें वैधर्म्य-की अपेक्षा साधर्म्य ही अधिक दिखाई देगा। तथापि एक बातका ध्यान रखना आवश्यक है। वह यह कि सैकडो वरसोंतक आन्दोलन करने पर आयरिश प्रजा आज जिस सुधरी हुई स्थितिमें है हिन्दुस्तानकी भी आज वही स्थिति है और ॲगरेजी अमलदारीमें ही पहले इसकी अपेक्षा और अच्छी स्थिति थी। आयर्लैण्डमे यह वात बहुत हालमें निश्चित हुई है कि जमीन पर प्रजाका स्वामित्व हो। पर हिदुस्तानमें यह तत्त्व बहुत पुराने जमानेसे माना जाता है। हॉ, इधर बम्बई प्रान्तके सर्वे एक्टने और विशेषत' सन् १९०१ के लैंड रेविन्यू बिलने इस तत्त्व पर थोडा बहुत आक्रमण किया है। आयर्लैण्डके जमीदार ॲगरेज थे, उनके लगान मॉगनेकी कुछ सीमा होनी चाहिए थी, और यदि वे अधिक लगान मॉगते तो लगान निश्चित करना सरकारका काम था। लेकिन इस सीधी सादी बातके लिए भी कानून बनवानेमें आयरिश लोगोंको सैकडों वर्षोंतक आन्दोलन करना पडा था और किसी किसी अवसर पर रक्तपात तक करना पडा था। लेकिन भारतवर्षमें केवल प्रजाकी दृष्टिसे देखते हुए जमींदारोंके विरुद्ध उनके साथ जो न्याय होना चाहिए था वह पहले ही और बिना किसी प्रकारके कष्टके हो गया। बगाल तथा मध्यप्रदेशमें 'टेनेन्सी लॉज' नामके कानूनोंका व्यवहार होता

है, उसके अनुसार यह काम न्यायालयके सुपुर्द किया गया है कि प्रजाकी सामर्थ्य देखते हुए वह यह निश्चित करे कि, जमींदारको उन्हें कितना लगान देना चाहिए। इस कानूनका व्यवहार भी अच्छी तरह होता है। इसी प्रकार बम्बई प्रान्तमें साहूकारोंके विरुद्ध कानून बने आज लगभग चालीस वर्ष हो गये। सन १८८१ में ग्लैडस्टन साहबके प्रयत्नसे आयर्लैण्डमें जमीनके सम्बन्धमें जो सबसे अधिक समाधानकारक नियम बना, उसके दो वर्ष पहले ही महाराष्ट्र प्रजाके बचावका कानून बन चुका था। सन १८८१ वाले कानूनके बननेतक आयर्लैण्डमें प्राय डेढ सो वर्षों तक जो मारकाट और रक्तपात हुआ, उसे देखते हुए इस बातका सन्देह होता है कि सन १८७६ के अकालमें और उसके उपरान्त महाराष्ट्र खेतिहरोंने जो रक्तपात किया था वह मनके मुकाबलेमें रत्ती भर भी है या नहीं। अब यह प्रश्न दूसरा है कि इन कानूनोंसे साहूकारों और जमींदारोंकी हानि होती है या नहीं और यदि होती है तो कितनी होती है। उसी प्रकार यह प्रश्न भी अलग है कि साहूकारों और जमींदारोंके साथ सरकार जिन नियमोंका पालन करती है उन्हीं नियमोंका पालन वह अपने साथ करती है या नहीं, अथवा वह स्वय अपनी प्रजासे जो लगान माँगती है वह ठीक है या नहीं, और इसे ठीक करनेके लिए सरकार और प्रजाके बीचमें किसी तीसरे आदमीकी आवश्यकता है या नहीं। लेकिन आयरिश प्रजा और भारतीय प्रजाकी स्थिति देखते हुए यह वैधर्म्यकी बात ध्यानमें रखने योग्य है कि आज एक अनायास ही जिस स्थितिमें है और जो इस समय उसे पहलेसे भी बिगडी हुई मालूम होती है उस स्थिति तक पहुँचनेके लिए दूसरेको सैकडों वर्षों तक आन्दोलन करना पडा था। और यदि सरकारका यही सिद्धान्त बना रहा तो यह भी सम्भव है कि कुछ वर्षोंमें यहाँ भी उन्हीं कारणोंकी सृष्टि हो जाय, जिनसे बहुत

दिन पहले आयर्लेण्डकी प्रजामें असन्तोष फैला था। तथापि इस समय आयरिश तथा भारतीय प्रजाकी स्थितिमें अन्तर है और यहाँ पर यही बतलाना हमारा मुख्य उद्देश्य है कि, यह अन्तर किसी समय भारतीय प्रजाके लिए हितकारक था। इस सम्बन्धमें आयर्लैण्डके इतिहाससे जो शिक्षा ली जा सकती हो वह गत कालकी अपेक्षा भविष्य-कालके लिए ही अधिक लाभदायक हो सकती है। देशी प्रजाकी जमीन के विधर्म्मी और विजातीय जमींदारों अथवा साहूकारोंके हाथोंमें चले जानेसे अत्यन्त हानि होती है। पर आसाम आदि प्रान्तोंको छोडकर भारतके अन्य प्रान्तोंमें सौभाग्यवश अभीतक यह दशा नहीं हुई है आयरिश इतिहासको देखते हुए केवल यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि सरकार भविष्यमें यहाँ वह दशा न करे! हमारी अपेक्षा अँगरेजी सरकार आयरिश इतिहास अधिक जानती है। क्योंकि हम लोग तो उसके सम्बन्धकी केवल पुस्तकें ही पढते हैं, पर उसके हाथों तो वह दशा हुई ही है, इस लिए सरकारको यह बात अधिक दक्षतापूर्वक ध्यानमें रखनी चाहिए।

शिक्षामें हम लोग आयरिश लोगोंसे बहुत पिछडे हुए हैं। लेकिन इस बातका ध्यान रखते हुए–कि आयर्लैण्डका इतिहास चार सौ वर्षोंका है और हमारा इतिहास केवल सो सवा सौ वर्षोंका है–यही कहना उचित होगा कि हम लोग अच्छी स्थितिमें हैं। धर्म्म और शिक्षाका बहुत ही निकट सबंध होता है। इस सम्बन्धके कारण आयर्लैण्डमें अँगरेजी सरकारद्वारा विशेष सहायता नहीं हुई। आयरिश लोग भी विना धर्म्मकी शिक्षा नहीं चाहते थे, इस लिए शिक्षाका सब भार आयरिश लोगोंने पहलेसे ही आप सँभाला है। आयर्लैण्डमें जब तक पीनल कोड जारी था, तब तक इस भारको सँभालनेमें उन्हें बहुत अड-चन पडती थीं, क्योंकि उस समय अपने धर्म्मके आधार पर शिक्षा देना

अपराध माना जाता था। परन्तु सन् १८२९ से ये सब कानून रद्द हो गये। भारतवर्षमें भी धार्मिक शिक्षामें सरकारसे प्रत्यक्ष सहायता नहीं मिलती। धर्मके विषयमें सरकार न तो प्रतिकूल हुई और न अनुकूल। पहलेसे उसने केवल ऐहिक प्रवृत्तिको लेकर ही शिक्षा देना आरम्भ किया। उसका यह सिद्धान्त लोगोंको भी मान्य हुआ। अपने तौर पर धार्म्मिक शिक्षा देनेका हम लोगोंका अधिकार है, इस लिए आयर्लैण्टकी तरह भारतवर्षमें शिक्षाका प्रश्न धर्म्मके विचारसे कभी वादग्रस्त नहीं हुआ और आगे भी उसके वादग्रस्त होनेकी सम्भावना नहीं है। हिन्दुस्तानमें यदि शिक्षाके सम्बन्धमें कोई झगडा है तो वह केवल राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें है। इस लिए इस झगडेको शिक्षाकी अपेक्षा राष्ट्रीय दृष्टिसे अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। कुछ दिनों पहले जिस प्रकार आयर्लैण्डमें रोमन कैथोलिक शिक्षणसंस्थाओंका अथवा फ्रान्समें धर्म्मशिक्षणसंस्थाओंका दमन हुआ था, उसी प्रकार इस समय भारतमें राष्ट्रीय शिक्षा देनेवाली संस्थाओंका दमन आरम्भ हुआ है और इस बातका भय होता है कि सशयग्रस्त सरकारके द्वारा यह दमन दिन पर दिन बढता ही जायगा। भारतवासियोंको जिस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षाकी आवश्यकता है, उसी प्रकार आयरिश लोग धार्मिक शिक्षा चाहते हैं। सम्भव है कि लोगोंने आयरिश धार्म्मिक शिक्षाके लिए जो कष्ट पहले सहे हैं वे राष्ट्रीय शिक्षाके लिए हमें अब सहने पड़ें, पर आयरिश लोग धार्मिक शिक्षाके लिए जो युनिवर्सिटी चाहते थे सम्भव है कि वह उन्हें अब शीघ्र मिल जाय।

धर्मके विषयमें आयरिश लोगोंकी एक और शिकायत थी, जो सन् १८६७ में ग्लैडस्टन साहबकी कृपासे दूर हो गई। आयर्लैण्डकी ७५-८० प्रति सैकडे प्रजाका धर्म्म रोमन कैथोलिक था और हर साल उस प्रजाके खजानेके लाखों रुपये खर्च करके अँगरेज सरकार प्रोटे-

स्टेण्ट धर्म्ममण्डलका पालन करती थी। अर्थात् यह केवल अन्याय था। लेकिन एक और बात ऐसी थी जो आयरिश लोगोंको अधिक चिढाने और दुःखी करनेवाली थी। वह यह कि रोमन कैथोलिक खेतिहरोंको अपने खेतकी उपजका दसवॉ भाग प्रोटेस्टेण्ट भिक्षुकों और धर्म्मोपदेशकोंके निर्वाहके लिए देना पडता था। जब खेतमें फसल खडी रहती थी तब भिक्षुकोंको यह कहनेका अधिकार होता था कि इसमेंका दसवॉ भाग हमारा अश है। इस अशको वसूल करनेवाले ठेकेदार दलाल वडा अत्याचार करते थे। यदि सरकार यहॉ यह कानून बना दे कि प० दीनानाथ अग्निहोत्रीके अग्निहोत्रका खर्च चलानेके लिए इलताफ हुसेन अपनी आमदनीका दसवॉ भाग दिया करे और उस भागको वसूल करनेका अधिकार कलू अहीरको दे दिया जाय, अथवा यह कानून बना दे कि काजी साहब आरामसे मसजिदमें बैठकर कुरानकी तलावत किया करें और उनके खानेके लिए शहरभरके ब्राह्मणोंके यहॉसे नित्य हविष्यान्न जाया करे, तो कितने अन्यायकी बात होगी। कैथोलिक खेतिहरोंकी फसलका दसवॉ भाग प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मोपदेशकोंको दिलवाना भी उतना ही अन्याययुक्त और चिढानेवाला था। यह नामुनासिब कार्रवाई आयर्लैण्डमें सौ वर्षसे भी अधिक तक जारी रही। सन् १८३७ के लगभग यह कार्रवाई बन्द हुई और सन् १८६७ में सरकारी धनसे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममण्डलका पाला जाना भी बन्द हुआ। मगर हम लोगोंमें कभी ऐसी शिकायत नहीं हुई। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तानके खजानेसे ईसाई धर्म्ममण्डलका थोडा बहुत खर्च चलाया जाता है, लेकिन और खर्चोंको देखते हुए यह खर्च बहुत थोडा है, इसलिए भारतीय प्रजाको वह दिखाई नहीं देता। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म्ममण्डलकी तरह हिन्दुओंके मन्दिर और मुसलमानोंकी मसजिदें आदि भी सरकार चलाती है, इसलिए उस खर्चका हम लोगोंको

विशेष दुःख नहीं होता। इस प्रकार राजकर्म्मचारियों और प्रजाके नित्य अथवा अनित्य सम्बन्धमें कोई ऐसी धार्मिक बात नहीं है जो हम लोगोंको अधिक खटकती हो। वैधर्म्यका यह विषय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

हाँ राजकीय दृष्टिसे विचार करते हुए इन दोनों देशोंका वैधर्म्य हमारे लिए बहुत ही शोचनीय हो सकता है। आयरिश लोग और अँगरेज यद्यपि अपना अपना राष्ट्र अलग अलग मानते हैं, तथापि आयरिश लोग हिन्दुस्तानवालोंकी अपेक्षा अँगरेजोंके अधिक निकट-वर्त्ती हैं। चाहे इग्लैंडके अधिकाश लोगोंका धर्म्म प्रोटेस्टेंट और आयर्लैण्डके अधिकाश लोगोंका धर्म्म कैथोलिक हो, तो भी वे दोनों ही राष्ट्र ईसाई हैं। इतना ही नहीं बल्कि हिन्दुस्तानके प्रोटेस्टेंट ईसाईयोंकी अपेक्षा आयर्लैंण्डके कैथोलिक लोग अँगरेजोंको अधिक निकटके जान पडते हैं। यह बात नहीं है कि इग्लैंडमें रोमन कैथोलिक लोग बिलकुल ही न हों। लार्ड रिपन और ड्यूक आफ नारफोक सरीसे लोगोंका धर्म्म रोमन कैथोलिक ही है। कुछ दिन पहले लन्दनमें रोमन कैथोलिक लोगोंका जो बहुत बडा सम्मेलन हुआ था, उसका जुलूस निकालनेके सम्बन्धमें उस समय प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक लोगोंमें यद्यपि कुछ झगडा हो गया था तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उस मामलेमें अँगरेज प्रोटेस्टेंट लोगोंने बहुत सहिष्णुता दिखलाई थी। आयरिश रोमन कैथोलिक और भारतीय प्रोटेस्टेंटोंमे अँगरेजोंकी दृष्टिसे आकाश-पातालका अन्तर है। और युरोपियन तथा एशियाटिकका सूक्ष्म भेद निकाल कर दक्षिण आफ्रिका ओर कनाडामें जिस कारणसे एशियाटिक लोगोंका अपमान होता है और वे उन देशोंमें घुसने नहीं पाते हैं, वही कारण आयरिश तथा भारतीय ईसाईयोंमें पक्ति-भेद कराता है। दूसरी बात यह है कि अँगरेजों और आयरिश लोगोंमें रोटी-व्यवहार

तो बराबर होता ही है, परन्तु यदि बेटी-व्यवहारका भी अवसर आवे तो धर्म्म बदल कर वह व्यवहार करनेमें अधिक देर नहीं लगती। क्योंकि उनमें जाति-भेद तो है ही नहीं, केवल धार्म्मिक पन्थका भेद है। और वह भी विशेषत आज कल जैसे सहिष्णुताके दिनोंमें उतना नहीं खटक सक्ता। सहिष्णुतासे बैर-भाव घटता और गुणग्राहकता बढती है, और अवसर पडने पर सहजमें ही धर्म्म बदला भी जा सक्ता है। इस समय आयर्लैण्डमे ऐसे घराने भी दिखाई देते हैं जिनकी एक शाखा केथोलिक है तो दूसरी शाखा प्रोटेस्टेण्ट। प्रोटेस्टेण्ट पन्थको देखते हुए केथोलिक लोगोंका धर्म्म चाहे कैसा ही हो, तथापि उसमें उपपन्थ नहीं है, और आयर्लैण्डके प्रति सैकड़ा पचहत्तर आदमी अपने धर्म्मगुरुके सूत्रसे एकमें ही बँधे हुए है। पर भारतवर्षकी दशा इससे बिलकुल उलटी है। यहॉ एक ही हिन्दू धर्म्ममें सैकडों जातियॉ और सैकडों पन्थ हैं। मुसलमान ईसाई आदि जो दूसरे धर्म्म है वे अलग। यह बात ठीक है कि इतने भेद-भावोंके होते हुए भी भारतवर्षमें राष्ट्रीयताकी कल्पना उठ रही है और चाहे इस समय उसका प्रसार कितनी ही अधिकता और शीघ्रतासे क्यों न हो रहा हो तथापि यही माना जायगा कि यहॉ उसका उदय अभी हालमें ही हुआ है। जिस दिन यह कल्पना खूब बढती हुई मध्य आकाशमें पहुँच कर सारे राष्ट्र पर समान रूपसे उज्ज्वल प्रकाश डालेगी वही दिन हमारे लिए सुदिन होगा। तो भी भारतमे इस समय जागृतिके जो लक्षण दिखलाई पड रहे है वे बहुत ही शुभ और सन्तोषजनक है और दिनपर दिन उन लक्षणोंकी वृद्धि ही होती जाती है। आजसे सालभर पहले तक जिसे लोग राष्ट्रीय सभा या नैशनल कांग्रेस कहते थे वह केवल हिन्दुओंकी ही सभा समझी जाती थी। पर सौभाग्यवश गतवर्ष नैशनल कांग्रेस और मुस्लिम लीगने एकत्र होकर निश्चित कर लिया कि हम दोनोंका एक मात्र उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना है। और तबसे नैशनल कांग्रेस पर

जो एक जातीय होनेका आक्षेप होता था उसका कारण दूर हो गया और स्वराज्यकी माँग राष्ट्रीय माँग समझी जाने लगी। स्वराज्य प्राप्तिके हमारे प्रयत्नमें मुसलमानोंके भी सम्मिलित हो जानेसे हमारा बल भी बढ गया और हमारी माँगका महत्त्व भी, और इस प्रकार पहले जो हमारा ध्येय हमसे बहुत दूर था यह अब अधिक समीप आ गया। अधिकारी लोग पहले हमारी जिन बातोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे हमारी वे ही बातें अब उन्हें सोचमें डालने लगी है। परस्परकी अन्यान्य अनेक बातोंमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जो मत-भेद या विरोध होता था वह भी कांग्रेस और मुस्लिम लीगके सम्मिलनसे बहुत कुछ कम हो जायगा। इधर कौन्सिलों और म्युनिसिपालटियोंके चुनावके सम्बन्धमें मुसलमानोंको 'राजनीतिक महत्त्व' Political Imfortance देनेके लिए सरकारने उन्हें कुछ विशिष्ट अधिकार देकर हिंदुओंको बहुत क्षुब्ध कर दिया था, जिससे देशमें बहुत कुछ असन्तोष फैल चला था। पर परमेश्वरने हिंदुओं और मुसलमानोंको समय पर ही सँभालकर सुबुद्धि दी और दोनोंने मिलकर कौंसिलोंके चुनावके संबंधमें आपसमें ही समझौता कर लिया। आज हम भारतकी राष्ट्रीय कल्पनाको जिस उन्नत अवस्थामें देखते है, उसका बहुत कुछ कारण उक्त क्षोभ और असंतोषका दूर हो जाना तथा दोनों जातियोंका एक हो जाना ही है।

भारतीय 'स्वराज्य' की माँगके सम्बन्धमें इस स्थान पर एक बात और भी बतला देना बहुत ही आवश्यक है। इधर कई वर्षोंमें और विशेषत वर्तमान युरोपीय युद्धके आरम्भ होनेके उपरान्तसे जिस मानमें आयर्लैण्डने राजनीतिक क्षेत्रमें उन्नति की है यदि उतने ही मानमें नहीं तो भी उससे कुछ ही कम मानसे भारतने भी पैर आगे बढाये हैं। पर आयर्लैण्ड और भारतके इस अग्रसर होनेमें कुछ अन्तर है। युद्ध आरम्भ

होनेसे पहले ही आयरिश होमरूल बिल पास हो चुका था। परन्तु कुछ तो अलस्टरके यूनियनिस्ट लोगोंके विरोध करने और कुछ लड़ाई छिड़ जानेके कारण उसके अनुसार ,कार्य्य नहीं हो सका था। पर तो भी आयरिश लोगोंको यह आशा अवश्य हो गई थी कि युद्धकी समाप्ति पर हमें 'स्वराज्य' अवश्य मिल जायगा। परन्तु आयलैंण्ड पर ईश्वरकी कृपा थी, वह उन्हें उनकी आशाके समयसे पहले ही उनके परिश्रमका थोडा वहुत सुस्वादु फल उन्हें देना चाहता था। अत जब रूसमें राज्य-क्रान्ति हो जाने पर अमेरिका भी मित्र दलकी ओरसे महायुद्धमें सम्मिलित हुआ तब उसने आयलैंण्डका पक्ष लेकर अँगरेजों पर उसे स्वराज्य देनेके लिए दबाव डाला और अँगरेजोंने भी अनेक कारणोंसे अमेरिकाकी बात मानकर आयलैंण्डमें 'कनवेन्शन' करना निश्चित किया। इसमें सन्देह नहीं कि 'कनवेन्शन' होनेके उपरान्त आयरिश लोग सच्ची स्वतन्त्रताका बहुत कुछ सुख-भोग करने लगेंगे।

यह तो हुई आयलैण्डके अग्रसर होनेकी बात। अब इधरकी भारतीय उन्नति और जाग्रतिको लीजिए। आजसे दस पन्द्रह बरस ही पहले हिन्दुस्तानमें एक वह जमाना था जब कि यहाँ 'स्वराज्य' या 'होमरूल' का नामतक लेना राजनीतिक अपराध समझा जाता था। यद्यपि कुछ भारतीय नेता अवश्य इतने साहसी थे, कि समय समय पर किसी न किसी रूपमें वे स्वराज्यकी चर्चा करते थे तथापि साधारण नेताओंकी मण्डली और जनता उसे 'हौवा' ही समझती थी। उसका नाम तक लेना पाप समझती थी। सन् १९०६ में कलकत्तेमें जातीय महासभाका जो अधिवेशन हुआ था उसमें सभापति स्वर्गीय ऋषि दादाभाई नौरोजीने स्पष्ट रूपसे कह दिया कि हमारा अन्तिम ध्येय 'स्वराज्य' ही है और हमारे सारे प्रयत्न उसीकी प्राप्तिके लिए होने चाहिएँ। उसी दिन मानों उस स्वर्गीय महात्माने भारतवासियोंके हृदय-क्षेत्रमें स्वराज्य और

स्वतन्त्रताकी कल्पनाका स्पष्टरूपसे बीज बोया था। उससे पहलेके नेताओंने इस सम्बन्धमें जो काम किया था वह जमीन तैयार करने और बोनेके योग्य बनानेके समान था। इतने विशाल वृक्षका बीज चटपट तो अकुरित हो ही नहीं सकता था, इसलिए आरम्भमें कुछ समय तक स्वराज्यकी कल्पना बढी नहीं, बीज जमीनमें पडा रहा। सन् १९०७ में जब बग-भगके कारण बगालियोंका आन्दोलन बहुत बढा और कुछ मूर्ख बगालीयुवकोंने कुछ राजनीतिक अपराध किये तब भारत सरकारने दमननीतिका अवलम्बन किया। उसकी तत्कालीन नीतिसे प्रजा कुछ भयभीत हो गई थी जिसके कारण लोगोंमें स्वराज्यकी कल्पना कुछ भी न बढ़ सकी। पर आगे चलकर प्रजा और शासक दोनों कुछ शान्त हुए और तब लोगोंको दम लेनेका अवसर मिला। उसी समय सूरतकी कांग्रेसमें स्वराज्यसम्बन्धी प्रश्नके कारण ही नेताओंमें झगडा हो गया और दो दल बन गये। इन्हीं सब कारणोंसे स्वराज्यका प्रश्न पीछे पडा रह गया। यह दशा कई वर्षों तक रही। पर राष्ट्रीयता और स्वराज्यकी कल्पना एक बार उठनेके उपरान्त कभी नष्ट होना जानती ही नहीं। समय समय पर अनेक नेता लोकमत जाग्रत करते रहे और अन्तमें उस जागृतिमें श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा लोकमान्य तिलकने सन् १९१६ में होमरूल-लीगोंकी स्थापना करके इस काममें बहुत भारी सहायता की और स्वराज्य सम्बन्धी आन्दोलनको एक अच्छे ढँग पर लगा दिया। होमरूल लीगकी स्थापना करनेके उपरान्त श्रीयुत लो० तिलकने बेलगाँव तथा अहमदनगरमें सन् १९१६ के अन्तमें जो व्याख्यान दिये थे उनके कारण सरकारने उन पर मुकदमा चलाकर उनसे बीस हजार रुपयेकी जमानत माँगी थी। परन्तु हाईकोर्टने उन्हें निर्दोष समझ कर छोड दिया और जमानतकी आज्ञा रद कर दी। कहा जाता है कि ईश्वर जो कुछ करता है

नहीं हो सकता। अब देखना यह है कि युद्धकी समाप्ति पर स्वतत्रता-की दौडमें अपनी शक्तिको देखते हुए हम उचित स्थान पर पहुँच जाते हैं अथवा अपेक्षाकृत पीछे ही पडे रह जाते हैं। इस अवसर पर हमारे देश-भाईयोंको केवल एक बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए। वह बात यह है कि जब किसी कार्य्यका उपयुक्त अवसर निकल जाता है तब उस कार्य्यकी सिद्धि बहुत दूर जा पडती है। सन् १७८२ में आयरिश लोगोंको जो स्वतत्र पार्लमेण्ट मिली थी, वह यदि प्रस्तुत अवसरका ठीक ठीक उपयोग करती और सन् १८०० में स्वय अपना नाश न कर डालती, तो इस समय आयलैंण्ड जिस उन्नत दशामें होता उसका अनुमान सहजमें नहीं किया जा सकता। पर जब उस पार्लमेण्टने अपना नाश करके देशके अभ्युदयका वह बहुमूल्य समय खो दिया तब उसकी स्वतत्रता और उन्नतिका अवसर सैकडों बरस दूर जा पडा। आयलैंण्डको होमरूल शीघ्र ही मिल जायगा पर १७८२ वाली स्वतत्र पार्लमेण्टके समान अधिकार आयरिश लोगोंको कब मिलेंगे यह अभी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकारकी कुछ दशा इस समय हमारी भी है। युद्धके उपरान्त होनेवाले साम्राज्य-सगठनमें यदि भारत अपना उचित अधिकार और स्थान प्राप्त न कर सका, तो [illegible] कहा जा सकता कि और कितने दिनों तक उसे इसी [illegible] पडेगा। अत. इस समय हम लोगोंके लिए दो [illegible] श्यक है। एक तो भारतीय लोकमत तैयार कर[illegible] उत्पन्न करना और दूसरे अँगरेजी अधिकारियों[illegible] योग्यता भली भाँति प्रकट कर देना, उन्हें [illegible] तरहसे बतला देना और उनके सम्बन्धमें [illegible] निश्चय प्रकट कर देना। इन सब कामोंके [illegible] समय यही है और यदि भारत [illegible] उसे इस उपयुक्त समयका उपयोग [illegible]

राजकीय स्थितिमें पिछडे होनेके कारण राजकीय शिक्षामें भी आयर्लैण्डसे भारतवर्ष पिछडा हुआ है। यद्यपि इस समय आयर्लैंडमें स्वतत्र पार्लमेण्ट नहीं है, पर तो भी किसी समय वहाॅ स्वतत्र पार्लमेण्ट थी और अब भी आयर्लैंडसे सौ सभासद् चुनकर ब्रिटिश पार्लमेण्टमें भेजे जाते है। हम लोग अभी पार्लमेण्टके ढगकी सस्था माॅग रहे है और उसका मिलना कुछ दूर है। ऐसी दशामें यह बात मुक्त कण्ठसे स्वीकार करनी पडेगी कि जो लोग पार्लमेण्ट सरीखी सस्थासे सैकडों वर्षसे परिचित है वे राजकीय शिक्षामें अवश्य ही हमसे कहीं आगे बढे हुए है। इस समय भारतवर्षमें ग्रॅटन, फ्लड, ओकानेल, पार्नेल आदिके समान वक्ता और पार्लमेण्टके सभासद तथा नेता होने योग्य लोग बहुत ही कम है, पर तो भी आशा है कि शीघ्र ही ऐसे लोगोंकी सख्या बढेगी। परन्तु पात्रता और प्रत्यक्ष अनुभवमें बडा अन्तर होता है। किसी काममें प्रयुक्त होनेवाले गुणका मनुष्यमें होना और बात है और उस गुणके रहते हुए उस कामको प्रत्यक्ष करना और बात है। यद्यपि इस समय हम लोगोको थोडे बहुत पार्लमेण्टरी नेता मिल सकते है, तथापि अभी तक हम लोगोंको पार्लमेण्टका अनुभव नहीं है। हम लोगोंमें पात्रता तो पूरी है, पर अनुभवकी कमी है। उस अनुभवके लिए हम पर कामका बोझ पडना चाहिए और इसमें सन्देह नहीं कि कामका जितना बोझ हम पर होना चाहिए उतने बोझके न होनेका दोष यहाॅकी सरकार पर है। मार्लीसाहबने अपनी काउन्सिलमे कुछ दिन पहले दो भारतवासियोंकी नियुक्ति की थी और उसके थोडे ही दिन बाद कहा था कि उन दोनोंका काम बहुत अच्छा हुआ है। अर्थात् इस सम्बन्धमें पात्रता सिद्ध करके अनुभव करानेका श्रेय मार्ली साहबको है और इन्हींकी कृपासे बडे लाटकी कार्य्यकारिणी सभामें भी सन् १९०९ से एक हिन्दुस्तानी मेम्बर रहने

लगा है। यदि उसमें और अधिक लोग नियुक्त किये जायें तो वहाँ भी, इसकी पात्रता आपसे आप सिद्ध हो जाय और उन्हें अनुभव प्राप्त हो। बिना किये कोई काम नहीं आता, और लोगोंको बार बार काम करनेका अवसर न देनेकी दोषी सरकार है। तो भी हम लोगोंमें अनुभवका जो अभाव है, चाहे अनिच्छासे ही क्यों न हो, पर वह हम लोगोंमें बना रहता है। जिन मार्लीसाहबने पहले एक बार कहा था कि भारतवासी अधिकारके पद प्राप्त करनेके योग्य है उन्हीं मार्लीसाहबने आगे चलकर फिर कहा था कि—"पार्लमेण्टका उपयोग करनेके योग्य वे लोग अभी नहीं हुए है और आगे कई युगोंतक योग्य हो भी न सकेंगे।" उनका यह कथन ठीक नहीं था, इसी लिए आगे चलकर उसका खण्डन भी हुआ। गत १२ जुलाई सन् १९१७ को लन्दनमें भारतमंत्री मि० माण्टेगने जो वक्तृता दी थी उसमें आपने स्पष्ट रूपसे कह दिया था कि भारतवासियोंके अनुभव आदिमें पिछडे रहनेके लिए मुख्य दोषी भारतका शासकवर्ग है और वास्तवमें भारतवासी सब प्रकारके अधिकारोंके योग्य है। मि० माण्टेग इसी सम्बन्धमें जाँच करने तथा यहाँके अधिकारियोंसे बातें करनेके लिए भारतमें आये हुए है। आशा है कि उनके भारत आगमनका फल हम लोगोंके लिए बहुत ही अच्छा होगा और भविष्यमें हम लोगोंको शासन तथा सेना-विभागमें बडे बडे पद भी मिलने लगेंगे। तो भी जिस पार्लमेण्टका आयरिश लोगोंको तीन चार सौ वर्षोंसे प्रत्यक्ष अनुभव है हमारे लिए उसके दर्शन भी अभी दूर है, इसलिए यह बात स्पष्ट ही है कि आयरिश लोगोंको देखते हुए हम लोग राजकीय शिक्षामें बहुत पिछड़े हुए है।

लेकिन यह मानना बडीभारी भूल है कि ब्रिटिश पार्लमेण्टमें बैठनेवाले सभासदोंसे आयरिश लोगोंको केवल राजकीय शिक्षा ही मिलती है।

ये सौ सभासद चाहे प्रत्यक्षरूपसे अपना कार्य्य न सिद्ध कर सकते हों, तो भी अप्रत्यक्ष रीतिसे वे कभी न कभी अपना काम निकाल ही लेते है। चाहे वे अपनी नाक साबुत रखकर अपना शकुन न कर सकते हों, तो भी वे उसे कटा कर दूसरेका अपशकुन अवश्य कर सकते है। चाहे अपनी नाव न चला सकते हों, पर तो भी वे दूसरेकी नाव अवश्य डुबा सकते हैं। और इसलिए उनकी जो बातें प्रेमपूर्वक स्वीकृत नहीं होतीं, वे कभी कभी केवल उनके भयके कारण ही स्वीकृत हो जाती हैं। पाठक यह बात जानते ही होंगे कि ब्रिटिश पार्लमेण्टका राजकार्य्य राजकीय पक्षके बलाबल पर अवलम्बित रहता है और इसलिए आयरिश सभासदोंके मतका महत्त्व कभी कभी बहुत बढ जाता है। यों पत्थरके किसी टुकडेका चाहे कोई महत्त्व न हो, पर तराजूका पासग ठीक करनेके समय अथवा किसीके सिर पर खींचकर मारनेके समय उसे जाकर लाना पडता है। इसी तरह किसी प्रश्न पर बहुमत प्राप्त करके पार्लमेंटमें अधिकारका पल्ला भारी करनेके लिए आयरिश सभासदोंसे अनेक अवसरों पर सहायता माँगी गई है और उन्होंने उसका 'उचित बदला' लेकर सहायता दी है। फॉक्स और पिटके समयसे लेकर आजतक कन्सर्वेटिव पक्षने अनेक बार लिबरल पक्ष पर यह अभियोग लगाया है कि वह आयरिश सभासदोंके साथ मिल गया है। पार्नेल-के समयमें आयरिश सभासदोंमें खूब एका रहता था और वे लोग सदा चुपचाप दूर बैठे हुए कन्सर्वेटिव और लिबरल पक्षकी लड़ाई देखा करते थे, और ठीक समय पर मौका ताक कर पिण्डारियोंकी तरह वे एक पक्ष पर टूट पडते थे और क्षणभरमें जय-पराजयके पलड़े फेर देते थे। इसमें सन्देह नहीं कि ग्लेडस्टन साहबके इतने जोरोंसे [illegible] प्रश्न उठानेमें उनकी न्यायबुद्धि और उदारता तो कारणीभूत थी ही थी, लेकिन यह कारण भी कुछ गौण नहीं था कि [illegible]

पार्लमेण्टमें भारी करनेमें आयरिश सभासदोंसे भी उन्हें सहायता मिलती थी। कई वार आयरिश सभासदोंकी प्रतिकूलताके कारण स्वय ग्लैडस्टन साहवकी भी हार हुई थी, और कन्सर्वेटिव पक्षने भरी सभामें इस राजनीतिज्ञ पर यह दोष लगाया था कि किलमाइनहमके जेलमें पार्नेलके साथ वात-चीत पक्की करके और उसे मुक्त करके आयरिश सभासदोंको उसने अपनी ओर मिला लिया है। तात्पर्य यह कि ब्रिटिश पार्लमेण्टमे आयरिश सभासदोंके रहनेसे यद्यपि उनके सभी काम पूरे नहीं उतरते और आय-र्लैण्डके सभी दु.खोंका यद्यपि निवारण नहीं होता, तथापि ये सभासद इतना उपद्रव कर सकते ओर इतनी अडचनें डाल सकते है कि जिनसे आयर्लैण्डकी स्थितिकी ओर सब लोगोंका ध्यान वलपूर्वक आकृष्ट हो जाय। पर भारतवर्षको इस प्रकारका लाभ विलकुल नहीं है। भारतका एक भी प्रतिनिधि पार्लमेण्टमें नहीं रहता, अत भारतकी ओर पार्ल-मेण्टका ध्यान आकृष्ट करनेके लिए किसी अँगरेज सभासदकी सहायता लेनी पडती है, और उन लोगोंको इस देशके सम्वन्धकी वातोंका ज्ञान बहुत ही कम रहता है। इस लिए एक ऐसे जानकारकी आव-श्यकता होती है जो उसे आवश्यक बातें वतलाया करे। पर इस वातका अनेक वार अनुभव हुआ है कि प्रत्यक्ष वादविवादमें इन भाडेके टट्टुओंसे कोई काम नहीं निकलता। कन्सर्वेटिव हो और चाहे लिवरल, भारतकी अनुकूलता पर किसी पक्षका हिताहित अवलम्वित नहीं है और इस लिए केवल न्यायवुद्धिकी प्रेरणासे भारतवर्षकी ओर उनका जो कुछ ध्यान आकर्षित हो वही ठीक है, परन्तु ऐसा वहुत ही कम होता है कि जिसके साथ हमारा कोई प्रत्यक्ष सम्वन्ध नहीं है उसका काम चाहे कितना ही न्याय-युक्त और ठीक क्यों न हो, पर केवल न्याय-वुद्धिकी प्रेरणासे उसकी ओर ध्यान जाय। न्याय-शीलताका ढोंग रचकर अनेक वार दोनों ही पक्ष भारतके हितमें वाधक

होते है और एग्लो इण्डियन अधिकारियोंको प्रसन्न करनेके लिए उनके साथ मिल जाते है। पर इन लोगोंका यह मिलाप देखकर जान पड़ता है कि उसका उद्देश्य केवल यही है कि जिस तरह हो लड-झगड़ कर मुसाफिरका खाना खराब कर दिया जाय और आपसमें बॉट कर खा लिया जाय!

ब्रिटिश पार्लमेण्टमें प्रतिनिधि चुनकर भेजनेका भारतको अधिकार नहीं है, जिससे कई अप्रत्यक्ष हानियाँ भी है। एक तो इसके कारण भारतवासियों पर हीनता और अयोग्यताकी छाप लग जाती है और वे ससारमें जहॉ जायॅ वहीं यह छाप उनके लिए बाधक होती है। आफ्रिका, कनाडा, यूरोप आदि देशोंमें जब हम भारतवासी जाते हैं तब हम लोगोंको इसका अच्छा अनुभव हो जाता है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। अगर पति ही अपनी स्त्रीको रॉड कहेगा तब भला पडोसी उसे रॉड क्यो न कहेंगे? वही बात यहॉ भी है। हमारे शासक हमें जो सर्टिफिकेट देगे प्राय उसीके अनुसार विदेशमें भी हमारा आदर होगा। यदि पार्लमेण्ट आदि सस्थायें हम लोगोंको अयोग्य और अज्ञान बताने लगें, तब फिर परदेशमें हमको कौन पूछेगा? लेकिन आयरिश लोगोंकी स्थिति इससे भिन्न है। चाहे वहॉ होमरूल हो और चाहे न हो, पर सारे ससारमें लोग उसे ब्रिटिश साम्राज्यका एक घटक और स्वराज्यका किसी समयका भोक्ता मानते है और उसीके अनुसार अब तक उसका आदर होता आया है और अब भी बराबर होता है। अमेरिकामें जाकर आयरिश लोगोंने अच्छे अच्छे पद पाये हैं और इस समय भी अमेरिकाकी राजनीतिमें आयरिश लोगोंका बहुत कुछ प्रभुत्व है। फ्रान्सके सम्बन्धमें भी वही बात है। यह बात प्रसिद्ध ही है कि नेपोलिअन बोनापार्टके साथ उत्फटोन और

राबर्ट एमेटकी भेंट हुई थी। लिमरिकमें कैथोलिक लोगोंकी तलवारकी कीर्ति रखनेवाले सार्सफील्ड ओर उसके उपरान्त टोनको फ्रान्सीसी सेनामें जनरलकी जगह मिली थी और इस समय भी उन्हें वैसा मान मिल सकता है। स्वय इंग्लैण्डमें और उपनिवेशों तथा भारतमें आयरिश लोगोंको बडीसे बडी जगहें मिल सकती हैं। इंग्लैण्डके ड्यूक आफ वेलिंग्टन ओर लार्ड राबर्ट्स ये दोनों ही सेनापति आयरिश थे। हिन्दुस्तान तथा उपनिवेशोंकी सिविल सर्विसमें आयरिश, अँगरेज और स्कॉचका भेद नहीं है। युक्तप्रान्तके भूतपूर्व छोटे लाट सर एण्टनी मेकडानल आयरिश थे। जिस समय आयरिश लोगोंको होमरूल मिलना निश्चित नही हुआ था, उस समय उन्हें अँगरेजी साम्राज्यमें होनेवाले सब प्रकारके लाभ होते थे। इधर भारतवासियोंको इतना भी अधिकार नहीं है कि पार्लमेण्टमें प्रतिनिधि ही चुनकर भेजें, बल्कि यहाँ तक कि अबसे कुछ ही दिन पहले सर्वोत्कृष्ट लिबरल तत्त्वज्ञानी कहा करते थे कि भारतवासियोंका इस प्रकारका अधिकार माँगना वैसा ही है, जैसा किसी बच्चेका खेलनेके लिए चन्द्रमा माँगना। अब तक सेनाविभागमें भारतवासियोंको अधिकसे अधिक सूबेदारीकी दो ढाई सौकी जगह ही मिल सकती थी। भला हो इस महायुद्धका, जिसने भारतवासियोंके गुण प्रकाशित करके उनका आदर तो बढाया और सेनामें उन्हें कुछ कमीशन तो मिलने लगे! जहाजों पर हम लोगोंको खाली तेलके पीपे साफ करने ओर रस्से लपेटनेका ही काम मिलता है और शासनविभागमें हम लोग डिप्टी कलक्टरीके आगे सहसा नहीं पहुँचते। हाँ, एक निरुपद्रवी न्यायविभागमें हम लोगोंको हाईकोर्टकी जजीतक मिल सकती है। दूसरे राष्ट्रोंमें हमें उत्तेजन मिलना तो दूर रहा, यदि किसी प्रकार हम लोग अपने गुणोंसे ही वहाँ प्रविष्ट हो जायँ तो सरकार हमें उसका लाभ भी पहुँचने देनेके लिए तैयार नहीं है।

अब हम अन्तमें वैधर्म्यके एक एक विशिष्ट विषयका वर्णन करके प्रस्तुत विषयके इस अगका विवेचन पूरा करेंगे। यह विषय है आयर्लैंड और हिन्दुस्तानके आकार मान और लोकसख्या आदि बातोंके अन्तरके सम्बन्धका। यह बात हम पहले ही भागमें बतला चुके है कि आयर्लैण्डका क्षेत्रफल और लोकसख्या दोनो ही हिन्दुस्तानके सबसे छोटे प्रान्तके बराबर भी कठिनतासे हैं। इतना होने पर भी एक ही साम्राज्यके अन्तर्गत इन दोनों देशोंके राजकीय सुधारोंमें जो अन्तर है उसका कारण भी ध्यानमें रखने योग्य है। हमारी समझसे कारण यह है कि भारतवर्षके अतिशय विस्तार और विपुल लोकसख्यासे उसका उपकारकी अपेक्षा अपकार ही अधिक हुआ है। यदि हम ससारके अनुभवसे अथवा आप ही आप राष्ट्रीयताकी मीमासा करने लगें तो हमें एक मुख्य सिद्धान्त दिखाई देगा। वह सिद्धान्त यह है कि राष्ट्रीयताकी कल्पनाके केन्द्रीभूत होकर प्रभावशाली बननेके लिए क्षेत्र जितना ही छोटा हो उतना ही अच्छा होता है। इधर हम लोगोंको बहुत ही सकीर्ण रूपसे भारतवर्षका विचार करनेका अभ्यास पड गया है। अपने राज्यकी रक्षामें सुविधा उत्पन्न करनेके लिए अथवा अपनी अभिनव उच्चाकांक्षाके समाधानके लिए भारत-सरकार ज्यों ज्यों अपने हाथ-पैर फैलाने लगी और नये नये प्रान्त जीत कर अपने राज्यमें मिलाने लगी त्यों त्यों भारतवर्षके भूवर्णनविषयक शब्दोंकी व्याप्ति भी बढने लगी और इस प्रकार धीरे धीरे यहाँ तक नौबत आ गई कि सह्याद्रिके नीचे कोंकण और चीनकी सरहद परके ब्रह्मदेशके लोग एक राष्ट्रके अवयव कहे जाने लगे। लेकिन यह बात स्पष्ट ही है कि औपचारिक नामकरणसे राष्ट्रके लोगोंमें वास्तविक एकता होनेकी सम्भावना नहीं है। राष्ट्र पाणिनिका व्याकरणसूत्र नहीं है कि उसमें श्वन् (कुत्ता), युवन् (युवक) और मघवन् (इन्द्र) सभी समानान्त होनेके कारण

एकहीमें खप जायँगे, अथवा उनका समान रूपकरण हो जायगा। अथवा राष्ट्र शेक्सपीअरके मेकवेथ नाटकमेंकी दासीकी कढ़ाई नहीं है कि उसमें रसोई बनानेके लिए कच्चा-पक्का, सजीव-निर्जीव, अच्छा-बुरा जो चाहिए सो डालते चले जाइए। अथवा राष्ट्र 'शाकभरी' के व्रतके उद्यापनका भोजन नहीं है कि जिसमें आप दस वीस तरहकी साग-तरकारी एकहीमें बना डालें। राष्ट्र बनानेके लिए कुछ विशेष प्रकारके नियमोंकी आवश्यकता होती है। उसमें धर्म्म, भाषा, वश-विस्तार, ऐतिहासिकपरम्परा और प्रत्यक्ष राजकीय हिताहित आदि अनेक बातें प्रधान है। परन्तु ऊपर कहे अनुसार सह्याद्रिके नीचे कोंकण और चीनकी सरहद परके ब्रह्मी लोगोंमें उक्त बातोंमेंसे कोई बात समान नहीं है। उसमें केवल ब्रिटिश सरकारकी उच्चाकांक्षाकी नियमानुमोदित सत्ताके अतिरिक्त और कोई दूसरा साधारण अधिष्ठान नहीं है। अर्थात् 'राष्ट्र' की दृष्टिसे भारतवर्षका विचार करनेके समय ब्रिटिश सरकार राज्य-मर्य्यादाकी दृष्टिसे विचार करती है। लेकिन उस प्रकार विचार न करके आवश्यकता इस बातकी है कि इस विशाल राज्यविस्तारमें समाविष्ट उसके प्रत्येक घटक या अगकी परिस्थिति देखते हुए विचार किया जाय। यदि इस बातका विचार किया जाय कि राष्ट्रीयताके जो लक्षण ऊपर वतलाये गये है वे लक्षण मद्रासियों, महाराष्ट्रों, पजाबियों, गुजरातियों, बंगालियों, और बरमियोंको एकमें मिला देनेसे कहाँतक घटते है तो जान पड़ेगा कि इन सब लोगोंको मिलाकर एक राष्ट्र बनाना कठिन है। और जबतक वैसा राष्ट्र न बन जाय तबतक इस प्रकारका निर्बन्ध करना सर्वथैव भ्रमपूर्ण होगा, कि ये भिन्न भिन्न लोग कमसे कम अपना अपना अलग राष्ट्र न मानें, और जबतक इन सबके मेलसे एक राष्ट्र न बन जाय तब तक चुपचाप बैठे रहनेके लिए कहना वैसा ही है जैसा किसी नदीके पुलको बनानेके

समय यह कहना कि जबतक नदीका सारा पानी न बह जाय तबतक चुपचाप रुके रहो।

आयर्लेण्डके राष्ट्र बननेमें उसका अल्प विस्तार, आयरिश लोगोंकी भाषा, धर्म्म और पूर्व परम्परा आदि बातें बहुत ही उपयोगी हुई हैं। लेकिन इतना होने पर भी उत्तर आयर्लैण्डमें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी जो थोड़ीसी बस्ती है, राजकीय बातोंमें थोड़ासा विरोध होनेके कारण उसकी दशा ठीक काचके उस टुकडेके समान है जो न पेटमें जाकर पचता है और न बाहर ही निकलता है, केवल एक जगह अड़कर आयरिश राष्ट्रकी अँतडियोंको कष्ट देता है। भारतवर्षकी भिन्न भिन्न जातियों, उनके पुराने स्वाभाविक विरोध और उस विरोधको बढ़ानेके लिए सरकारी नीति आदिको देखते हुए जो मनुष्य यह समझता हो कि भारतवर्ष जब पहले राष्ट्र बन लेगा तब उसका उदय होगा, उसके सिर पर निराशाका थप्पड़ अवश्य लगेगा। हाँ, इस सम्बन्धमें सफलता होनेकी आशा उसी समय हो सकती है जब हिन्दुस्तानकी भिन्न भिन्न जातियोंके लोग अपने अपने सुभीतेके अनुसार कुछ क्षेत्र या सीमा निश्चित करके राष्ट्रीयताकी कल्पनाकी वृद्धिका प्रयत्न करना निश्चित करें। इसके लिए कुछ दिनों पहलेके बंगालका उदाहरण बहुत अच्छा प्रमाण होगा। बंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलनके समय बंगाली राष्ट्रकी जो राष्ट्रीयता दिखाई देती थी उसका कारण यह था कि आयर्लैंडकी तरह वहाँ भी मर्य्यादित क्षेत्रमें कल्पना-बीज बोया गया था। भारतवर्षके अन्य सब प्रान्तोंसे क्षेत्र-फल और जन-संख्यामें बंगाल चाहे बड़ा ही क्यों न हो, तो भी जो बातें अन्य प्रान्तोंके लिए दुर्लभ होती है वे भी बंगालियोंके लिए अनुकूल होती है। भौगोलिक दृष्टिसे इस समयका बंगाल प्रान्त अखण्ड है और वहाँ रहनेवाले लगभग चार करोड बंगालियोंकी भाषा, धर्म्म और ऐतिहासिक परम्परा एक ही है। उन सब लोगोंको एक ही

तरहकी शिक्षा मिली है और बंग-भंग होनेके पहलेसे लेकर बंगालके फिरसे मिलाये जाने तकके समयको छोड कर अबतकके शेष कालमें वे सब एक ही शासनके अधीन रहे है। उनमें धर्म्मसम्बन्धी भेद-भाव नहीं है और यद्यपि पूर्व बगालमें मुसलमानोंकी आबादी अधिक है, तथापि उन सबके अशिक्षित होनेके कारण भारतीय राष्ट्रीयताकी कल्पनामें उनके कारण कोई अडचन नहीं पड सकती। बगालियोंकी भाषा और विद्या जिस प्रकार एक है, उसी प्रकार उनके सुखःदुख और मानापमान भी एक ही है। बगालके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरे तकके सभी बगाली पहले '*ढीली धोतीवाले*' कहे जाते थे और लोग '*बगाली*' शब्द सुनते ही नाक भौ सिकोडने लगते थे। पर जब उनमें अपना नाम उज्ज्वल करनेकी उच्चाकाक्षा उत्पन्न हुई तब उसका प्रसार भी देखते देखते बगालके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक हो गया। बंग-भग होनेके कारण दोनों प्रान्तोंमें और भी दृढ मेल हो गया। अस्तु। इसी प्रकार यदि प्रत्येक भारतीय राष्ट्र अपनी अपनी राष्ट्रीयताका यथोचित अभिमान * करके अन्य जातियोंके साथ प्रेमभाव बढावे तो वह समय भी आ जायगा जब कि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य देशोंकी तरह यहॉ भी राष्ट्रसघ बन जायगा। लेकिन इस समय यदि प्रत्यक्ष देखा जाय तो आयर्लैण्ड और

* बगालियोंमे राष्ट्रीयताका जो अभिमान है वह यथोचित होनेकी सीमासे कहीं अधिक बढा-चढा और अनुचित है। भारतकी अन्य जातियों, देशों अथवा वहॉंके नेताओ आदिके लिए उनके हृदयमें विशेष आदर नहीं है। उनकी समक्षमे बगालसे बढकर कोई देश नहीं है और बगाली जाति विद्या, बुद्धि, नेतृत्व आदि गुणोंमें सर्वश्रेष्ठ है। अपनी इसी ना-समझीके कारण वे अन्य भारतवासियोंके साथ व्यवहार करनेमे बहुत कुछ उपेक्षा करते हैं। उनका यह दुर्गुण आवश्यक प्रेमभावकी वृद्धिमें बहुत बाधक होता है। इसका परिणाम यही होगा कि जिस तरह और लोगोके साथ बगालियोंको सहानुभूति नहीं है, उसी तरह बगालियोंके साथ भी किसीको सहानुभूति न रह जायगी।—अनुवादक।

भारतवर्षके क्षेत्र-फल और लोक-संख्यामें जो अन्तर है वह हमारी संकीर्ण राष्ट्रीयताके प्रतिकूल ही है, और इन दोनों देशोंके वैधर्म्यका विचार करते हुए हिन्दुओंकी संख्याकी अधिकता और देशका विस्तार हमारे लिए बाधक ही है और इसी लिए फ्राउड सरीखे इतिहासकारको भी कहना पड़ा था कि–" अँगरेज लोग हिन्दुस्तान पर राज्य कर सकते है, पर आयर्लैण्ड पर राज्य नहीं कर सकते। " वैधर्म्यका यह महत्त्वपूर्ण विषय सदा ध्यानमें रखना चाहिए।

उपसंहार। आयर्लैण्डके इतिहासके सम्बंधमें जो कुछ फुटकर बातें और अपने विचार हमने इस पुस्तकमें पाठकोंके सामने उपस्थित किये है उनके उपसंहारके रूपमें कुछ बातें बतलाकर हम यह भाग समाप्त करते हैं। आयर्लैण्डका मनन करने योग्य इतिहास पाँच सौ वर्षोंका है और उसमेंसे सौ डेढ़ सौ बरसका इतिहास तो भारतवर्षकी वर्त्तमान स्थितिसे बहुत ही कुछ मिलता जुलता है और उससे बहुत कुछ शिक्षा ली जा सकती है। कोई विषय चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक क्यों न हो, तो भी उसके सम्बन्धमें कुछ लिखनेके लिए एक स्वाभाविक मर्य्यादा होती है, इसलिए उक्त इतिहासकी केवल मुख्य मुख्य बातें बतलाकर और इस बातका दिग्दर्शन कराके कि वे भारतके इतिहासके लिए कहाँ तक उपमानभूत हो सकती है, हमें अपनी कलम रोकनी पड़ती है। आयरिश लोगोंके युद्धों, सन्धियों, विद्रोहों, उन्हें रोकनेके लिए अँगरेज अधिकारियोंके उपायों और अन्याचारों, आयर्लैण्डके राजकीय संगठन और शासन-पद्धति, साम्राज्य और स्थानिक स्वराज्यके सम्बन्धके नियम आदि, समाजरचना, विद्या और कला, लोक-स्वभाव और आयरिश नेताओंके आन्दोलनों आदिका यदि पूरा पूरा इतिहास दिया जाय, तो एक बड़ाभारी ग्रन्थ बन जायगा। तो भी पिछले सात आठ भागोंमें इस इतिहासका जो अंश हमने दिया है,

आशा है कि पाठक उससे यह बात समझ गये होंगे कि आयरिश लोगोंका अँगरेजोंके साथ पूर्वापर सम्बन्ध कैसा बनता गया, उनका राजकीय ध्येय क्या है और इस ध्येयकी प्राप्तिके लिए आज तक उन लोगोंने कौन कौन उपाय किये है। बहुत दिनोंतक आयर्लैण्डमें दमननीतिका अवलम्बन होता रहा और अब इधर कुछ दिनोंसे भारतमें भी उसी नीतिका अवलम्बन होने लगा है। अत: भारतवर्षके लिए आयर्लैण्डका इतिहास अनेक विषयोंमें आदर्शरूप है और इस योग्य है कि यहाँके शासक और प्रजा दोनों ही शान्तिपूर्वक उस पर विचार करके उससे शिक्षा ग्रहण करें। यद्यपि संसारमें कोई दो आदमी कभी सोलहों आने समान नहीं होते, तो भी प्रत्यक्ष व्यवहारमें बहुधा ऐसी समानता होती है जिससे भ्रान्ति हो जाती है। सभी जगह मनुष्यका स्वभाव एकसा होता है, इस लिए भिन्न भिन्न देशोंके इतिहासमें इतनी समानता दिखाई देती है कि जिससे यह सिद्धान्त ठीक जान पडने लगता है कि–"ससारमें इतिहासकी पुनरावृत्ति होती है।" लेकिन जैसा कि हमने पहले एक स्थान पर दिखलाया है, हिन्दुस्तान और आयर्लैण्डमें कुछ ऐसी विशेष समानता है जैसी जुडवाँ भाइयोंमें होती है। आयर्लैण्डके इतिहाससे सीखने योग्य बात यही है कि केवल तामसी वृत्तिके अत्याचारों और उपद्रवोंसे राष्ट्रका उद्धार नहीं होता, बल्कि राष्ट्रीयताकी भावना बिलकुल सात्त्विक है और शासक चाहे कितना ही दमन क्यों न करें तो भी राष्ट्रीयताकी कल्पना उठती और बढती ही है। जिस प्रकार शासक लोग अपने मनसे ही प्रजाका अन्तिम ध्येय समझ लेते हैं उसी प्रकार प्रजा भी यह समझती है कि अपनी राजसत्ता छोडनेमें शासक लोग अप्रसन्न क्यों होते है। यदि केवल जबानी बातोंसे ही आपसका झगडा मिट सकता होता तो 'आन्दोलन' और 'दमन' शब्दका अस्तित्व ही न होता। जिस प्रकार अनुभव या साक्षात्कारके बिना ब्रह्मज्ञान

मिथ्या है, उसी प्रकार बिना प्रत्यक्ष अनुभवके राजकीय अन्तिम साध्य भी मिथ्या ही होता है। इसी लिए व्यावहारिक राजनीतिमें लड़ाइयाँ होती है और जिस प्रकार प्रजा पग पग पर अन्तिम साध्यका ध्यान और उच्चारण करनेका प्रयत्न करती है, उसी प्रकार शासक भी उनकी उस प्रवृत्तिको नष्ट करनेका प्रयत्न करते है। इस द्वन्द्वमें प्रत्येक देशाभिमानी मनुष्यको यही जान पड़ता है कि मैं सारी प्रजाका प्रतिनिधि हूँ, और प्रत्येक राजसेवकमें यह भाव उत्पन्न होता है कि राज्य सँभालनेका सब भार मुझ पर ही है। यदि अपने बम या पिस्तोलके ठीक निशाने पर लगनेके कारण कोई अत्याचारी मनुष्य यह समझ सकता है कि–"अँगरेजी राज्यका अभेद्य परकोटा मैने तोड़ दिया" अथवा कोई पुलिस अफसर एकाध झूठा मुकद्मा खड़ा करके और कुछ निरपराध मनुष्योंको दण्ड दिलवाकर यह समझ सकता है कि–"मैंने अच्छी तरह राजद्रोहका दमन किया।" तो यदि स्वदेशी और बहिष्कार सरीसा आन्दोलन उत्पन्न करनेवाला कोई देशभक्त यह समझे कि–" एक आदमी जितना राष्ट्रोद्धार कर सक्ता है उतना राष्ट्रोद्धार मैने किया।" अथवा काउन्सिलोंमें कुछ अधिक भारतवासियोंको स्थान देनेवाला स्टेट सेक्रेटरी अपने मनमें यह समझे कि–" मैंने ऐसी राजनीतिज्ञतासे शासन किया जैसी राजनीतिज्ञतासे आजतक कभी किसीने शासन नहीं किया।" तो इसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। इसप्रकारका भाव रख कर राजा और प्रजा दोनों पक्षोंके लोग जो उद्योग करते हैं उन्हींसे राष्ट्रका राजकीय इतिहास बनता है। हम केवल यही दिखलाना चाहते थे कि जिसप्रकार आयर्लेण्डमें यह इतिहास बना है उसीप्रकार वह भारतमें भी बन रहा है और इसमें कुछ न कुछ सिद्धि भी हुई है।

आयर्लेंटमें राष्ट्रीयताकी कल्पनाके उदित होनेके समयसे लेकर आजतक जो आन्दोलन हुए हैं, समय समय पर उनका नामनिर्देश होता

रहा है। परन्तु उनका पूरा इतिहास नहीं दिया जा सकता। विहगम दृष्टिसे देखते हुए आयरिश लोगोंकी तीन प्रधान माँगें थीं—धार्मिक स्वतत्रता, भूमिका स्वामित्व, और स्वराज्य। इनमेंसे पहली माँग तो सन् १८२९ में पूरी हुई। धार्मिक स्वतत्रताकी तरह धार्म्मिक शिक्षाकी स्वतत्रता भी आयरिश लोग माँगते है, लेकिन कैथोलिक लोगोंकी अभी-तक कोई स्वतंत्र युनिवार्सिटी नहीं बनी है। पर कभी न कभी वह बनेगी ही। जमीनके सम्बन्धमें उनकी प्रार्थना सन् १८७० से ही अंशत. मानी जाने लगी और सन् १९०३ में कन्सर्वेटिव मत्रिमण्डलके रहते हुए जमीनके सम्बन्धमें जो कानून बना उसके कारण उनकी माँग बहुतसे अशोंमें पूरी हो गई। पहले सन् १८७० के कानूनसे यह बात सिद्ध हो गई कि आयर्लैण्डकी जमीनके मालिक आयरिश ही होने चाहिएँ। लेकिन चालीस वर्षतक यह विचार होता रहा कि अँगरेजी जमींदारोंसे अपनी जमीन छुडवानेके काममें आयरिश खेतिहरोंको किस प्रकार सहायता दी जाय, और अब यह ते हुआ है कि इस कामके लिए उन्हें सरकारी खजानेसे मदद की जाय। अब दिन पर दिन आयरिश खेतिहरोंके अधिकारमें बराबर जमीन आती जाती है, राजनीतिके क्षेत्रमें झगडनेके लिए राष्ट्रके लोगोंमें पहलेसे ही एक विशेष प्रकारकी सामाजिक सुस्थितिकी आवश्यकता होती है और आयरिश लोगोंकी उक्त दोनों माँगें पूरी हो जानेके कारण उनके समाजमें वह सुस्थिति आ गई है। जिस समय धार्म्मिक और सामाजिक स्वतत्रता हो, राजकीय विषयोंमें समान अधिकार हों, शिक्षा आदि अपने अधिकारमें हों, तभी राजनीतिक प्रश्नोंकी अच्छी तरह मीमासा हो सकती है। सुराज्य और सुस्थिति होने पर यह नहीं कहा जा सकता कि किसी राष्ट्रके लोग किस विशिष्ट प्रकारका स्वराज्य माँगेगे, तो भी यह यह बात निर्विवाद है कि आयर्लैंडकी दरिद्रता और आपत्तिके

समय, उदाहरणार्थ उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें आयरिश लोग पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे, पर आगे चलकर जब उनकी स्थिति कुछ सुधरी तब उनकी माँग भी कुछ हलकी हो गई। सन् १८८६ और १८९३ में पार्लमेण्टके सामने जो होमरूल बिल उपस्थित किये गये थे और जिनका आयरिश समासदोंने समर्थन किया था उनमेंका स्वराज्य उस स्वराज्यसे एक कला कम ही था जो उससे सौ वर्ष पहले अर्थात् सन् १७८२ में आयरिश लोग प्रत्यक्ष माँगते थे। सन् १७८२ वाला स्वराज्य भी सच्चे और स्वतन्त्र स्वराज्यसे एक कला कम ही था। सन् १८९३ मे आयरिश लोग एकमतसे चौदह आने स्वराज्य माँगते थे और सहानुभूतिपूर्ण इतिहासकार लेकके कथनानुसार दैवगतिसे आयरिश लोकमतमें सन् १८०० और १८९३ के बीचमें कुछ ऐसा विलक्षण परिवर्त्तन हुआ कि जो लोकपक्ष सन् १७८२ में सोलह आने स्वराज्यके लिए लडनेको तैयार था उसीके वशज सन् १८९३ में चौदह आने स्वराज्य माँगनेके लिए भी तैयार नहीं थे और इग्लैण्ड तथा आयर्लैण्डके सयोगसे राष्ट्रको जो लाभ हो सकते थे वे ही उन्हें अधिक मूल्यवान जान पडते थे, लेकिन समाजमे ऐसा परिवर्त्तन होता ही रहता है। इसमें कोई विशेषता नहीं है। व्यक्ति या वर्गके मतमें चाहे परिवर्त्तन हो गया हो, तो भी होमरूल बिल पास होनेके समयतक आयर्लैण्डमें कमसे कम एक वर्ग अवश्य ऐसा था जो चाहे चौदह ही आने क्यों न हो, पर स्वराज्य माँगता था और लोकमत की सत्ता भी उसके हाथमें थी। सन् १८९३ तक जो आयरिश नेता हुए उन सबका स्विफ्ट अथवा बर्कमेंसे किसी न किसीकी शिष्य-शाखा अथवा सम्प्रदायमें समावेश होता है और स्विफ्ट अथवा बर्कमेंसे कोई शुद्ध स्वराज्यवादी नहीं था। तथापि स्विफ्ट राजस तत्वज्ञानी और राजस राष्ट्रीय सिद्धान्तका प्रतिपादक था और उसके शिष्य-

सम्प्रदायमें ल्यूकस, ग्रॅटन, फ्लड, ओकानेल और पार्नेलका समावेश होता है। बर्क्ले सात्त्विक तत्त्ववादी था और उसकी शिष्य-शाखामें वर्तमान नेता सर होरेश प्लकेट हैं। सन् १८९३ वाले होमरूल बिलके नामजूर होनेके बाद होमरूलका काम कुछ ठण्ढा पड गया और उसके दो अगोंमें दो दूसरे पक्ष प्रबल होने लगे। एक पक्ष 'गोलिक अमेरिकन लीग' का और दूसरा सर होरेश प्लकेटका। पहले पक्षका मत फीनियन लोगोंके मतका सा था और पार्नेलके उपरान्त राष्ट्रीय पक्षका जो ह्रास हुआ था और सन् १८९३ में होमरूलके रणक्षेत्र पर ग्लैडस्टन साहबका जो पराभव हुआ था उससे उस पक्षके एकान्तिक स्वातन्त्र्य-वादमें पीछेसे थोडा तेज आ गया था। दूसरे पक्षका सिद्धान्त बर्क्लेके सिद्धान्तके अनुसार था और उसका मत था कि आयरिश लोगोंको अपनी स्थिति सुधारनेके लिए राजकीय आन्दोलनके साथ साथ बल्कि उससे कुछ अधिक ही, शिल्प, कृषि, सराफी और व्यापार आदिका ज्ञान प्राप्त करके स्वावलम्बनके तत्त्व पर अपनी साम्पत्तिक अवस्था सुधारनी चाहिए। जमीनके सम्बन्धमें जो आखिरी कानून बने थे वे इसी पक्षके आन्दोलनका फल थे और उन कानूनोंके कारण इस पक्षमें धीरे धीरे बहुतसे लोग आ गये थे। लेकिन ऊपर बतलाये हुए पहले पक्षका अमेरिकामें जितना जोर था उतना आयर्लैण्डमें नहीं था। आयरिश इतिहासके भिन्न भिन्न समयके अनेक उदाहरणोंसे यह बात सहजमें सिद्ध की जा सकती है कि राजकीय सुधार-सम्बन्धी निराशा और एकान्तिक स्वतन्त्रताकी माँगकी समान व्याप्ति होती है। अर्थात् सुधारोंसे निराश होने पर लोग पूर्ण स्वराज्य माँगने लगते हैं। यद्यपि आगे चलकर सन् १७९८ अथवा १८४४ की तरह विद्रोह करनेमें कठिनाइयाँ बढ गई थीं तो भी किसी बहुत ही अनुकूल समयमें आवश्यकता पडने पर सम्भव था कि वह पक्ष कुछ उपद्रव खडा कर देता।

(वर्तमान यूरोपीय महायुद्धके समय अप्रैल सन् १९१६ में आयर्लैण्ड-में उसीके सिद्धान्तोंकी कृपासे एक छोटासा विद्रोह भी हो गया था जो सहजमें ही और तुरन्त शान्त कर दिया गया था।) इग्लैण्ड उस पक्षको दबाकर दूसरे पक्षको प्रबल करना चाहता था। इसी पक्षको कुछ कुछ सन्तुष्ट करनेके अभिप्रायसे १०–१२ बरस पहले लिबरल मन्त्रिमण्डलने 'अधिकार-विभाग' के स्वरूपमें दस आने स्वराज्य देना चाहा था, पर उस पक्षने उसे लेनेसे साफ इनकार कर दिया। लेकिन इग्लैण्ड किसी न किसी रूपमें अधिकार देकर आयरिश लोगोंको सन्तुष्ट करना चाहता था, इस लिए सन् १९१२ में मि० एस्क्विथने पार्लमेण्ट-में आयरिश होमरूल बिल उपस्थित किया, जो बड़ी बड़ी कठिनाइयोंसे अन्तमें सितबर १९१४ में पास हो गया। इस प्रकार आयर्लैण्डका राष्ट्रीय आन्दोलन बहुतसे अंगोंमें सफल हो गया। आजसे प्राय सत्तर वर्ष पहले जिस राष्ट्रके विषयमें लोगोंको यह सन्देह होता था कि यह बचेगा अथवा नष्ट हो जायगा, वही राष्ट्र आयरिश लोगोंकी निःसीम राष्ट्रभक्ति और उज्वल स्वार्थत्यागके कारण बहुत शीघ्र स्वराज्यका सुख भोगता हुआ दिखाई देगा। आयरिश लोगोंमें थोड़ेसे दोष थे जिनके कारण उनके प्रयत्नके सफल होनेमें कुछ अड़चनें थीं। लेकिन जब उन दोषोंका पता लग गया और वे दूर किये जा सके तब भारतवासियोंको भी निराश नहीं होना चाहिए। यदि आयर्लैण्ड पर ईश्वर प्रसन्न है तो भारतवर्षसे वे अप्रसन्न नहीं हैं। दोनोंको देखते हुए मद्यपान आदिके दोष आयरिश लोगोंकी अपेक्षा भारतवासियोंमें अवश्य ही बहुत कम हैं। इस समय यदि हमें आवश्यकता है तो एकता, उद्योग और स्वार्थत्याग-की। यदि भारतवासियोंमें ये गुण आ गये तो आपसे आप इस बातका पता लग जायगा कि इग्लैण्डके सम्बन्धसे देखते हुए हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य मिलनेमें आयर्लैण्डकी अपेक्षा अनुकूल बातें ही अधिक हैं।

आयर्लैण्डका होमरूल बिल पास हो गया है और भारतने वर्त्तमान यूरो-पीय युद्धमे साम्राज्यके प्रति जो भक्ति दिखलाई है और तन-मन-धनसे उसकी जो सहायता की है उसके बदलेमें वह आशा करता है कि युद्ध-की समाप्ति पर शीघ्र ही उसे भी स्वतन्त्रता मिल जायगी। ईश्वर करे, उसकी यह भूषणभूत आशा सफल हो।

चरित्र-माला।

किसी देशके लोगोंके चरित्रकी कल्पना उस देशके प्रधान पुरुषोंके चरित्रसे की जा सकती है। और आयर्लैण्डके सबधमें तो यह बात और भी ठीक उतरती है। क्यों कि आयर्लैण्डका इतिहास सस्थाका इतिहास नहीं बल्कि व्यक्तियोका ही इतिहास कहा जा सकता है। आयरिश राष्ट्रके लोगोंके गुणो और दोषोंका वर्णन पीछे आठवें भागमें थोडा बहुत किया जा चुका है। अब आगेकी चरित्रमाला पढ़कर पाठक यह बात अच्छी तरह देख ले कि समष्टिरूप समाजके गुण दोष व्यष्टिरूपसे इन भिन्न भिन्न सुप्रसिद्ध पुरुषोंमें कैसे उतरे हुए थे। यह चरित्रमाला कालानुक्रमसे दी हुई है और इसका कारण स्पष्ट ही है। लेकिन एक दूसरी रीतिसे भी इन लोगोंका अनुक्रम लगाया जा सकता है, और वह राजकीय आन्दोलनकी पद्धतिकी दृष्टिसे होगा। इस अनुक्रमके तत्त्वके अनुसार पहले आइजिक बट, तब चार्लमाट, ग्रॅटन, तब डेनियल ओकानेल, तब पानेल, तब स्मिथ ओब्रायन, तब उल्फटोन और तब राबर्ट एमेट आते हैं। और बिलकुल शास्त्रशुद्ध, सरल और बाकायदा या न्यायानुमोदित आन्दोलन करनेवाले नेताओंसे लेकर बिलकुल ही उद्दण्डतापूर्ण और नीति-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाले नेताओंकी एक माला तैयार हो जाती है। यह बात नहीं है कि वास्तविक चरित्र,

नीतिमत्ता, बुद्धिमत्ता अथवा देशभक्तिकी दृष्टिसे देखते हुए उक्त अनुक्रम सीधा अथवा उलटा ही लग सकता है। बल्कि जिस प्रकार किसी रंगकी भिन्न भिन्न छायायें होती है और उनमेंसे किसी एकके दूसरीकी अपेक्षा सप्रमाण अच्छी सिद्ध होनेके साधनके अभावमें रुचि-वैचित्र्यके कारण कोई छाया किसीको और कोई किसीको पसंद होती है उसी प्रकार यह भी संभव है कि उक्त चरित्रवालोंके भिन्न भिन्न पुष्प किसीको पसंद और किसीको नापसंद हों।

> दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव।
> तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्॥

यह तो मधुर पदार्थोंके संबंधकी बात हुई। लेकिन भोजनमें भी हम लोग यही बात देखते है कि किसीको खूब बढ़िया ताजा मीठा दही अच्छा लगता है और किसीको तीन दिनका बासी खट्टा मट्ठा। उक्त सब व्यक्तियोंमें, यह तो माना जा सकता है कि, देशभक्तिका धर्म्म साधारण था। लेकिन साथ ही यह बात भी माननी ही पड़ेगी कि उनके स्वीकार किये हुए भिन्न भिन्न मार्गोंके भेदका कारण रुचिवैचित्र्य-के सिवा और कुछ भी नहीं था। लेकिन ग्रॅटनने जो केवल न्याया-नुमोदित और वैध आन्दोलन किया उसका यह अर्थ नहीं है कि उसकी देशभक्ति बहुत ही निम्न कोटिकी थी, और राबर्ट एमेटने जो एक दम विप्लवतक दौड़ लगाई उसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसकी देश-भक्ति बहुत श्रेष्ठ कोटिकी थी। मूर्खतापूर्ण और उतावलपनके साहसको जिस प्रकार अनेक अवसरों पर उज्ज्वल देशभक्तिका अनुचित श्रेय मिलनेकी सम्भावना होती है उसी प्रकार सच्ची और उचित दूरदर्शिता-पर कायरताके व्यर्थ दोषारोपणकी भी सम्भावना होती है। देशप्रेमकी पहचान मनुष्यके किसी एकाध कृत्यसे नहीं होती है। उसके समस्त जीवन-क्रमसे यह निश्चय किया जाता है कि उसमे वह गुण था या नहीं।

इस चरित्रमालामें आयर्लैण्डके इतिहाससे सन् १७४० से लेकर १८९० तकके अर्थात् १५० वर्षोंके सभी नेताओंका समावेश किया गया है, और उन सबके मेलसे एक प्रकारकी शृंखला भी बनगई है। चार्लमाट और ग्रॅटन दोनों समकालीन थे। ग्रॅटनकी प्रायः मध्य अवस्थामें उल्फटोन और एमेटके विद्रोह हुए। ग्रटनको डैनियल ओकानेलने देखा था और इन वृद्ध तथा तरुण देशभक्तोंमें बातें भी हुईं थीं। स्मिथ ओब्रायन ओकानेलका प्रतिपक्षी और समकालीन था। आइजिक बट ओकानेलके सामने लडका जान पडता था, पर तो भी वह उसका समकालीन था। और पार्नेलने आइजिक बटको उसकी उतरती अवस्थामें आयरिश पक्षके नेतृत्वसे पदच्युत किया था। अर्थात् इन आठ व्यक्तियोंका इतिहास आयर्लैण्डके १५० वर्षोंका इतिहास है।*

१ अर्ल आफ चार्लमांट।

अठारहवीं शताब्दीके अंतमें आयर्लैण्डके राष्ट्रीय आंदोलनकारियोंमें लार्ड चार्लमाट प्रधान नेता थे। इनका जन्म सन १७२८ मे डबलिन नगरमें एक बडे अमीर जमींदारके घरमें हुआ था। वाई काउन्टकी पदवी इनके घरानेमें कई पीढियोंसे चली आती थी। बाल्यावस्थामें भी ये बडे बुद्धिमान्, विद्याप्रेमी और गुणग्राहक थे। अपनी युवा अवस्था इन्होंने सारे योरपमें प्रवास करनेमें बिताई थी। २६ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने डबलिन विश्वविद्यालयमें एल० एल० डी० की उपाधि पाई थी। उसी समय ये आर्मी प्रांतके गवर्नर भी बनाये गये थे। लेकिन ये हुकूमत चलानेकी अपेक्षा लोकसेवा करना अधिक उत्तम समझते थे, अत तत्कालीन आयरिश लिबरलपक्षमें सम्मिलित हो गये। सन् १७६० ई० मे आय-

* पुस्तक बढ जानेके भयसे तथा अन्य कई कारणोंसे ये जीवनियाँ इस अनुवादमे अविकल नहीं दी जा सकी, इनके सबयकी मुख्य मुख्य बातें सक्षेपमे ही दे दी गई है। अनुवादक।

लैंण्डके उत्तर भागमें जो बलवा हुआ था, उसमें इन्होंने अपनी थोड़ीसी सेना लेकर बेलफास्ट नगरकी रक्षामें अच्छी सहायता दी थी। कैथोलिक लोगोंके साथ इनका व्यवहार बहुत ही मातृभावयुक्त और प्रेमपूर्ण होता था। इन्होंने उन्हें सैनिक शिक्षा दिलवाने तथा सेनामें भरती करानेके लिए बहुत प्रयत्न किया था। सन् १७६२ ई० में जब फिर उत्तर आयर्लैण्ड-में प्रोटेस्टेण्टोंने बलवा किया तब इन्होंने राजपक्षको अच्छी सहायता दी थी। उसीके उपलक्षमें इन्हें अर्लकी पदवी मिली थी। आयरिश पार्लमेण्टके सुधार कराने तथा उसके सभासदोंकी संख्या और अधिक बढ़वानेके प्रयत्नमें भी इन्होंने, बिना राजपक्षके असंतोष आदिका विचार किये, अच्छी सहायता दी थी। सन् १७७३ से ये अपना सारा समय आयर्लैण्डमें ही बिताने लगे थे। उस समय आयर्लैण्डके प्रायः सभी निवासी मिलकर स्वतंत्र होनेका उद्योग करने लगे थे। जब आयर्लै-ण्डकी सेना अमेरिकामें लड़नेके लिए भेजी गई थी तब आयर्लैण्डमें साठ हजार ऐसे स्वयंसेवकोंकी सेना खड़ी की गई जिसमें अच्छे अच्छे नेताओंको बड़े बड़े पद मिले थे। इस सेनाके सैनिकोंने अपने देशको विदेशियोंके आक्रमणसे बचाने और साथ ही अपने देशको दासत्वसे मुक्त करनेके विचारसे हथियार उठाये थे। अर्ल चार्लमाण्ट इस सेनाके प्रधान नायक थे और जब तक वह सेना रही तब तक उसी पद पर रहे। इन्हींके प्रयत्नसे सन् १७८२ में आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र हुई थी और व्यापारसंबंधी कानून रद्द हुए थे। कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता देनेके संबंधमें आयरिश नेताओंमें जो मतभेद हुआ था उसके कारण स्वयंसेवकोंकी यह सेना बिना अपना काम पूरा किये ही टूट गई और साथ ही चार्लमाटकी अपने परम मित्र और प्रधान सहायक ग्रैटनके साथ अनबन हो गई, नहीं तो आयर्लैण्डमें संभवतः उन्हीं दिनों पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो गया होता। सन्

१७९१ ई० में अधिकारियोंसे मनमुटाव हो जानेके कारण चार्लमाण्टने आर्मीकी गवनरीसे इस्तेफा दे दिया। लिबरलोंके 'व्हिग क्लब' में भी चार्लमेण्टने बहुत कुछ काम किया था। लेकिन फ्रान्सकी राज्यक्रांतिका चार्लमाटके मन पर कुछ उलटा ही परिणाम पडा, इसी लिए ये कैथोलिक लोगोंको स्वतन्त्रता देनेके कुछ विरोधी हो गये थे। अतमें देशसेवाके कामोंमें भी यथेष्ट सफलता न मिलनेके कारण, इनका उत्साह भग हो गया और ये उसमें बहुत ही कम योग देने लगे। लेकिन सन् १७९८ वाले विद्रोहके कारण जब देशकी बहुत दुर्दशा हुई तब ये बहुत दु:खी हुए थे। उस समय ये वृद्ध हो गये थे, अतः देशसेवाका कोई विशेष कार्य्य नहीं कर सके। उसी अवसर पर १७९९ में इनका देहात हो गया। अपनी विद्या, धन, स्वतन्त्रता और सामाजिक उच्च स्थिति आदिका देशसेवाके कामोंमें इन्होंने जितना उत्तम और अधिक उपयोग किया वह केवल आदरणीय ही नहीं बल्कि अनुकरणीय भी है।

२ हेनरी ग्रॅटन।

पूर्णत नियमानुमोदित रीतिसे आन्दोलन करनेवाले हेनरी ग्रॅटनका जन्म सन् १७४६ में हुआ था। इनके पिता जान ग्रॅटन राजपक्षके थे ओर प्रजापक्षीय आन्दोलनके विरोधी थे। बाल्यावस्थामें हेनरी ग्रॅटन बडे ही परिश्रमी, बुद्धिमान्, दृढनिश्चयी और तेज पर कुछ डरपोक थे। अपना डर दूर करनेके लिए ये रातको कब्रिस्तान आदि भयानक स्थानोंमे जाकर बैठा करते थे। इन्होंने आरम्भमें ग्रीक और लेटिन भाषाओंका बहुत अच्छा अभ्यास आयर्लैंडमें ही किया था। इनकी युवावस्थाके समय डा० ल्यूकस और हेनरी फ्लड आदि नेता काम करते थे। उस समय फ्लडके सम्बन्धमें इनके मनमें विशेष आदर और प्रेम था, पर आगे चलकर ये दोनों प्रतिपक्षी या परस्पर विरोधी हो गये

थे और पार्लमेंटमें दो पक्षोंके नेता होकर खूब लडते झगडते थे। हेनरी ग्रॅटनका प्रजापक्षमें चला जाना उनके पिता जान ग्रॅटनको अच्छा न लगा, जिससे बाप-बेटेमे अनवन हो गई और बापने अपनी मिलकियत परसे बेटेकी वरासत रद्द कर दी । सन १७६७ में ग्रॅटन बैरिस्टरी पढनेके लिए विलायत गये, पर वहॉ ये बैरिस्टरीकी पढाईमें अधिक ध्यान नहीं देते थे, वल्कि वहुतसा समय पार्लमेंटके व्याख्यान सुननेमें विताते थे और वक्तृत्वका अभ्यास करनेके लिए चॉदनी रातमें किसी पेड या पत्थरके सामने खडे होकर व्याख्यान दिया करते थे । इससे कोई कोई इन्हें पागल भी समझते थे । अन्तमें बैरिस्टरीकी परीक्षा देकर सन १७७२ में ये आयर्लैण्ड लौट आये । पर वकालतमें इनका मन नहीं लगता था, इससे पहला मुकदमा ये हार गये और इन्होंने अपने मुवक्किलको आधी फीस लौटा दी और डवलिन छोडकर कहीं एकान्त-वास करना निश्चय किया । पर शीघ्र ही आकस्मिक कारणोंसे इन्हे राजनीतिमें प्रवेश करना पड़ा, जिससे एकान्तवासका विचार छूट गया ।

सन १७७५ में चार्लमाटकी सहायतासे पार्लमेण्टके चुनावमें ये भी आ गये । फ्लड मन्त्रिमण्डलमे चले गये और पार्लमेण्टमें उनका स्थान इन्हें मिला । आरम्भमें ही इन्होंने पार्लमेण्टमें अच्छी तरह अपनी योग्यता सिद्ध कर दी । उस समय इग्लैण्ड और आयर्लैण्डमें झगडा चल रहा था । व्यापार-सम्वन्धी कानूनोंसे दु खी होकर आयरिश लोगोंने अंगरेजी मालका वहिष्कार आरम्भ कर दिया था । गुप्त रूपसे कुछ लोग विद्रोहकी चिन्तामें थे, स्वयसेवकोंकी पलटनें तैयार हो गई थीं और सव लोग व्यापारसम्वन्धी कानून रद्द करनेके लिए एकमत हो गये थे। उस समय ग्रॅटनने नियमविरुद्ध आन्दोलनका खूब विरोध किया था । सौभाग्यवश रक्तपात नहीं हुआ और व्यापार-सम्वन्धी कानून रद हो

गये। पर लोगोंने समझा कि ये कानून स्वयसेवकोंके तलवार खींचनेके कारण रद हुए है, जिससे उनका उत्साह बढ गया और उन्होंने चाहा कि किसी प्रकार यह भी निश्चित हो जाय कि भविष्यमें फिर कभी ये कानून जारी न होंगे। इसके लिए वे अपनी पार्लमेण्टके अधिकार वढाकर उसे स्वतत्र करना चाहते थे। ग्रॅटनका मत भी उस समय ऐसा ही था, पर कुछ राजनीतिज्ञ उस समय शान्त रहकर केवल अँगरेजोंके प्रति कृतज्ञता ही प्रकट करना चाहते थे। पर यह उन लोगोंके विचार नहीं सुनना चाहते थे, इससे पार्लमेण्टकी छुट्टियोंमें डबलिन छोटकर एकान्तवास करनेके लिए दूर चले गये। ये कहते थे कि लोग कृतज्ञता अवश्य प्रकट करें, पर उसके लिए अपनी भावी उच्चाकाक्षायें न छोट दे।

सन् १७८१ में इन्होंने पहले पहल पार्लमेण्टकी स्वतत्रताका प्रश्न आयरिश पार्लमेण्टमें उठाया। लेकिन विना सेवकोंकी सहायताके उन्हे सफलताकी आशा नहीं थी, इसलिए १ फरवरी सन १७८२ को उन्होंने डवलिनमें स्वयसेवकोंके प्रतिनिधियोकी एक सभा की जिसमे १४३ सस्थाओंके २४४ प्रतिनिधि आये थे। उस सभामे पार्लमेण्टकी स्वतत्रता और कैथोलिक लोगोंके अधिकारके सम्बन्धमें प्रस्ताव पास हुए थे। इसके उपरान्त १६ अप्रैल सन १७८२ को ग्रॅटनका पार्लमेण्टकी स्वतत्रताके सम्बन्धका प्रस्ताव आयरिश पार्लमेंटमें पास हुआ। उसदिन आयर्लेण्डके लोगोंमें खूब एकता दिखाई दी। लेकिन जब ब्रिटिश पार्लमेण्ट इस वातको मजूर न करती तबतक इसका फल ही क्या हो सकता था? पर सौभाग्यवश उस समय ग्रॅटनका परममित्र फाक्स ब्रिटिश मत्रि-मण्डलमें था और आयर्लेण्डका स्टेट सेक्रेटरी था। ग्रॅटनने एक निजके पत्रमें फाक्सको लिखा कि यदि ब्रिटिश पार्लमेंट हमारी पार्लमेंटको स्वतत्रता दे तो ठीक ही है, नहीं तो बडे दुःखसे मुझे स्वयसेवकोंको हथियार उठानेके लिए कहना पडेगा। फाक्स स्वतत्रताका पक्षपाती

और भिन्न भिन्न वर्गोंसे लोगोंकी सख्याके अनुसार प्रतिनिधि चुने जायँ। अर्थात् प्रतिनिधित्वका लाभ सब लोग उठा सकें, कुछ खास आदमियोंके हाथमें ही सत्ता न रह जाय। ग्रॅटन, फ्लड, चार्लमाट आदि सभी इस सुधारके पक्षमें थे। पर फुटकर बातोंमें वे लोग सहमत नहीं होते थे। उसी अवसर पर ग्रॅटन और फ्लडकी अनबन बहुत बढ़ गई और उन लोगोंने भरी पार्लमेंटमें एक दूसरेको ऐसी ऐसी बातें कहीं, जैसी कभी कहनी नहीं चाहिए। द्वन्द्वयुद्धकी नौबत आ जाती, पर लोगोंने बीच बचाव कर दिया। उस समय स्वयसेवकोंका सचालन चार्लमाटके हाथमें था और ग्रॅटनके साथ उसका सम्बन्ध छूट रहा था। ८ सितम्बर सन् १७८३ को स्वयसेवकोंकी २७२ पलटनोंके पाँच सौ प्रतिनिधियोंका एक सम्मेलन हुआ, जिसमें पार्लमेण्टके सुधारका प्रस्ताव पास हुआ। उस प्रस्तावको पार्लमेंटमें उपस्थित करनेके लिए उस सम्मेलनने फ्लडको नियुक्त किया। इसप्रकार ग्रॅटन पिछड गया। ग्रॅटनने उदारतापूर्वक पार्लमेंटमें फ्लडका पक्ष लिया, पर पार्लमेंटने फ्लडकी सूचना स्वीकृत नहीं की। इसके उपरान्त स्वयसेवकोंने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया, जिससे यह सुधार रह गया और उनके प्रति लोगोंका आदर भी घट गया। उधर ग्रॅटन और चार्लमाटका स्नेह भी टूट गया। उस समय मन्त्रिमडलने आयर्लैंडमें ब्रिटिश सेना बढानेके सम्बन्धमें सूचना दी थी, ग्रॅटनने इसका समर्थन किया, जिससे वे लोगोंके चित्तसे बहुत उतर गये।

आयरिश पार्लमेण्टका सुधार नहीं हुआ और अन्तमें सन् १८०० में वह टूट गई। इस कामके लिए मन्त्रिमण्डलने लोगोंको रिश्वतें तो दीं ही थीं, पर साथ ही आयरिश लोगोंमें आपसमें अनबन भी बहुत थी और वे एक दूसरेका महत्त्व भी खूब घटा रहे थे। उस समय व्यापार-सम्बन्धी कानूनोंका झगडा फिर उठा। फ्लड चाहता

था कि देशी कारीगरीकी रक्षाके लिए विलायतसे अनेवाले मालपर टेक्स लगाया जाय। परन्तु ग्रॅटन कहते थे कि यदि इग्लेण्डके मन्त्रि-मण्डलको पराभूत करना हो तो आयरिश लोगोंको लिबरल पक्षसे मेल रखना चाहिए और लिबरल पक्ष इस अनियन्त्रित व्यापार-पद्धतिके पक्षमें है, इस लिए आयरिश लोगोंको उसका विरोध न करना चाहिए और जहाँतक हो सके इग्लैंडसे मित्रता रखनी चाहिए। पर फ्लड कहता था कि, इग्लैण्डके दोनों ही पक्ष बराबर है। ग्रॅटन सरीखे मन्द-बुद्धि नेता यह नहीं समझते थे कि उनमेंसे कोई हमारा हित नहीं कर सकता, सब हमें मूर्ख बनाकर अपना काम निकालते हैं। फ्लडने आयर्लेण्डमें आनेवाले मालपर कर लगानेके सम्बन्धमें पार्लमेंटमें एक बिल उपस्थित किया पर वह नामंजूर हुआ। सुधारके प्रयत्न तथा इस बिलसे प्रधान मन्त्री पिट चिढ़ गया और उसने पार्लमेंटको तोड देना निश्चय किया। जब पार्लमेंटके कामोंमें बराबर अडचन पडने लगी तब लोगोंमें पार्लमेंटके सम्बन्धकी श्रद्धा और प्रीति घटने लगी। उधर पिट उसे तोडनेकी चिन्तामें था। उसी समय फ्रान्समें क्रान्तिके चिह्न देखकर आयरिश लोगोंका धर्म्म-द्वेष कम होने लगा, और धर्म्मसे भी श्रेष्ठ राजनीतिके तत्त्वोंका प्रसार होने लगा। इससे मन्त्रिमण्डल भय-भीत और सशंकित होने लगा। लोगोंमें वैमनस्य बनाये रखनेके लिए वह कहने लगा कि कैथोलिक लोगोंको उचित धार्म्मिक अधिकार देनेके लिए हम तैयार ही हैं। उस अवसर पर आयर्लैण्डके परम हितचिन्तक लार्ड फिझ्ज विलियम वहाँके वाइसराय नियुक्त हुए और ग्रॅटनने कुछ दिनोंतक मन्त्रीके पद पर रहकर उसके साथ काम किया। पर इन दोनोंके रहते हुए भी उनके हाथों आयरिश पार्लमेण्टके द्वारा कोई ऐसा काम नहीं हुआ जिससे कैथोलिक लोगों अथवा आयरिश राष्ट्रका कोई हित होता। पिटसे अनबन हो जानेके कारण शीघ्र फिझ्ज वि-

लियमको अपना स्थान छोड़ देना पडा। सन् १८९२ में आयरिश पार्लमेंटमें कैथोलिक लोगोंको अधिकार देनेके सम्बन्धमें एक बिल उपस्थित हुआ था जो नामजूर हुआ, इससे चिढ़कर कैथोलिक लोगोंने दगा किया। अधिकारियोंने प्रोटेस्टेंटोंका पक्ष लेकर बिना जॉच किये या मुकदमा चलाये ही तेरहसौ कैथोलिकोंको देश-निकालेका दण्ड दिया। दूसरे वर्ष अधिकारियोंने अपने अधिकार बढ़ानेके सम्बन्धमें एक बिल उपस्थित करके पास करा लिया। ग्रॅटन और उसके साथियोंने इस बिलका घोर विरोध किया था और कहा था कि ऐसे दमनकारक नियमोंसे देशका असन्तोष कम नहीं होगा। कैथोलिक लोगोंको समान अधिकार दिलानेके लिए ग्रॅटनने फिर एक बिल पेश किया जो नामजूर हुआ। दूसरे वर्ष उल्फटोनने विद्रोह किये और वह बहुतसे फ्रेंच जहाज लेकर आयर्लैण्ड पहुँचा। लेकिन तूफानसे वे जहाज नष्ट हो गये और आयरिश लोगोंने इस काममें उल्फटोनकी यथेष्ट सहायता नहीं की। ग्रॅटन विद्रोहके विरोधी थे। वे अधिकारियोंसे कहते थे कि अब भी तो ऑखें खोलो, पर अधिकारी कुछ सुनते ही न थे। इससे दुखी होकर दूसरे वर्ष वे पार्लमेंट छोड कर घर जा बैठे। पर अधिकारी इतनेसे भी सन्तुष्ट नहीं हुए और यह प्रमाणित करनेके प्रयत्नमें लगे कि वे विद्रोहमें सम्मिलित थे। उन्हीं दिनों वे आर्थर ओकानेल नामक अपने एक मित्रके मुकदमेमें गवाही देनेके लिए इग्लैण्ड गये। वहॉ उसके मित्रोंने यह समझकर उन्हें रोक रक्खा कि आयर्लैण्डमें अधिकारी उन्हें कहीं किसी आफतमें न फँसा दें। सन् १७९९ में विद्रोह और उपद्रव शान्त होने पर वे फिर आयर्लैण्ड लौटे और बारहसौ पाउण्ड खर्च करके व फिर पार्लमेंटके मेम्बर बने। दूसरे वर्ष जब पिटने आयरिश पार्लमेंट तोड़नेका प्रयत्न किया तब उन्होंने उसके विरोधमें अपना सारा वक्तृत्व सारा बल और सारा आवेश खर्च कर दिया, परन्तु पिटकी रिश्वतोंसे

लोगोंके केवल मुँह ही नहीं बन्द हुए थे बल्कि कान भी बन्द हो गये थे। अत ग्रैटनकी बात किसीने न सुनी। उस समय ग्रैटनने मन्त्रिमडलका सारा भण्डा फोड दिया था और उसकी रिश्वतकी कार्रवाई लोगों पर प्रकट कर दी थी। इससे चिढ कर मन्त्रिमण्डलकी ओरसे कॉरी नामक एक मन्त्रीने दूसरे ही दिन उसे द्वन्द्वयुद्धके लिए ललकारा। ग्रैटन जैसे सभाशूर थे वैसे ही रणशूर भी थे। अत उन्होंने द्वन्द्वयुद्धमें कॉरीको घायल करके छोडा। १ अगस्त सन् १८०० को ग्रैटनकी निराशाकी हद्द हो गई। १६० विरुद्ध और ११७ अनुकूल सम्मतियोंसे आयरिश पार्लमेंटने आत्मघातका प्रस्ताव पास किया और इस तरह वह सुधरनेके बदले टूट गई। इसके उपरान्त चार वर्षतक घर बैठे रह कर अन्तमे उन्होंने ब्रिटिश पार्लीमेंटमें प्रवेश करके कुछ काम करना ही अधिक उत्तम समझा और तदनुसार सन् १८०५ में वे ब्रिटिश-पार्लमेंटके सभासद भी हो गये। तबसे उनके मरनेके समय तक दो आन्दोलन होते रहे—एक केथोलिक लोगोंको अधिकार दिलानेका और दूसरा आयरिश पार्लमेंट फिरसे स्थापित करनेका। पर ग्रैटनके जीवनम एक भी आन्दोलन सफल न हुआ। सन् १८०५ से १८१८ तक प्रतिवर्ष कैथोलिक लोगोंको अधिकार दिलानेके लिए कुछ न कुछ प्रयत्न होता रहा, पर उमसे पार्लमेंटके सभासदोंके अनुकूल होनेके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। सन् १८१४ मे सफलताकी कुछ आशा हुई थी, पर ग्रैटन और ओकानेलमें इस सम्बन्धमें मतभेद हो गया कि केथोलिक बिशपका चुनाव राजा करे या पोप, जिससे बिल पास न हो सका। सन् १८१८ में यह मतभेद मिटा और ग्रैटन डबलिनवालोंकी ओरसे पार्लमेंटमें चुने गये। चुनावके दिन घर लौटते समय एक बदमाशने उन्हें लाठी मार दी, पर उन्होंने उदारतापूर्वक यह कहकर उसे छोड दिया कि यह सब धर्मान्धता है। सन् १८१० मे फिरसे पार्लमेण्ट स्थापित करनेके लिए डबलिनमें एक सभा हुई थी जिसमे ग्रैटन भी थे, पर उस समय वे इतना

निराश हो गये थे कि उन्हें पार्लमेंटकी स्वतत्रताकी आशा ही नहीं रह गई थी। सन् १८१८ के बादसे उनकी तबीयत बराबर खराब होती जाती थी, इसलिए उन्होंने पार्लमेंटके अध्यक्षसे बैठकर ही बोलनेकी आज्ञा ले ली थी, पर अन्तसमय तक उन्होंने अपने कर्त्तव्योंका पालन दृढतापूर्वक किया।

ग्रॅटनमें ऊँचे दरजेके देशाभिमान, बुद्धिमत्ता, निस्पृहता और स्वार्थ-त्याग आदि अनेक गुण थे। सन् १८०० में जब आयरिश पार्लमेंट घूस देकर तोडी गई तब वे मत्रियोंके लालचमें नहीं फँसे, बल्कि उन्होंने मत्रियों तथा सभासदोंके उस अनुचित कार्य्यका निर्भय होकर स्पष्ट रूपसे घोर विरोध किया था और यथासाध्य भावी दुरवस्थाको रोकनेका प्रयत्न किया था। पार्लमेण्टमें उसकी बातोंका आदर और महत्त्व मत्रि-योंकी बातोके समान होता था। विदेशियोंके शासनकालमें प्रजापक्षके किसी नेताको मंत्रीका पद नहीं मिलता, पर ग्रॅटनको मत्रीके पद पर रहनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे अधिकारियोंकी अथवा प्रजाकी प्रीति सम्पादन करना नहीं चाहते थे और जो उचित समझते थे सो निर्भयतापूर्वक कह डालते थे। वे दुराग्रही भी नहीं थे और सदा पार-स्परिक मत-भेद दूर करनेके प्रयत्नमे रहते थे। उनकी गिनती प्रधान आयरिश वक्ताओंमे होती है। उनका व्याख्यान अलकारों और गूढ़ विचारोंसे पूर्ण और सुशिक्षितोंके सुनने योग्य होता था। आयरिश राजनीतिज्ञों और वक्ताओंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

---

३ उल्फटोन।

दँगा-फसाद करके राष्ट्रीय स्वतत्रता प्राप्त करनेका प्रयत्न करनेवाले जो थोडेसे अविचारी आयरिश नेता हो गये हैं उल्फटोन उनमें-से मुख्य था। इसका जन्म सन् १७६४ में हुआ था। शिक्षा समाप्त करते ही इस अलौकिक बुद्धिमान्, उद्योगी, धीर, साहसी और कार्य्य-

कुशल व्यक्तिने राजनीतिमे प्रवेश किया और शीघ्र ही बडे-बडोंसे वाजी मार ली। सन् १७९१ मे उसने बेलफास्टमे 'सयुक्त आयरिश राष्ट्रमण्डल' नामकी सभा स्थापित की। यद्यपि वह स्वय प्रोटेस्टेंट था, तथापि देश-हितके विचारसे उसने पहले नियमानुमोदित रीतिसे केथोलिक लोगोंके कष्ट पहुँचानेवाले कानूनोंको रद् करनेका प्रयत्न किया। इससे सिद्ध होता है कि वह निरा अराजक या मूर्ख ही नहीं था, वल्कि स्वतन्त्रताका सच्चा प्रेमी था। जब सामाजिक दु ख दूर करनेके काममें बाधायें होने लगीं तब वह उस समयके दूसरे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कामोंमे लगा। उसने देखा कि ग्रॅटनके लगातार पन्द्रह सोलह वर्षतक प्रयत्न करने पर भी अन्तमें पिटकी रिश्वतोंसे आयरिश पार्लमेंट नष्ट होना चाहती है। उसी समय फ्रान्स और अमेरिकाकी दशा देखकर उसके मनमें एक विलक्षण बात आई। उसने सोचा कि जो बात फ्रान्स और अमेरिकामें हुई वह आयर्लैंडमें भी हो सकती है। पर परिस्थितिका ठीक ठीक ज्ञान न होनेके कारण उसका यह सोचना भी ठीक नहीं उतरा। सन् १७९४ में एक वादविवादके समय मतभेद होनेके कारण 'सयुक्त आयरिश राष्ट्रमण्डल' से नरम दलके सब लोग उठकर चले गये और बाकी बचे हुए लोगोंने क्रान्तिकारक गुप्त सभा स्थापित की। इस सभामें डबलिनके टोन, थामस एमेट, विलमन रसेल, नेपर टेण्डी आदि अनेक युवक मुख्य थे। टोनके प्रोटेस्टेंट होनेके कारण अलस्टर आदि प्रान्तोंमें भी उसे बहुतसे अनुयायी मिले। नये सभासदोंको सभामें सम्मिलित होनेके समय कुछ शपथ खानी पडती थी और उनका उत्तरदायित्व उन्हें लानेवाले पुराने सभासदों पर होता था।

सन् १७९४ मे फ्राससे विलियम जैक्सन नामक एक प्रोटेस्टेण्ट धर्मोपदेशक आयर्लेण्ड पहुँचा, जिसका क्रान्तिकारक सन्देश 'सयुक्त राष्ट्रमण्डल' को बहुत पसन्द आया। पर जैक्सन ओछा था, उसने

१० नवम्बर सन् १७९८ को डबलिनके सैनिक न्यायालयमें उसका विचार हुआ और उसे फॉसी देना निश्चित हुआ । उसने अभियोगकी सब बातें स्वीकृत कीं और अपना लिखा हुआ इजहार धडाकेसे पढ़ सुनाया। उसका इजहार बहुत ही प्रेमपूर्ण और आवेशयुक्त था। उसका आशय था-"मैने स्वदेशको स्वतन्त्र करनेके लिए अवश्य युद्ध किया, परन्तु इसमें मेरा मुख्य उद्देश्य यह था कि देशके प्रचलित अत्याचार और गुप्त वध आदि बन्द हों। यदि मै वाशिंगटनकी तरह यशस्वी होता तो कोई मुझे बदनाम नहीं करता। लेकिन केवल मेरे प्रयत्नके निष्फल होनेके कारण ही मुझे विद्रोही और गुप्त हत्यारा आदि कहना अनुचित होगा।" न्यायासनपर बैठे हुए सैनिक अधिकारी और टोनमें बहुतसे प्रश्नोत्तर हुए थे जिससे उसकी योग्यता प्रकट होती थी। कैथोलिक लोगोंके सम्बन्धमें उसने जो प्रेमभाव प्रकट किया था, उससे उसकी देशभक्तिकी व्यापकता और मनकी उदारता भी प्रमाणित होती है । उसने प्रार्थना की थी कि मुझे गोलीसे मारे जानेका सौभाग्य प्राप्त हो, परन्तु लार्ड कार्नवालिसने उसे फॉसी देना ही निश्चय किया। १२ तारीखको उसे फॉसी दी जानेको थी, पर उससे पहले ही रातको जेलकी अन्धेरी कोठरीमें उसने किसी प्रकार अपने गलेकी रक्तवाहिनी नली काट डाली जिससे रक्त बहनेके कारण वह प्रातःकाल ही मरणासन्न हो गया। उधर १२ तारीखको सबेरे ही प्रसिद्ध वक्ता और वकील क्यूरनने हाईकोर्टमें कहा कि यद्यपि टोन् पर विद्रोह करनेका अभियोग है, तथापि उसका मुकदमा सैनिक न्यायालयमें होना कानूनके विरुद्ध है। हाईकोर्टने शेरिफके पास टोनको तुरन्त जेलसे लाकर कोर्टके सामने उपस्थित करनेकी आज्ञा भेजी । शेरिफने जेलमें जाकर देखा कि टोन जख्मी होकर पड़ा है। जब हाईकोर्टको यह बात मालूम हुई तब उसने

फाँसीकी सजा रद्द कर दी। सात दिनतक जीवित रहनेके उपरान्त १९ नवंबर सन् १७९८ के दिन जेलमें ही टोन मर गया। इस प्रकार आयर्लैण्डके एक उत्कृष्ट देशभक्तका अन्त हो गया।

टोनने पचीस वर्षकी अवस्थामें बैरिस्टरीकी परीक्षा दी थी, परन्तु परमेश्वरकी इच्छा थी कि वह बैरिस्टरी न करे और नौ वर्ष बाद सार्वजनिक काममें इस प्रकार अद्भुत और अकल्पित रीतिसे उसके जीवनका अन्त हो, और वही हुआ।

---

४ राबर्ट एमेट।

इसका जन्म सन् १७७८ में हुआ था। इसे बाल्यवस्थासे ही व्याख्यान देनेका बहुत शौक था, पर इसके विचार बहुत प्रखर थे इसलिए यह कालिजसे निकाल दिया गया। तब इसने सारे युरोपका प्रवास किया और बहुतसे राजकीय अपराधियोंसे भेंट की। सन् १८०० में जब आयरिश पार्लमेंट टूट गई तब यह फ्रान्स जाकर नेपोलियनसे मिला। नेपोलियनने इससे कहा कि जब फ्रान्स तथा इग्लैण्डमें युद्ध आरम्भ होगा तब मैं अपनी सेना आयर्लैण्ड भेज दूँगा। १८०२ में यह आयर्लैण्ड लौट गया। जब युद्ध आरम्भ हुआ तब इसने बड़ी आशासे गोला-बारूद जमा किया। २३ जुलाई सन् १८०३ को इसने विद्रोह करना निश्चय किया था और तदनुसार डब्लिनमें विद्रोह हुआ भी, पर और स्थानोंके लोग शान्त थे इस लिए घण्टे भरमें ही विद्रोह रोक दिया गया। उस दिन सन्ध्याको इसने प्रधान न्यायाधीश लार्ड किलवारटेनको मार डाला था। इसके बाद वह भाग गया और महीने भर तक लापता रहा। अपनी प्रेमिका प्रसिद्ध वकील क्यूरनाकी लड़कीसे मिलकर वह आयर्लैण्टसे भागना चाहता था, इसी बीचमें वह गिरिफ्तार हो गया।

उसने कोर्टके सामने जो भाषण किया था वह बहुत ही वक्तृत्वपूर्ण और धैर्य्ययुक्त था । २० सितम्बर १८०३ को उसे फाँसी दे दी गई। मरते समय उसने कह दिया था कि मुझे कीर्त्तिकी इच्छा नहीं है, इस लिए मेरी कब्र पर कुछ भी न लिखा जाय । इस लिए ऐसा ही हुआ।

५ डेनियल ओकानेल।

इसका जन्म ६ अगस्त सन् १७७५ को आयर्लण्डके एक छोटेसे गाँवमें हुआ था । इसके पूर्वज कट्टर कैथोलिक थे। इसे उनकी अच्छी सम्पत्ति मिली थी। लड़कपनमें यह बहुत ही तेज और चलता था। इसने डेढ़ दिनमें वर्णमाला सीखी थी और दस वर्षकी अवस्थामें एक नाटक लिखा था। देशमें उच्च शिक्षाका प्रबन्ध न होनेके कारण सन् १७९१ में यह पढ़नेके लिए फ्रान्स गया । उस समय तक फ्रान्सकी राज्यक्रांति शान्ति नहीं हुई थी, इससे उसका कुछ अंश इसने भी अपनी आँखों देखा था। लेकिन उसमें इसे कुछ बदमाशी दिखाई दी, इस लिए यह राजपक्षके अनुकूल हो गया । सन् १७९३ में फ्रान्ससे लौट कर यह वकालत सीखनेके लिए इग्लैंड गया और पाँच वर्ष बाद वहीं वैरिस्टरी करने लगा। पहले तो इसकी वैरिस्टरी नहीं चली, पर पीछे अच्छी चमक उठी। यह बहुत अच्छा वक्ता था और साथ ही मसखरा भी था । जिरह भी वह खूब करता था, इसलिए बहुत जल्दी सर्वप्रिय हो गया । अवसर पड़ने पर वह हाकिमोंको फटकार भी देता था। धीरे धीरे उसकी प्रसिद्धि और सर्वप्रियता इतनी अधिक हो गई कि 'वकील' का अर्थ ही लोग 'डेनियल ओकानेल' करने लगे। अगर कोई किसीसे वकीलका घर पूछता, तो वह उसे ओकानेलका पता बतला देता था।

अब वह राजनीतिकी ओर झुका। पर पहले उसका कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं था। वह ग्रॅटन, फ्लड और चार्लमाण्टका भक्त था, पर उधर उल्फटोन आदिकी ओर भी उसका मन कुछ कुछ खिंचता था, इसलिए वह निश्चय न कर सका कि मै कौनसा पक्ष ग्रहण करूँ। पर पहले वह शपथ खाकर 'संयुक्त आयरिश मण्डल' नामक एक स्वातन्त्र्यवादी सभाका सभासद हुआ। आरम्भमें ही उसे उस मण्डलकी कई बातें बहुत बुरी मालूम हुई और उसका जी उससे हट गया। उसी अवसर पर विद्रोह आरम्भ हुआ जिसमें बहुतसे लोग पकडे जाने लगे। यदि वह बीमार होकर घर पर न पडा होता तो बहुत सम्भव था कि वह भी पकडा जाता। आराम होने पर वह उस मण्डलसे अलग हो गया। उसीसमय देशकी रक्षाके लिए कुछ देशवासियोंने स्वयंसेवकोंकी एक पलटन तैयार की थी, उसीमें वह भी शामिल हो गया।

विद्रोहके शान्त होने पर देशमें फिर नियमानुमोदित आन्दोलन आरम्भ हुआ। उस समय लोग कैथोलिकोंको समान अधिकार और स्वतंत्रता देनेके पक्षमे थे। उससमय जॉन किओघने इस सम्बन्धमें बहुत कुछ लोकमत तैयार किया था और कानूनोंके बन्धन भी कुछ ढीले कराये थे। जब वह बहुत वृद्ध हो गया तब उसका आदर भी कम हो चला। एक बार वह आयर्लैण्डवालोंकी ओरसे इंग्लैंड भी गया था, पर वहां आयर्लैण्डको केवल स्थानिक स्वराज्यके सम्बन्धमें कुछ अधिकार मिले जिससे वह लोगोंके मनसे उतर गया। तब उसका स्थान ओकानेलको मिला। ग्रॅटन उस समय पार्लमेंटमें काम कर रहा था, ओकानेलने समाजमें काम करना आरम्भ किया। सन् १८११ तक वह आयर्लैण्डवालोंका सर्वमान्य नेता हो गया। उसने एक 'कैथोलिक एसोसिएशन' नामकी संस्था भी स्थापित की थी, जिसमें उसका बहुत कुछ खर्च हुआ था। सन् १८११ मे अधिकारियोंने उस सभाको नियम विरुद्ध

ठहराया था, जिसका विरोध एक बहुत बड़ी सार्वजनिक कैथोलिक सभाने किया था। सन् १८१२ में कैनिंगने कैथोलिक लोगोंके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पार्लमेंटमे उपस्थित किया था उसके पक्षमें विरुद्ध पक्षकी अपेक्षा १२९ वोट अधिक थे, जिससे सिद्ध होता था कि इग्लेंडका लोकमत कैथोलिक लोगोंके बहुत कुछ अनुकूल हो गया है। नेपोलियनका भाग्योदय होना भी एक प्रकारसे उसके बहुत कुछ अनुकूल था। उसकी सेनामें बहुतसे ऐसे लोग मिल गये थे जो इग्लैण्डसे बहुत नाराज थे। उसमें आयरिश कैथोलिक लोग भी बहुत अधिक थे। पिट आदिको भय होने लगा कि कहीं ये लोग इग्लैण्ड पर आक्रमण न करा दें इस लिए कैथोलिक लोगोंको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न होने लगा। पर राजा तृतीय जार्ज कैथोलिक लोगोंका बहुत विरोधी था। जो मंत्री कैथोलिक लोगोंके पक्षमें होते थे उन्हें वह मन्त्रित्व पदसे अलग कर देता था। इसी लिए कैथोलिक लोगोंकी धार्मिक स्वतन्त्रतामें इतना विलम्ब हुआ था। सन् १८१३ में जब ग्रॅटनने पार्लमेंटमे बिल उपस्थित किया उस समय मुख्य प्रश्न यह उठा कि बिशपको राजा नियुक्त करे अथवा पोप। उस समय यदि कैथोलिक लोगोंने ग्रॅटनकी बात मान ली होती और राजाको ही बिशपकी नियुक्तिका अधिकार दिया होता, तो जो अधिकार उन्हें आगे चलकर पन्द्रह वर्ष बाद मिले थे वे बहुत पहले ही मिल जाते। लेकिन ओकानेलको आगे खडा करके कैथोलिक लोगोंने यह हठ किया कि बिशपको पोप ही नियुक्त करे। ग्रॅटन मन्त्रियोंको अपनी ओर मिलाना चाहता था, इस लिए उसने ओकानेलकी बात नहीं मानी। तब उसने ग्रॅटनकी निन्दा करना आरम्भ किया। उधर मन्त्रियोंने पोपके सलाहकारोको मिलाकर यह आज्ञापत्र मँगवा लिया कि यदि कैथोलिक लोग पूरी स्वतन्त्रता चाहते हों तो बिशपकी नियुक्तिका अधिकार राजाके हाथमें ही रहने दें। तब वे पोपके भी विरोधी हो गये

और कहने लगे कि स्वय पोपको ही अपने अधिकार नष्ट करनेका कोई अधिकार नहीं है। पोपके सलाहकारोंमें कुछ लोग कैथोलिक लोगोंकी तरफके भी थे, इस लिए उन्होंने फिरसे प्रयत्न करके पहला आज्ञापत्र रद्द करा दिया। तबसे ओकानेल समझने लगा कि मेरी शक्ति अमोघ हो गई है।

इतनेमें ही उधर युरोपकी परिस्थिति बिलकुल बदल गई। नेपोलियन परास्त हो गया और इंग्लैण्ड पर आक्रमण होनेकी आशका न रह गई। तब मन्त्रियोंने निश्चिन्त होकर कैथोलिक लोगोंसे कह दिया कि यदि तुम लोग आधे अधिकार नहीं लेते हो तो हम तुम्हें कुछ भी नहीं देते। और साथ ही कैथोलिक एसोसिएशनको नियमविरुद्ध बतला कर तोड़ दिया। इस प्रकार जो काम एक बार बिगडा उसके फिरसे बननेमें चौदह वर्ष लगे और इसके लिए इतिहासकारोंने ओकानेलको ही दोषी बतलाया है। पर ओकानेलकी ओरसे कहा जाता है कि उस समय इस झगडेको शान्त करना इष्ट नहीं था, बल्कि उसे चलाये चलना ही इष्ट था। क्योंकि यदि अधिकार पहले ही मिल जाते तो लोगोंमें उतना जोश न रह जाता और स्वतन्त्र पार्लमेंट प्राप्त करनेकी ओर उनका ध्यान न जाता। लेकिन यह युक्तिवाद ठीक नहीं है, क्योंकि न तो मिलते हुए अधिकारोंको छोड देना ही ठीक है और न एक कामका जोश दूसरे काममें आ सकता है, और इस बातका अनुभव आगे चलकर स्वय ओकानेलको भी हो गया था। अस्तु। इसी जोशको काममें लानेके लिए उसने फिरसे आयर्लैंडको स्वतन्त्र करानेका प्रयत्न आरम्भ किया। उस समय वह पहला जोश काम न आया, उलटे पहले जो मत भेद लोगोंमें हो गया था वह कुछ बाधक हुआ। यद्यपि देशकी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें लोगोंमें उतना अधिक मत-भेद न था तथापि पहलेके मत-भेदके कारण लोगोंमें मेल नहीं होता था। कैथोलिक लोगोंके प्रश्नका

भी खूब हुआ । ओकानेलकी स्थापितकीहुई एक सभा जब अधिकारी तोड देते थे तब वह दूसरे नामसे एक और सभा स्थापित करता था। उस समय कैथोलिक फण्डमें पचास हजार पाउण्ड आ गये थे और आठ लाख आदमियोंके हस्ताक्षरसे एक प्रार्थनापत्र तैयार किया गया था। उस समय लार्ड कैनिंग जो कैथोलिक लोगोंकी ओरसे पार्लमेण्टमें लड रहे थे, चाहते थे कि कैथोलिक एसोसिएशनका काम उद्दण्डतापूर्वक न हो, पर कैथोलिक लोग कुछ सुनते ही न थे। उसी अवसरपर जब क्लेयर परगनेकी ओरके सभासदका स्थान पार्लमेण्टमें खाली हुआ तब लोगोंने बहुत धूमधामसे उसके चुनावके लिए प्रयत्न किया। इसके लिए डबलिनमें लोगोंने बारह दिनमें चौदह हजार पाउण्ड जमा किये। उस परगनेमें आठ हजार मतदाता थे। चुनावका काम पाँच दिन तक होता रहा। प्रबन्धके लिए वहाँ तीन सौ पुलिसके सिपाही और दो हजार सैनिक सिपाही रक्खे गये थे। पाँचवें दिन ओकानेलके प्रतिपक्षीने उम्मेदवारी छोड दी और उसकी जीत हुई। उस समय लोगोंने उसके खूब जूलूस निकाले और उसे खूब बधाइयाँ दीं। इसके बाद ही पार्लमेण्टने एक कानून बनाकर वह पुराना कायदा तोड दिया, जिसके अनुसार कैथोलिक लोगोंको सभासद होनेके समय शपथ खानी पडती थी। पर ओकानेलका चुनाव उस कानूनके बननेसे पहले ही हुआ था। इसलिए जब उसने शपथ खानेसे इकार किया तब उससे पार्लमेण्टसे निकल जानेके लिए कहा गया। उस समय उसने कुछ बहस भी की थी, पर उसके विरुद्ध अधिक मत आये। वह फिर आयर्लैण्ड पहुँचा और दोबारा उसका चुनाव हुआ, और सन १८३० में वह पार्लमेण्टका सभासद हो गया। लेकिन इससे एक साल पहले ही कैथोलिक लोगोंको पूरी स्वतन्त्रता मिल चुकी थी।

सन १८३१ में यह कानून बना कि अधिकारोंके लिए झगडनेवाली कोई सभा स्थापित न हो सके। तब ओकानेलने तीन सौ आदमियोंको

अपने यहाँ भोजन करनेके लिए बुलाया। इस पर वहानेसे सभा करनेके अपराधमें उस पर मुकद्मा चलाया गया। फैसलेसे पहले ही ओकानेल लण्डन गया। वहाँ उससे कहा गया कि यदि तुम स्वतन्त्र पार्लमेण्टकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना छोड दो तो तुमपरसे मुकद्मा हटा लिया जाय। पर उसने यह बात नहीं मानी। उसी अवसर पर पार्लमेण्टके सुधारके सम्बन्धका (१८३२ वाला) बिल पार्लमेण्टमें उपस्थित था, जिस पर उसने बहुत ही अच्छा भाषण किया जिससे मंत्री लोग प्रसन्न हो गये। उधर अदालतने चतुराईसे फैसलेकी तारीख और भी बढा दी। बीचमें ही सभा-विध्वंसक नियमकी मुद्दत खतम हो गई और उसके बाद वह मुकद्मा उठा लिया गया।

इसके उपरान्त ओकानेलने टाइथ कर और प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डलके सम्बन्धमें आन्दोलन किया और लोगोंको उपदेश दिया कि टाइथ कर मत दो और अगर उसके लिए किसीकी जमीन नीलाम हो तो उसे मत खरीदो। लोगोंने भी ऐसा ही किया, जिसके कारण सन् १८३२ में एक ही जिलेमें इस करके सम्बन्धमें नियमितसे नौ हजार अधिक अपराध हुए जिनमेंसे दो सौ केवल खून थे। इसके बाद पार्लमेंटके चुनावके समय उसने मतदाताओंको उनके अधिकारों और कर्त्तव्योंके सम्बन्धमें बहुतसी बातें समझाईं और चुनावमें वह स्वयं, उसके दो लडके और बीसियों साथी चुने गये। कैथोलिकोंके सुभीतेके लिए उसके उद्योगसे पार्लमेंटमें कई नये कानून तो बन गये, पर उनका बहुत दिनोंतक पालन नहीं हुआ। इसके साथ ही पार्लमेंटमें लोगोंके दमनके लिए भी बहुतसे नये नियम बने, जिनसे अधिकारियोंको सब तरहसे बल प्रयोग करनेका अधिकार मिल गया।

सन् १८३४ में पार्लमेंटमें बहुतसे स्वातन्त्र्यवादी आयरिश सभासद हो गये। उस समय ओकानेलने राजाके सम्मुख उपस्थित करनेके लिए

अभिषेक भी हो गया और उसके सिरपर मुकुट भी रख दिया गया! उसके जीवनमें यही उसका सबसे बडा और आन्तिम सम्मान था।

ऐसी सभामें भाषण करते समय नियमका ध्यान रहना बहुत ही कठिन होता हे, पर बडी ही चतुराईसे उसने नियमकी सीमाका उल्लघन न होने दिया। उस समय लोगोंने समझ लिया कि स्वय तो कभी दगा-फसाद नही करना चाहिए, पर यदि अधिकारी अन्यायपूर्वक बलप्रयोग करें तो आत्म-रक्षाके लिए उन्हें छोडना भी न चाहिए, पर साथ ही लोग यह भी समझ गये थे कि कभी न कभी अधिकारियोंसे सशस्त्र होकर हमें लडना ही पडेगा। इस लिए समाचारपत्रोंतकमें अस्त्र-शस्त्र सग्रह करने, लडाईके लिए उपयुक्त स्थान चुनने और मोरचे आदि बॉधने तककी चर्चा होने लगी। लोग समझते थे कि अधिकारी अन्यायपूर्वक बलप्रयोग करेंगे ही ओर ओकानेल आज्ञा देगा लड़ जाओ, छोडो मत। लेकिन उन बेचारोंको क्या मालूम था कि ओकानेल पूरा शान्ततावादी है, वह कभी ऐसा न करेगा।

लेकिन लोक-क्षोभका तार चढाना जितना सहज होता है उसका उतारना उतना सहज नही होता। इस लिए लोग शान्त नहीं हुए। सात आठ महीने तक सहन करनेके उपरान्त अधिकारियोंने इग्लैण्डमें शिकायत भेजी और पार्लमेण्टमें प्रश्न होने लगे। सरकारने कह दिया कि चाहे जो हो, हम स्वतन्त्र पार्लमेण्ट नहीं देंगे। साथ ही विद्रोहकी आशकासे उसे दमन करनेके लिए सरकारने वहॉ पैतीस हजार सेना भी भेज दी और किलों और बुरजों आदि पर तोपें चढने लगीं। उस समय ओकानेलने समझ लिया था कि सभाके अधिवेशन करना धोखेसे खाली नहीं है, पर उन्हें बन्द करनेके लिए उसे कोई कारण नहीं मिलता था। तब उसने निश्चय किया कि क्लाण्टर्फमें एक अभूतपूर्व सभा करके तब इसके अधिवेशन बन्द कर दिये जायँ। अधिकारियोंने यद्यपि समझ

लिया था कि यह सभा अन्तिम है, पर तो भी उसे रोकनेके लिए उन्होंने गुप्तरूपसे आज्ञा दे दी थी। सभाका जो कार्य्य-क्रम था उसमें एक यह बात भी थी कि स्वयं-सेवक सवारोंकी पलटनोंको यह बतलाया जायगा कि सभाके अवसर पर क्या क्या करना चाहिए। बस, सरकारी वकीलोंने कह दिया कि इस प्रकार सैनिक ठाठ दिखाकर सरकारको लोग डराना चाहते हैं। पर यदि पहलेसे ही उसे रोकनेका प्रयत्न किया जाता तो बात बिगड जाती। इस लिए सभासे ठीक एक दिन पहले सन्ध्याके समय उसे रोकनेकी आज्ञा निकली। इस बातकी कुछ सुनगुन ओकानेलको पहले ही लग गई थी, इस लिए वह बहुत ही चिन्तित था और इसी बात पर विचार करनेके लिए सन्ध्या समय रिपीलकी प्रबन्धकारिणी सभाका अधिवेशन हो रहा था कि इतनेमें सभाको रोकनेकी आज्ञाका छपा हुआ कागज लेकर एक आदमी वहाँ पहुँच गया। उसे देखते ही सब लोग सन्न हो गये, बहुत देरतक किसीके मुँहसे कोई बात न निकली। पर थोडी ही देरमें कुछ युवक कहने लगे कि चाहे जो हो, सभा होनी ही चाहिए। तीस वर्षतक धैर्य्य-पूर्वक नियमानुमोदित आन्दोलनको व्यर्थ देखकर यदि कुछ युवकोंके मनमें यह बात उठी हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। पर बहुत कुछ सोच समझकर ओकानेलने कह दिया कि नहीं, सभा नहीं होनी चाहिए। सभाका प्लेटफार्म तुडवा दिया गया और सभाके बन्द किये जानेके सम्बन्धमें बडे बडे विज्ञापन छपवाकर दूर दूर तक बँटवा और चिपकवा दिये गये। उधर अधिकारियोंने भी खूब तैयारियाँ की थीं। जगह जगह पर पुलिस और सेनाके सिपाही खडे कर दिये गये थे और उन्हें चौबीस घण्टेके लिए भोजन और कारतूस आदि दे दिये गये थे। दो तीन तोपें भी तैयार थीं। पर इन सबके उपयोगकी आवश्यकता नहीं पड़ी। सब लोगोंको तुरन्त मालूम हो गया कि सभा नहीं होगी।

इधर इग्लैण्डमें अपील हुई। अपीलके फैसलेका समाचार आयर्लैण्ट तक पहुँचानेके लिए भी एक खास जहाज तैयार था। अपीलमें वे लोग छोड दिये गये। उसका सालिसिटर कूदकर जहाज पर जा चटा और उस पर एक झण्डा लगा दिया गया जिस पर मोटे अक्षरोंमें लिखा था– 'ओकानेल छूट गया।' रातको ओकानेल और उसके साथी छूट गये और अपने अपने घर चले गये। दूसरे दिन लोग उन्हें फिर जेलके दरवाजे तक ले गये और वहाँसे उन लोगोंने जुलूस निकाला।

इसके वाद सरकारकी ओरसे कई ऐसी वातें हुईं, जिनसे रिपील सभाके नष्ट होनेकी नौबत आ गई। ओकानेलके लडके जानने निश्चय किया कि, जो लोग कसम खा लें कि हम कभी कोई नियमविरुद्ध कार्य्य न करेंगे वे ही इस सभाके सभासद रह सकते है। इस लिए वहुतसे लोगोंने उस सभाको छोड दिया। उसी अवसर पर देशमें अकाल पड़ा। जब बडे बडे नेताओंने गरीबोंका कष्ट दूर करनेका कोई उपाय न किया तब वे लोग उन्हें गालियाँ देने लगे। कुछ लोग ऐसे भी खडे हो गये जो कहने लगे कि ओकानेल रिपील सभाके रुपये खा जाता है और तरह तरहसे उसकी निन्दा करने लगे। उस समय ओकानेलका दिमाग भी कुछ खराव हो गया था। दो वरस वाद यह इग्लैण्ड चला गया। पर वहाँ पार्लमेण्टमें उसकी कुछ भी न चली। तब वह पहले पेरिस और फिर रोम गया। रोमसे लौटने पर १५ मार्च १८४७ को जनेवामे उसकी मृत्यु हो गई। उसके लडकेने उसके शवको आयर्लेण्ड ले जाकर खूब धूमधामसे गाडा और सन १८६९ में उसकी कब्र पर आयरिश लोगोंने चन्दा करके स्मारकस्वरूप एक १६५ फुट ऊँचा स्तम्भ खडा किया।

ओकानेलमें गुण अधिक थे और दोष कम। वह कुछ सम्पन्न भी था। उसकी वकालत भी खूब चलती थी। वह बहुत ठाठसे रहता था।

उसके चार लडके, तीन लडकियाँ थीं और बहुतसे दूसरे रिश्तेदार थे। वह खर्च भी खूब करता था, इसलिए लोगोंने कहा कि वह सभाका धन खा जाता है। वह सभाका हिसाब भी ठीक समय पर प्रकाशित न करता था। वह हर साल अपने लिए भी लोगोंसे कुछ चन्दा लिया करता था। चन्दा उगाहनेके समय उसके भक्त पत्रोंमें धन देकर उसकी खूब प्रशंसा कराते थे और तब खूब चन्दा जमा करते थे। इस काममें हर साल पाँच हजार पाउण्ड खर्च होते थे और दस हजार पाउण्ड बच रहते थे। उसके प्रतिपक्षी उसे 'भारी भिखमँगा' कहा करते थे। उसका यह काम शिष्टसम्मत नहीं था, इसीलिए लोगोंमें उसका आदर भी बहुत कम हो गया था। कैथोलिक लोगोंने भी स्वतत्र होने पर उसे पचास हजार पाउण्ड दिये थे, पर इसके लिए वह दोषी नहीं था, क्यों कि इसी तरह और भी बहुतसे देशोंमें नेताओंको विशेष कार्य्य करनेके लिए धन मिला है। लेकिन उत्तम पक्ष यही है कि नेता किसी पर एक पैसेका भी बोझ न डालें और जैसे हो कष्ट सहकर भी अपना गुजारा करें। और नहीं तो अधिकसे अधिक केवल अपने निर्वाहके लिए लोगोंसे धन लिया करें। ग्रॅटनको पचास हजार और पार्नेलको तीस हजार पाउण्ड मिले थे, पर इतनी बडी रकम पानेके बाद उन्होंने कभी धन एकत्र करनेका प्रयत्न नहीं किया था। पर ओकानेल तो हर साल चन्दा वसूल करता था, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि तीस-पेंतीस वर्ष तक उसने निरन्तर देशकी बहुत अच्छी सेवा की थी।

आरम्भमें वह कुछ विषयी भी था, पर पीछे वह धार्म्मिक हो गया। वह लोगोंको विना समझे बूझे गालियाँ भी खूब देता था। पार्लमेण्टमें बोलनेके समय भी वह औचित्यका ध्यान नहीं रखता था। यदि उसने द्वन्द युद्ध न करनेकी कसम न खाई होती तो वह बहुत ही पहले मर

चुका होता, क्योंकि पीछे बहुतसे लोगोंने उसे द्वन्द्व-युद्धके लिए ललकारा था। उसका स्वभाव अवश्य अच्छा था। वह कभी कभी लड़कपन भी कर जाता था। उसमें रजोगुण और तमोगुण अधिक था। वह बुद्धिमान् तेजस्वी और बलिष्ठ था। सैर-शिकारका भी उसे शौक था। घोड़ेपर एक दिनमें वह साठ साठ मीलकी यात्रा करता था। पचीस वर्ष तक वह आयर्लैण्डका सर्व प्रधान नेता था। उसके भक्तोंमें अशिक्षित और साधारण लोग ही अधिक थे। देशकार्य्यके लिए वह बहुत बड़े आदमियोंको उपयुक्त नहीं समझता था। कैथोलिक लोगोंको स्वतन्त्रता दिलानेमें उसे जो सफलता हुई उसका कारण यह था कि उसके सम्बन्धके प्रश्नकी पहले ही बहुत कुछ मीमांसा हो चुकी थी और कई मन्त्री भी उसके पक्षमें थे। पर रिपीलमें सफलता न होनेका कारण यह था कि आयर्लैण्डमें ही इसके सम्बन्धमें मतभेद था और इंग्लैण्डवाले भी इसके विरुद्ध थे। इसीलिए उसके कई मित्रों और भक्तोंने कहा था कि यदि कैथोलिक लोगोंके स्वतन्त्र होते ही उसका अन्त हो जाता तो बहुत अच्छा होता, क्यों कि उस दशामें उसे पीछेसे रिपीलसभाके सम्बन्धमें बदनाम न होना पड़ता। पर तो भी इसमें सन्देह नहीं कि वह एक, अलौकिक मनुष्य था और आयर्लैण्डके लिए उसने बहुत कुछ काम किया था।

---

६ विलियम स्मिथ ओब्रायन।

ओब्रायनकी गिनती आयर्लैण्डके उन्नीसवें शताब्दीके मध्यके अच्छे अच्छे नेताओंमें की जाती है। वह अच्छे घरानेका था। तेईस वर्षकी अवस्थामें सन् १८२६ में उसने पार्लमेण्टमें प्रवेश किया था। सन् १८३० में उसने आयर्लैण्डकी दरिद्रताके सम्बन्धमें एक बहुत अच्छा लेख प्रकाशित किया था। सन् १८४० में जब ओकानेलने रिपीलका आन्दोलन आरम्भ किया उस समय यह उसमें

सम्मिलित नहीं हुआ। क्यों कि इसके मनमें ओकानेलके प्रति आदर नहीं था। पर सन् १८४४ में यह भी रिपील सभामें सम्मिलित हो गया। आगे जब ओकानेलके जेलसे छूटने पर युवकोंमें उसका आदर न रह गया तब ओनायन ही उन लोगोंका नेता बना। सन् १८४८ में युरोपके अन्य देशों-की तरह आयर्लेण्डमें भी विद्रोहकी सम्भावना थी। उससमय ओब्रायन और मीगर आदि नेताओंने पेरिस जाकर वहाँके प्रजापक्षीय नेताओंसे आय-र्लेंडके लिए सहायता माँगी थी। पर उसमें इन लोगोंको भी उल्फटोन-की तरह निराश ही होना पडा था। इस आन्दोलन और प्रयत्नके सम्बन्धमें पार्लमेंटमें उसे यह भी कहना पडा था कि-"मैं इग्लैंडकी रानीका राज्य तो चाहता हूँ, पर आयर्लैण्ड पर अँगरेजी पार्लमेंटका अधिकार नहीं चाहता। और इसीलिए मैं जन्मभर स्वतन्त्र पार्लमेंटके लिए प्रयत्न करता रहूँगा, चाहे इसमें मेरे प्राण भी चले जायँ।" मई १८४८ में उस पर लोगोंको विद्रोहके लिए उत्तेजित करनेका अभियोग लगाया गया, पर ज्युरियोंमें मतभेद हो जानेके कारण वह छूट गया। पीछे जब अधिकारियोंके अधिकार बढगये तब उन्होंने फिर उस पर हाथ साफ करना चाहा। लेकिन क्रियाके साथ प्रतिक्रिया भी बढती जाती है, इसलिए ओब्रायन, टिलन, ओगार्मन, मीगर आदि नेताओंने लोगोंको खुले आम शस्त्र ग्रहण करनेका उपदेश देना आरम्भ किया। जुलाईमें इन लोगोंने तीन चार हजार आदमी भी इकट्ठे कर लिये, लेकिन इनके पास हथियार तीन-चारसौ ही थे और धन भी कुछ नहीं था। ओब्रायनने अपने पासका बहुत कुछ धन लगाया, पर ऐसे कामोंमें एक आदमीके धनसे क्या हो सकता था? लोगोंने सहायता नहीं दी, जिससे इस सेनाका विद्रोह एक दो दिनसे अधिक नहीं ठहरा। प्रत्यक्ष लडाईके समय ओब्रायनके पास केवल दो सौ आदमी बच गये थे। अन्तमें अपने बचावके लिए वह भाग गया और उसेपकडनेके लिए पाँच

सौ पाउण्डका इनाम मुकर्रर किया गया। वह एक स्टेशन पर टिकट खरीदनेके समय पकड़ा गया। मुकदमा चला और उसे फाँसीका हुकुम हुआ, पर अपीलसे काले पानीका दण्ड मिला। मेरिया टापूसे उसने एक वार भागनेका भी प्रयत्न किया था, पर वह भाग न सका। जब सन् १८५४ में १८४८ वाले विद्रोहके लोग छोडे गये, तब वह भी छूट कर अपने घर पहुँचा। रास्तेमें मेलवोर्नमें अँगरेजोंने उसका अच्छा आदर किया और एक हजार पाउण्ड मूल्यका एक सोने-का प्याला उसे नजर किया। युरोपमें कुछ दिन रह कर उसने राज-कीय विषयों पर दो एक पुस्तकें लिखीं और १८५६ में वह फिर आय-लैंड पहुँचा। इसके उपरान्त उसने कोई विशेष कार्य्य नहीं किया। इसके बाद वह अमेरिका गया जहाँ उसने व्याख्यान आदि देकर थोड़ा बहुत लोकमत जाग्रत किया। सन् १८६४ में उसकी मृत्यु हो गई। वह अच्छा वक्ता तो नहीं था, पर उसकी स्वदेश-भक्तिमें कभी किसीको शका नहीं हुई। वह स्वार्थत्यागी भी था। उसने सन् १८४८ में अपनी सम्पत्ति पचोंके अधिकारमें कर दी थी, और उससे स्वयं वह केवल एक हजार रुपये साल लिया करता था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार लेकेने उसके सम्बन्धमें बहुत अच्छा मत दिया है। उसने लिखा है कि यद्यपि १८४८ में विद्रोह करके उसने भूल की, लेकिन यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि सच्चे हृदय और उत्साहसे काम करनेवाले लोग जब सब प्रकारसे निराश हो जाते हैं तब उनसे स्वभावतः ऐसी भूलें हो जाया करती हैं। वह सच्चे हृदयसे देशसेवा करता था और व्यर्थ बड़बड़ाने-वाले लोगोंको बहुत बुरा समझता था। अन्तमें उसने यह भी समझ लिया था कि फ्रान्सीसियोंसे सहायता लेने अथवा कैथोलिक लोगोंकी केवल प्रधानता स्थापित करनेमें ही कोई लाभ नहीं है, बल्कि इसमें उलटे हानि ही है। यद्यपि उसकी ये बातें उस समय लोगोंको अप्रिय

मालूम हो सकती थी, और सम्भव था कि इससे उसकी जन्म भरकी कमाई हुई प्रतिष्ठा और लोकप्रियता नष्ट हो जाती, पर तो भी उसने इन बातोंकी परवा नहीं की। वह सदा सच्चाईसे लोगोंमें इसी मतका प्रसार करता रहा।

७ आइजिक बट।

ओकानेलके बाद और पार्नेलसे पहले पार्लमेण्टमें आयरिश पक्षका यही नेता था। इसका जन्म एक प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मोपदेशकके घर १८१३ में हुआ था। बीस वर्षकी अवस्थामें इसे डबलिनके विश्वविद्यालयमें अर्थ-शास्त्रके प्रोफेसरका पद मिला था। १८३८ में वह बैरिस्टर हुआ और १८४२ में इसे 'क्वीन्स कोंसेल' की पदवी मिली। १८४४ में जब डबलिनकी म्युनिसिपैलटीमें ओकानेलने रिपीलका प्रश्न उपस्थित कराया उस समय यह यूनियनिस्टर दलका नेता था। उस समय इसका भाषण बहुत ही उत्तम हुआ था। ओकानेलने भी उसकी बहुत प्रशसा की थी, साथ ही यह भी कह दिया था कि जिस पक्षका तुम आज समर्थन कर रहे हो, आगे चलकर तुम उसीका खण्डन करोगे और स्वतत्र पार्लमेंट माँगोगे, और १८७० में यही बात हुई भी।

वकालतमें उसने अच्छा नाम और धन कमाया था। १८५२ में उसने पार्लमेंटमें प्रवेश किया। १८४४ और १८४८ के मध्यमें आयलैंडमें जितने राजनीतिक मुकद्दमें हुए, उनमेंसे अधिकाशमे यही वकील था। और फिर १८६०—७० के मध्यमें फीनियन लोगोंने जो उपद्रव किये थे उनके सम्बन्धमें भी स्वार्थत्यागपूर्वक इसने कुछ काम किया था। यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका बहुत बडा पक्षपाती था, और

कभी किसीको किसी पर अन्याय न करने देता था। फीनियन लोगोंके प्रति इसके मनमें कुछ सहानुभूति थी भी, क्योंकि यह देखता था कि दोनों देशोंकी पार्लमेंटोंके एक हो जानेसे साठ वर्षमें आयर्लैंडकी हानि ही अधिक हुई है। यह स्वयं नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाला था और पार्लमेण्टके नियमोंसे अच्छी तरह परिचित था। वहाँ उसका आदर भी बहुत होता था। फीनियन उपद्रवके सम्बन्धमें जब सैकड़ों अपराधी जेल भेज दिये गये तब उन सबको छुड़ानेका प्रयत्न करनेके लिए जो 'एमनेस्टी एसोसिएशन' स्थापित हुई थी, उसका यह सभापति बनाया गया था और आगे चलकर यह रिपील आन्दोलनका भी नेता बन गया था।

१९ मई १८७० को डबलिनके एक होटलमें कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी एक प्राइवेट सभा देशकी राजकीय स्थिति पर विचार करनेके लिए हुई थी। उस सभाकी कार्रवाईसे यह बात सिद्ध होती थी कि विद्रोहके मार्गको तो लोग नहीं पसन्द करते, पर वे पूर्ण स्वतन्त्रता अवश्य चाहते हैं और इस स्वतन्त्रताके लिए दोनों पक्षोंने मिलकर नियमानुमोदित आन्दोलन करना निश्चय किया। उसमें स्वतन्त्र पार्लमेण्टके लिए सबसे अधिक जोर बटने ही दिया था और इस प्रकार ओकानेलकी भविष्यवाणी पूरी की थी। फीनियन आन्दोलनका जिक्र करते हुए उक्त सभामें उसने कहा था—"राष्ट्रीय स्वतंत्रताके सम्बन्धमें जब सब लोग बोलने लगते हैं तब उनमेंसे कुछ लोग अविचार भी कर बैठते हैं, पर इसी कारण वे लोग बोलनेसे रोके नहीं जा सकते। नेताओंको चाहिए कि उनकी बातोंको उचित और नियमानुमोदित बनाकर राष्ट्रमें जोर लावें। इस कामको नाजुक समझ कर छोड़ नहीं देना चाहिए, बल्कि सावधानीसे दोष दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। फीनियन लोग इसीलिए अत्याचारी हुए हैं कि नियमानु-

मोदित आन्दोलन करनेवाले नेताओंने अपने कर्त्तव्योंका उचित रीतिसे पालन नहीं किया।" आइजिक वटके केवल इसी भाषणसे सारा काम हो गया। सभी धर्म्मों, पन्थों और पक्षोंके लोगोंने एकमत होकर स्वतंत्र पार्लमेण्ट माँगना निश्चय कर लिया और उसी तारीखसे 'होमरूल' के आन्दोलनका जन्म हुआ। १८७३ में हजारों आयरिश लोगोंके हस्ताक्षरसे एक निमन्त्रणपत्र प्रकाशित किया गया और १८ नवम्बरसे चार दिन तक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। सौ वर्ष पहले उसी स्थान पर चार्लमाण्टके सभापतित्वमें स्वयंसैनिकोंका सम्मेलन हुआ था जिसमें निश्चय हुआ था कि आयरिश पार्लमेण्टपरसे ब्रिटिश पार्लमेण्टकी हुकूमत उठा दी जाय। इस नये सम्मेलनमें देशके भिन्न भिन्न भागोंसे नौसौ प्रतिनिधि आये थे। उस अवसर पर 'होम गवर्नमेण्ट' नामकी पुरानी सभा तोड कर 'आयरिश होमरूल' नामकी एक नई सभा स्थापित की गई थी। १८७४ वाले पार्लमेण्टके चुनावमें साठ होम रूलर सभासद चुने गये थे, जिनमें जान मार्टिन, मिचेल, हेनरी, विलियम शा, सर जान ग्रे आदि प्रधान थे और जिन सबका नेता वट था। सब लोग मिलकर होमरूलका काम करने लगे। पर वट उस समय तक बहुत बुड्ढा हो गया था और पार्लमेण्टकी स्थिति भी काम करनेके विशेष अनुकूल नहीं थी। इसलिए धीरे धीरे वटके प्रति लोगोंका उत्साह और आदर कम हो चला और पार्नेलके उठते ही उसे पार्लमेण्टमेंका नेतृत्व छोड देना पडा। इस सम्बन्धकी विशेष बातें आगे पार्नेलके चरित्रमें दी गई है। ५ मई १८७९ को वटकी मृत्यु हो गई।

---

८ पार्नेल ।

उन्नीसवीं शताब्दीमें ओकानेलके उपरान्त आयरिश लोगोंका प्रधान नेता पार्नेल ही हुआ । इसका घराना बहुत पुराना और प्रतिष्ठित था और उसमें बहुतसे अच्छे कवि और राजनीतिज्ञ हो गये है। जिस-समय आयरिश पार्लमेंट जोरों पर थी उससमय पार्नेलका एक पूर्वज मंत्रि-मण्डलमें था और उस पर अँगरेजी मन्त्रिमडल तथा आयरिश प्रजा दोनोंका ही समान रूपसे विश्वास था । आयरिश पार्लमेंटके टूटनेके समय उसके पूर्वजोंने राजपक्षसे खूब टक्कर ली थी। पार्नेलका दादा ॲगरेजोंका बहुत बड़ा द्वेष्टा था और उसने धार्म्मिक स्वतन्त्रताके आन्दोलनमें ओकानेलको बहुत सहायता दी थी । पार्नेलकी माता भी बहुत सुयोग्य, साहसी और अच्छी राजनीतिज्ञ थी । उसके माता-पिता बहुत दिनोंतक अमेरिकामें रहे थे, इस लिए वह भी ॲगरेजोंसे बहुत द्वेष रखती थी । पार्नेलमें तो यह द्वेष-बुद्धि पराकाष्ठा तक पहुँच गई थी । सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि पार्नेलमें राष्ट्रभक्तिकी अपेक्षा ॲगरेजोंके प्रति द्वेष-भाव ही अधिक था ।

पार्नेलके पूर्वजोंके पास बहुत बडी सम्पत्ति थी और जमींदारीसे उन्हें खासी आमदनी थी । डब्लिनसे कुछ दूर पर राथड्रम नामक उनका एक गॉव था जहॉका सृष्टि-सौन्दर्य्य दर्शनीय था । आसपास नदी, जगल और पहाडियाँ थीं । वहीं २७ जून १८४६ को पार्नेलका जन्म हुआ था । बचपनमें वह गम्भीर और मितभाषी था और अधिक खेल-कूद पसन्द न करता था । स्कूलमें वह प्राय लडकोंसे झगडनेके अतिरिक्त और कुछ न करता था । वह इतना हठी था कि समय पर कह देता था कि जो कुछ मै कहता हूँ वही ठीक है और ग्रन्थ तथा शिक्षक दोनोंकी भूल है । लडकपनमें प्राय. और बड़े होने पर कभी कभी वह

सोए सोए भी उठकर चलने लगता था। वह शूर तो था, पर अकेले उसे डर लगता था।

सन् १८६९ में बिना पदवी लिये और बिना शिक्षा-क्रम पूरा किये ही वह कैम्ब्रिजका कालिज छोडकर घर चला आया था। उस समय एक शराबीसे मार पीट करनेके कारण वह कालिजसे कुछ दिनोंके लिए निकाल दिया गया था और उस बार जब वह घर आया तब फिर कभी लौट कर कालिज नहीं गया। उसमें न तो विशेष विद्या-प्रेम था और न कमानेके लिए पढनेकी जरूरत थी। वह खाना-पीना और सैर-शिकार ही करना जानता था। अँगरेजोंके साथ उसका द्वेष अवश्य था, पर उसे अपने देश तथा पूर्वजोंका पुराना इतिहास कुछ भी न मालूम था। वह सिर्फ इतना जानता था कि १७९८ में कुछ आयरिश देशभक्तोंने विद्रोह किया था। बीस वर्षकी अवस्थातक उसमें देश-भक्ति नाम मानको भी न दिखाई पडती थी।

ऐसे आदमीका राजनीतिमें पडना एक बहुत ही विलक्षण बात है। सन् १८६७ में मॅंचेस्टरमें जो मारपीट, फॉसियॉ और खून हुए थे, उन सबको अँगरेज लोग तो तिरस्कारपूर्वक 'हत्या' कहते थे और आयरिश लोग चिढकर कहते थे कि फीनियन लोग दिन दहाडे सशस्त्र और सावधान पुलिससे लडे है, उन्हें 'हत्यारा' कहना ठीक नहीं। पार्नेलका राजनीतिमें तो कुछ दखल था ही नहीं; पर इस घटनाके सम्बन्धमें उसका भी यही मत था। अवसर पडने पर वह जोरोंसे फीनियन लोगोंके पक्षका समर्थन करता था। पर उसकी यह प्रवृत्ति क्षणिक ही होती थी। १८७३ में पार्लमेण्टके चुनावके समय उसमें तथा उसके भाई जानमें राजनीतिके प्रति कुछ अनुराग उत्पन्न हुआ। उसी समय सब लोगों और पक्षोंने मिलकर फीनियन कैदियोंको छुडानेका प्रयत्न आरम्भ किया जिससे लोगोंमें राजनीतिक एकता हो

चली। स्वतंत्र पार्लमेण्टके लिए बट आन्दोलन करने लगा। लोगोंमें पार्लमेण्टमें प्रवेश करके काम करनेकी इच्छा हुई। उसी समय पार्नेलके मनमें भी पार्लमेण्टमें प्रवेश करनेकी समाई।

पार्नेल अँगरेजोंका द्वेष्टा था और द्वेष साधारणत दोष ही है, पर पार्नेलके लिए वह गुण हो गया। बट यद्यपि पार्लमेंटमें काम करता था, पर न तो वह लडना-भिड़ना जानता था और न शिष्टताका व्यवहार छोड सकता था। इस कामके लिए पार्नेल सरीसा अँगरेजोंका द्वेषी ही अधिक उपयुक्त था और इसीलिए वह पार्लमेंटमें प्रवेश करनेके कुछ ही दिनों बाद आयरिश पक्षका नेता हो गया। पहले १८७४ में पार्नेलने डबलिन नगरकी ओरसे सभासद होनेका प्रयत्न किया था, पर उसमें सफलता नहीं हुई। इसके अतिरिक्त उस समय उसे सार्वजनिक कार्य्य करना भी नहीं आता था। उसका पहला भाषण बिलकुल ही बे-सिर-पैरका और प्राय. निरर्थक था। इसलिए लोगोने उसकी हँसी उडाई थी। लेकिन दूसरे वर्ष अपने प्रतिष्ठित कुलके कारण वह मीथ प्रान्तकी ओरसे चुन लिया गया। उस समयके ५९ होमरूलर आयरिश सभासदोंका नेता बट था और वह पार्लमेंटमें शिष्ट व्यवहार करता था, इस लिए अँगरेज उससे खुश थे। पर इससे उसके राष्ट्रका कोई हित न होता था। बल्कि जैसा कि ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें प्राय' पीछेसे हुआ करता है, लोगोंके मनमे एक प्रकारका आदरमिश्रित अनादर उत्पन्न हो गया था। उन ५९ सभासदोंमें बिगर नामका एक भी सभासद था, जो यह समझता था कि मीठी और सीधी बातोंसे काम नहीं चलता और इसलिए वह कभी कभी कुछ बढकर बातें कह डाला करता था। उसके मनमें अँगरेजों और पार्लमेंटके सम्बन्धमे कुछ भी आदर नहीं था, पर वह भी वक्तृता देना नहीं जानता था। जो मनमें आता था, वही वह उजड्डपनसे कह चलता था। उसके भाषणसे अँगरेज लोग

खिजला जाते थे । पार्नेल कुछ जानता बूझता नहीं था। पर वह समझता था कि नियमोंका ज्ञान प्राप्त करनेका सबसे अच्छा उपाय नियमोंका उल्लघन करना ही है, इसलिए उसने भी बिगरका ही अनुकरण किया और कुछ दिनोंमें वह उससे बहुत आगे बढ गया।

२२ अप्रैल १८७५ को पार्नेल सभासद हुआ था, पर ३० जून तक उसे कुछ बोलनेका अवसर नहीं मिला। ३० जूनको जब होमरूल पर विचार हो रहा था तब एक अँगरेजने फीनियन लोगोंको खूनी कह डाला। इस पर पार्नेल बडे आवेशमे आकर एक दमसे बोल उठा–"नहीं, यह शब्द ठीक नहीं है।" उस अँगरेजने गम्भीरतापूर्वक कहा–"मुझे दु ख है कि खूनका समर्थन करनेवाला भी एक सभासद यहाँ है।" सब लोग पार्नेलसे अपनी बात लौटा लेनेके लिए कहने लगे, पर पार्नेलने नहीं माना, बल्कि उलटे जोरोंसे अपने कथनका समर्थन किया, जिस पर आयरिश सभासदोंने खूब तालियाँ पीटीं। यह बात यही तक रह गई। पर इसके कारण अँगरेजोंका ध्यान भी उसकी ओर गया और फीनियन लोगोंका भी। अँगरेज उससे चिढे और फीनियन उससे प्रसन्न हुए।

सन् १८७७ से वह पार्लमेण्टके वादविवादमें अधिक सम्मिलित होने लगा। जहाँ तक होता वह नियमानुमोदित रीतिसे पार्लमेण्टके काममे अडचन डालता। अब वह सब बातें भी अच्छे ढगसे कहने लगा था और सब तरहके ऊँच नीच पर भी खूब विचार करता था। वह और बट दोनों मिलकर अँगरेजोंको प्राय चिढाया और खिझाया करते थे, पर बटको यह बात पसन्द न थी। एक दिन दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमे एक बिल पर वादविवाद हो रहा था, इतनेमें पार्नेलके मुँहसे निकल गया कि–"इन्हीं सब कारणोंसे मत्रि-मण्डलके काममे अडचन डालनेमें मुझे एक विशेष प्रकारका आनन्द होता है।" बस, इसी पर

सर नार्थकोटने वादविवादके नियमोंमें बहुत कुछ परिवर्त्तन करा डाला। निश्चय हो गया कि अशिष्ट व्यवहार करनेवाला समासद सभासे निकाल दिया जाय और व्यर्थ अडचन डालनेके लिए यदि कोई कुछ कहे तो उस पर विचार न किया जाय। परतो भी इन निश्चयोंका विशेष उपयोग नहीं हुआ। क्योंकि कानून बनानेवालोंकी सदा कानून तोडने-वालोंके सामने हार ही होती है। इसके चार ही दिन बाद एक वाद-विवाद-के लिए पार्लमेण्टके सभासदोंको लगातार छब्बीस घण्टे तक माथापच्ची करनी पडी। इस कारण अँगरेज लोग तो पार्नेलसे द्वेष करने लगे और आयर्लैण्डमें उसकी लोकप्रियता बढने लगी। १८७८ में वह बटके स्थान-पर आयरिश होमरूल सभाका सभापति बनाया गया। इसमें फीनियन लोगोंने उसकी बहुत सहायता की। यद्यपि वह स्वय फीनियन नहीं था, तथापि वह उनसे विरोध करना नहीं चाहता था और यथासाध्य अपने काममें उनसे उचित सहायता लेना चाहता था। फीनियन लोग तो कहते थे कि पार्लमेण्ट खेलवाड है और वहाँ लोग समय बितानेके लिए जाते हैं; पर पार्नेल कहता था कि "केवल नियमविरुद्ध आन्दोलनसे आज तक कभी कोई काम नहीं हुआ। इसलिए तुम लोग अपना काम करो और हम अपना काम करें। कोई किसीके काममें अडचन न डाले।" बट और ओकानेलने भी प्राय यही बात कही थी, पर तो भी वे लोग सार्वजनिक कामोंमें फीनियन लोगोंको मिलाना ठीक नहीं समझते थे। पर पार्नेल उनसे यथेष्ट मेल-मिलाप रखता था। वह उनसे काम तो ले लेता था, पर स्वय उनके फेरमें न पडता था। इस प्रकार विना अधिक घनिष्ठताके ही उसने उन लोगोंकी प्रीति सम्पादित कर ली थी। साथ ही उसने आगे चलकर उन लोगोंको यह भी समझा दिया था कि हथियार उठानेसे कोई लाभ नहीं; क्योंकि हथियार उठाकर जान पर खेलनेवाले लोग बहुत ही थोडे होते हैं और थोडे आदमियोंका

आन्दोलन कभी सफल नहीं होता। इसलिए पार्लमेण्टमें आन्दोलन करना ही अधिक लाभदायक है। साथ ही उसने यह भी समझ लिया था कि साधारण जनसमाज राजनीतिके गूढ तत्त्वोंको नहीं समझ सकता। अत ऐसी बातोंके लिए आन्दोलन करना चाहिए, जिनसे उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो और इसी विचारसे उसने २१ अक्टूबर १८७९ को 'आयरिश लैण्ड लीग' नामक एक सभा स्थापित की। इस सभाका उद्देश्य यह था कि आयरिश खेतिहरोंके कष्ट कम करके अँगरेज जमींदारोंसे उनकी रक्षा की जाय और पार्लमेण्टसे ऐसे नियम बनवाये जायँ, जिनसे वे आगे चल कर अपनी जमीनके मालिक बन जायँ।

दूसरे वर्ष पार्नेल लोगोंको इस सभाके उद्देश समझानेके लिए अमेरिका गया। वहाँ दो महीनेमें उसने प्राय ग्यारह हजार मीलका प्रवास किया। बासठ शहरोंमे उसने व्याख्यान दिये और चार लाख रुपया चन्दा वसूल किया। वहाँ उसका सत्कार भी खूब हुआ और उक्त लीगकी एक शाखा भी स्थापित हो गई। उसी वर्ष अप्रैलमें वह तीन नगरोंकी ओरसे फिर पार्लमेण्टमें चुना गया। पार्लमेण्टमें पहुँचते ही उसने आयरिश खेतहरोंका प्रश्न उठाया, जिसमें लैंड लीगके आंदोलनसे सहायता मिली। १९ सितम्बर १८८० को उसने एनिसमें व्याख्यान देकर खेतिहरोंको अँगरेजोंका बहिष्कार करनेका उपदेश दिया और तदनुसार सबसे पहले एक जमींदारके 'बॉयकॉट' नामक मुख्तारका बहिष्कार हुआ। यहाँ तक कि उसके नोकरोंने भी उसका बहिष्कार कर दिया। इसी प्रकार और भी बहुतसे लोगोंका बहिष्कार हुआ। जगह जगह इसीके सम्बन्धमें व्याख्यान होने लगे। इस आन्दोलनको दबानेके लिए सरकारने पार्नेल, डिलन, बिगर आदि चोदह नेताओं पर मुकदमा चलाया। इक्कीस दिन तक मुकदमा होनेके बाद ज्यूरियोंकी रायसे सब अभियुक्त छूट गये। इससे चिढ़ कर

आयर्लैंडके वाइसराय लार्ड कूपरने पार्लमेण्टसे यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि विना अदालतमें भेजे ही लोग जेल भेज दिये जा सकें और तदनुसार १८८१ मे सैकडों आदमी जेल भेज दिये गये।

यद्यपि १८८० में ग्लैडस्टनने जमीनके सम्बन्धमें कुछ नये कानून बनवा दिये थे, पर उनका कुछ अग लोगोको मान्य नहीं था, इस लिए लैण्ड लीगने लोगोंको यह उपदेश देना आरम्भ किया कि लोग स्वालम्बनपूर्वक पहलेकी तरह प्रयत्न और आदोलन करते रहे और इस लिए फिर दगे-फसाद होने लगे। ग्लैडस्टनने पार्नेलके इस कृत्यका बहुत जोरोंसे निषेध किया और उसे साथियो सहित जेल भेजना निश्चय किया। १२ अक्टूबर १८८१ को वह वारण्टके द्वारा पकड कर किलमा-इनहमके जेलमें भेज दिया गया। पार्नेलने वहाँसे अपने आदमियोंको कहला दिया कि यदि मै शीघ्र ही जेलसे छूट गया तो मै समझूँगा कि तुम लोगोंने अपने कर्त्तव्योंका पालन नहीं किया, अर्थात् तुम लोग ऐसे कृत्य बराबर करते रहो जिससे सरकार मुझे मुक्त न करे। तदनुसार लैण्ड लीगने लोगोसे कहा कि खेतिहर लोग लगान देना बिलकुल बन्द कर दें। इस सम्बन्धमे जो विज्ञापन प्रकाशित किया गया था उस पर पार्नेलके भी हस्ताक्षर थे, इस लिए लोगोंमें उसका बहुत मान हुआ। उस आज्ञाको परम पवित्र समझ कर लोगोंने उसका पालन आरम्भ कर दिया, यहाँतक कि खेतिहरोकी पीडित स्त्रियाँ भी इसमें सम्मिलित हो गई। राजकीय अपराध दुगुने और तिगुने होने लगे। जगह जगह लैण्ड लीगकी शाखायें स्थापित हो गई। एकके जेल जाते ही दूसरा उसकी जगह आपसे आप तैयार हो जाता था। इन सब उपद्रवाको देखकर ग्लैडस्टन साहबने अपनी नीतिमें परिवर्त्तन करना निश्चित किया। ग्लैडस्टनने जेलमें जाकर पार्नेलसे भेट की और दोनोंने मिलकर निश्चित किया कि जमीनके सम्बन्धके १८८० वाले कानूनकी व्याप्ति पहलेकी

अपेक्षा अधिक विस्तृत हो, खेतिहरोपक्के फुटकर कर कम किये जायँ और जब इन बातोंका दोना निश्चित हो जाय तब पार्नेल अपना घोषणा-पत्र लौटा ले। पार्नेलका कहना था कि इस प्रकार दगा फसाद आपसे आप कम हो जायगा। यद्यपि उसमें उसने अपने छूटनेकी शर्त नहीं लगाई थी, तथापि ग्लैडस्टन साहब समझते थे कि इसके उपरान्त उसे जेलमें रखना ठीक न होगा। इस निश्चयके उपरान्त मन्त्रिमंडलकी आज्ञासे वह छोड भी दिया गया। लेकिन आयरिश सेक्रेटरी मि० फॉर्स्टरको यह बात पसन्द न आई और उसने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया। लेकिन जो निश्चय इतने कठिन परिश्रमसे हुआ था वह भी अधिक दिनोंतक न ठहरा। क्योंकि ६ मईको फीनिक्सपार्क नामक बागमें आयर्लैण्डके मुख्य सेक्रेटरी लार्ड फ्रेडरिक कैवेंडिश और मि० बर्कको कुछ दुष्टोंने छुरियोंसे मार डाला। उस समय सारे इंग्लैण्डमें क्रोधकी बहुत अधिक ज्वाला भड़की और लोग मारे क्रोधके अन्धे हो गये। पार्नेलकी कीर्ति उससमय बहुत फैली हुई थी, क्योंकि उसने अपने आन्दोलनसे प्रधान मन्त्रीतककी नीति बदल दी थी। यदि शान्ति रहती तो उसकी कीर्ति और भी बढती। लेकिन कुछ दुष्टोंके इस दुष्कर्म्मसे सारा बना बनाया खेल बिगड गया और पार्नेलको बहुत अधिक दुःख हुआ। उसने निश्चय किया कि अब नेतृत्वका काम छोड कर चुपचाप घर बैठना ही ठीक है। उसने ग्लैडस्टन साहबको पत्र भी लिखा कि अब मैं आयरिश सभासदोंके नेतृत्वसे इस्तीफा देना चाहता हूँ। लेकिन ग्लैडस्टन और चेंबरलेन आदिने सहानुभूति दिखलाते हुए उसे समझाया कि ऐसे अवसर पर इस्तीफा देना ठीक नहीं है, क्योंकि इससे लोगोंमें भ्रम फैलनेकी सम्भावना है। इस लिए इस्तीफेकी बात रह गई।

६ मईको पार्नेल, डिलन और डेविटने आयरिश लोगोंके नाम एक घोषणापत्र निकाला जिसमें बहुत ही तिरस्कारपूर्वक उक्त हत्याका निषेध

किया गया था और उसे सबसे अधिक निकृष्ट अपराध बतलाया था। साथ ही यह भी कहा गया था कि जब तक अपराधी पकडा न जायगा और उसे कठोर दण्ड न मिलेगा तब तक आयरिश लोगोंके मुँह पर लगी हुई कालिख न मिटेगी। ८ मईको पार्नेल जब पार्लमेंटमें गया तब बहुत ही उदास और खिन्न दिखाई पडता था। उसने एक छोटेसे भाषणमें हत्याका निषेध किया, पर साथ ही यह भी कह दिया कि यदि ऐसे अपराधोंके कारण अधिकारी लोग नये कडे नियम बनावें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। इस दुर्घटनासे ग्लैडस्टन और पार्नेलको लज्जित होना पडा, पर फार्स्टर कुछ प्रसन्न था। उसी समय सर विलियम हार-कोर्टने राजकीय अपराधोंके सम्बन्धमें एक नया बिल उपस्थित किया, पर उसकी कुछ धारायें बहुत ही अन्यायमूलक थीं इस लिए आयरिश सभासदोंने उसका विरोध किया। कई दिनतक वादविवाद होता रहा। पार्लमेण्टके नियमोंका भग करनेके कारण अध्यक्षने अट्ठारह आयरिश सभासदोंको मुअत्तल कर दिया। लेकिन उस समय भी ग्लैडस्टनने बडे ही धैर्य्यसे खेतिहरोंके बाकी लगानके सम्बन्धमें एक बिल उपस्थित किया जो जुलाईमें पास हो गया। तो भी पार्नेलका दु ख कम नहीं हुआ। उसने आयर्लैण्ड जाकर लोगोंको राजकीय आन्दोलन कुछ समय तक बन्द रखनेकी सलाह दी। इस पर कुछ लोग उसे डरपोक और दब्बू समझने लगे और बहुतसे फीनियन लोग उससे चिढ कर अमेरिका चले गये। तथापि पार्नेल बिलकुल चुपचाप बैठना नहीं चाहता था। उसने कुछ दिनोंके लिए जमीनके सम्बन्धमें आन्दोलनको रोक कर होमरूलसम्बन्धी आन्दोलन करना चाहा। १६ अगस्तको डबलिन-की म्युनिसिपैलटीने उसे 'नागरिकताके अधिकार' भेंट किये और उस अवसर पर उसने लोगोंके समाने अपने विचार प्रकट किये। १७ अक्टूबर १८८२ को नेशनल लीगकी स्थापना हुई। स्वतत्र पार्लमेण्ट

और भूमिका स्वामित्व उस सभाका साध्य और नियमानुमोदित आन्दोलन साधन रक्खा गया। डिलन और डेविटको पार्नेलकी यह सौम्य नीति बुरी मालूम हुई, जिसके कारण उन लोगोंमें बीच बीचमें झगड़े होने लगे। उसके अदूरदर्शी अनुयायियोंने यह नहीं समझा कि जिस प्रकार गायक या वक्ताको समय समय पर अपना स्वर उतारना और चढाना पडता है उसी प्रकार राजकीय नेताओंको भी चढाना और उतारना पडता है, और इसलिए वे उसकी निन्दा करने लगे।

पार्लेमेण्टमें फार्स्टर आदिने पार्नेल पर खूब बौछारें की थीं, लेकिन पार्नेलने उनकी कुछ भी परवा न की और न आगे चलकर उसने केवल राजभक्ति दिखलानेके लिए अत्याचारोंका व्यर्थ निषेध ही किया। उसका मत था कि देशमें शान्ति रखना और अपराध न होने देना सरकारका कर्त्तव्य है, लोगोंको व्यर्थ दोष देना ठीक नहीं। दूसरे वर्ष पार्लेमेण्टके चुनाव तथा दूसरे खर्चोंके लिए आयरिश लोगोंने चन्दा करके उसे तीस हजार पाउण्ड देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। १८८५ मे जब पार्लेमेण्टमें टोरी दलका बहुमत हुआ तब उसने लिबरल दलकी सहायतासे टोरी मंत्रि-मण्डलको दिक करना शुरू किया। उस समय टोरी और लिबरल दोनों दल प्राय: बराबर बराबर ही थे, और जिस ओर आयरिश दल मिल जाता या वही पक्ष भारी हो जाता था। इसलिए बारी बारीसे प्रत्येक पक्षकी सहायता करके उन्हें चढाने उतारनेमें पार्नेलको खूब आनन्द आता था और साथ ही उसके राष्ट्रका बहुत कुछ लाभ भी होता था आयरिश लोगोंके उपकारका स्मरण करके टोरी मंत्रि-मण्डलने १८८५ में दमनकारक नियमोंकी वार्षिक पुनरावृत्ति नहीं की। इसके बाद जब नये चुनावका समय आया तब मतदाताओंके सामने व्याख्यान देते हुए लिबरल राजनीतिज्ञों और विशेषत-ग्लैडस्टन साहबने यह झलका दिया कि आयरिश होमरूलका प्रश्न शीघ्र ही पार्लेमेण्टमें उपस्थित किया

जायगा। उस चुनावमें ३३५ लिबरल और २४९ कन्सर्वेटिव चुने गये। अर्थात् ग्लैडस्टन साहबके पक्षमें ८६ मत अधिक थे, और १०३ आयरिश सभासदोंमें ८५ होमरूलर और एक साथ मिलकर काम करनेवाले थे। इसलिए वह जिस पक्षमें मिल जाता उसीकी जीत होती। अपने पक्षकी सत्ताको बनाये रखनेके लिए ग्लैडस्टन साहबने ८ अप्रेल १८८६ को पार्लमेण्टमें आयरिश होमरूल बिल उपस्थित किया। लेकिन लिबरल दलमें ही इस विषयमें मतभेद हो गया। कुछ लिबरल मेम्बरोंने तो यहाँतक निश्चय कर लिया कि चाहे लिबरल दल अधिकारच्युत हो जाय, पर यह बिल पास न हो। अतः ३१३ अनुकूल और ३४३ विरुद्ध मतोंके कारण ७ जूनको वह बिल रद्द हो गया। लिबरल मन्त्रि-मण्डलने इस्तीफा दे दिया और फिर चुनावकी धूम मची। इस पराभवके कारण पार्नेल बहुत दुःखी हुआ। तो भी उसके शत्रु और मित्र सभी यह कहने लगे कि ५० वर्षमें आयरिश नेताओंने जितना काम नहीं किया था उतना अकेले पार्नेलने दस वर्षमें कर डाला। नये चुनावमें फिर होमरूलके पक्षपाती ५८ सभासद चुने गये। नई पार्लमेण्टमें जमीनके सम्बन्धमें पार्नेलने जो बिल उपस्थित किया था वह पास नहीं हुआ, तो भी विलियम ओब्रायन आदि युवक नेता उसके सम्बन्धमें आन्दोलन करते रहे। दुर्भाग्यवश अनाजके सस्ते हो जानेके कारण उस वर्ष खेतिहरोंको घाटा हुआ और फिरसे दगा-फसाद होने लगा, पर पहलेका सा जोर इस बार नहीं रह गया था।

टाइम्स पत्र पार्नेलका बड़ा विरोधी था। समय समय पर वह यही सिद्ध करनेका प्रयत्न किया करता था कि देशमें नेताओंके कारण ही अत्याचार और उपद्रव होते हैं। सन् १८८७ में पिगट नामक एक देशद्रोही अधम व्यक्तिने पार्नेलको परेशान करनेके लिए उसके

नामकी कुछ जाली चिट्ठियाँ तैयार कीं और उनमेंसे दो एक पत्रों पर पार्नेलके जाली दस्तखत भी बना लिये। उन पत्रोंमें ऐसी बातें लिखी थीं, जिनसे सिद्ध होता था कि पार्नेल फीनिक्स पार्कवाली हत्याओं-का पक्षपाती और समर्थक है। उसने टाइम्सके सम्पादकोंसे कहा कि बडी कठिनतासे ये पत्र मुझे अमेरिकामें मिले हैं, और उन्हें बहका कर ८५० पाउण्ड पर वे पत्र उनके हाथ उसने बेच डाले। टाइम्सने बडी प्रसन्नतासे और बडे जोरदार लेखोंके साथ उन पत्रोंको छाप डाला। उनमेंसे एकमें लिखा था —

" आपके मित्रके नाराज हो जानेसे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि आपको और उन्हें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि हत्याका स्पष्ट रूपसे निषेध करनेके अतिरिक्त मेरे लिए और कोई मार्ग ही नहीं था। हत्याका निषेध तत्काल करना ही उस समय वास्तविक बुद्धिमत्ताका काम था। लेकिन मैं तुम्हें यह बतला देना चाहता हूँ कि लार्ड केवेंडिशके अकारण मारे जानेका मुझे कुछ दुःख है। हाँ, बर्कको उचित दण्ड मिला। मेरी समझमें उसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई। मेरा यह मत आप जिन लोगोंको जतलाना उचित समझें उन्हें प्रसन्नता-पूर्वक जतला दें और जिन लोगों पर आपका विश्वास हो उन्हें यह पत्र दिखला दें, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। पर मेरा पता आप कभी किसीको न बतलावें।

भवदीय—

चार्ल्स स्टुअर्ट पार्नेल।"

१८ अप्रेलको उक्त पत्र प्रकाशित हुआ और सन्ध्याको उसे इसका पता लगा। उसी समय पार्लमेण्टमें पहुँचकर गम्भीरतापूर्वक उसने कह दिया कि यह पत्र बनावटी है, जिससे उसके विरोधियोंको भी चुप रहना पडा। लेकिन पार्नेल और टाइम्स दोनोंकी प्रतिष्ठा बराबर

थी, इसलिए पार्नेलको अपनी निर्दोषताके प्रमाण देनेकी आवश्यकता थी। तीन महीने तक इस सम्बन्धमें कुछ भी न हुआ। इसके उपरान्त सरकारी वकील सर रिचर्ड वेबस्टरने पार्नेल पर फिर वही पुराना अभियोग आरोपित किया और कहा कि आयरिश नेता अत्याचार कराते है। तब पार्नेलने कहा कि पार्लमेण्ट इस अभियोगकी जॉचके लिए एक कमेटी स्थापित करे। कमेटी तो नहीं बनाई गई, पर तीन न्यायाधीशोंका एक स्वतत्र कमीशन इस सम्बन्धमें जॉच करनेके लिए नियुक्त हुआ। पार्नेलको और अभियोगोंकी तो कोई चिन्ता नहीं थी, पर उक्त पत्रको जाली प्रमाणित करनेकी उसे बहुत चिन्ता थी और वह जाल बनानेवालेको गिरिफ्तार कराना चाहता था। उस पत्रमें कुछ अक्षर पार्नेलके लेखसे भिन्न और दो एक शब्द बिलकुल अशुद्ध लिखे हुए थे। उन्हींसे लेखकका पता लगाना आवश्यक था। पार्नेलके सहकारी और लैण्ड लीगके एक सेक्रेटरी पैट्रिक ईगनके पास पिगटके लिखे हुए कुछ पत्र थे, जिनमें वैसी ही भूलें थीं। इसी आधार पर पिगट तलब किया गया और २० फरवरी १८८९ को कमीशनके सामने उसका इजहार हुआ। उस अवसर पर पार्नेलके वकील सर चार्ल्स रसलने उससे स्पष्ट शब्दोंमें तो नहीं, पर हेर फेरसे यह अवश्य स्वीकार करा लिया कि मैने ये पत्र जाली बनाये है। उसी समय पिगटका उतरा हुआ चेहरा और घबराहट देखकर सब लोगोंने असली मामला समझ लिया। उस दिनके बादसे अदालतमें दर्शकोंकी भीड भी कम होने लगी। २६ फरवरीको उससे न्यायालयमें उपस्थित होनेके लिए कहा गया था, पर उस दिन वह नहीं आया। उसने अदालतमें लिखकर भेज दिया कि मैने यह जाल किया है। पिगटके नाम वारण्ट निकला, और जब वारण्ट उसके पास पहुँचा तब उसने पिस्तौलसे आत्महत्या कर ली। पिगट सदा देशद्रोही कार्य्य करके और लोगोंको धमकाके रुपये वसूल किया करता था। इस लिए इस प्रकार उसका मर जाना अच्छा ही हुआ।

१३ फरवरी १८९० को कमीशनने जो रिपोर्ट तैयार की उसमें आन्दोलनके सम्बन्धमें अन्यान्य अभियोगोंको तो उसके प्रमाणित रक्खा पर यह अवश्य कह दिया कि फीनिक्स पार्कवाले और दूसरे अत्याचारोंके साथ पार्नेल आदिका कोई सम्बन्ध नहीं था और न लैण्ड लीग आदिके सार्वजनिक कोषसे इन अत्याचारोंके लिए आर्थिक सहायता दी जाती थी। चारों ओर पार्नेलका खूब अभिनन्दन होने लगा। बड़े बड़े लिबरल राजनीतिज्ञ बुलाबुलाकर उसका आदर करने लगे। इस प्रकार शत्रु और मित्र दोनों ही उसे मानने लगे और उसका यश बहुत बढ़ गया। पर शीघ्र ही उसके इस यशका ह्रास भी होने लगा। यद्यपि इसके उपरात वह दो ही वर्ष जीवित रहा, पर यह समय उसके लिए बहुत ही दुःखद और चिन्ताजनक हुआ। २४ दिसबर १८८९ को कैप्टन ओशिया नामक एक आयरिश सभासदने न्यायालयमें उस पर यह अभियोग लगाया कि मेरी स्त्रीसे इसका अनुचित सम्बन्ध है और कहा कि इसी लिए मै अपनी स्त्रीको तलाक देना चाहता हूँ। तबसे लोकमतका प्रवाह उसके विरुद्ध हो गया। उसकी बहुत बदनामी हुई, जिससे उसके शत्रु बहुत प्रसन्न हुए। उसने इस मुकदमेके सम्बन्धमें कुछ भी न किया और ओशियाकी डिग्री हो गई। अब चारों ओरसे सब लोग उससे कहने लगे कि तुम अपना नेतृत्व और होमरूलके आन्दोलनसे सम्बन्ध छोड़ दो। उनमेंसे कुछ तो उसके शत्रु थे और कुछ पापभीरु और सच्चे लोग थे, और ग्लैडस्टन साहब उनमेंसे एक थे। यद्यपि निजके और सार्वजनिक आचरणका सम्बन्ध जोड़नेके लिए कुछ नियमित मर्य्यादा होनी चाहिए, तथापि होमरूलसरीखे महत्त्वपूर्ण कामके साथ उसके सम्बद्ध होनेके कारण बड़े बड़े योग्य मनुष्योंने उसे सार्वजनिक कार्य्य छोड़ देनेके लिए कहा। वह होमरूलके आन्दोलनसे अलग नहीं होना चाहता था और इसके लिए तीन कारण बतलाता था। एक तो यह कि आज-

तक मैने देशकी जो सेवा की है उसे देखते हुए मुझे अलग होनेके लिए कहना ठीक नहीं है, क्योंकि राजकीय विषयोंमें सारासारका विचार करनेकी पात्रता मुझमें अब तक है। दूसरे यह कि अँगरेज मुझसे भले ही अलग हो जानेके लिए कहें, पर आयरिश लोगोंको उनका अनुकरण करना मानों अपनी दुर्बलता प्रकट करना है। अँगरेजोंका तो इसीमें कल्याण है, पर आयरिश लोगोंको अपना हानि लाभ सोचना चाहिए। तीसरे यह कि होमरूलके सम्बन्धमें आन्दोलनमें वहुत कुछ सफलता हो रही है, ऐसे अवसर पर यदि उसका काम किसी दूसरेके हाथमें चला जायगा तो उक्त आन्दोलनका अहित होगा। लेकिन उस समय यह निश्चय करना कठिन था कि इन बातोंमें कितनी सत्यता है और पार्नेल इसमें कहाँतक अपने स्वार्थका ध्यान रखता है। तो भी उसके अनुयायियोंमें दो दल हो गये। डिलन, ओब्रायन, ओकोनर मेकार्थी, हीली आदि दूसरी श्रेणीके नेताओका पहले यह मत था कि पार्नेलको पद-भ्रष्ट न किया जाय। लेकिन पीछे आयर्लैण्ड और इग्लैण्ड दोनों देशोंके बडे बडे सदाचारी, नीतिमान् और सद्धर्मशील पुरुषोंने उसे पदभ्रष्ट करनेकी ही सम्मति दी। ग्लैडस्टनने तो इसके लिए यहाँतक उद्योग किया कि 'स्टेण्डर्ड' मे एक पत्र भी अपने नामसे छपवा दिया, जिसके उत्तरमे पार्नेलने 'शेष कोपेन पूरयेत्' के न्यायानुसार उनको तथा लिबरल पक्षको बहुतसी उलटी सीधी बातें कह सुनाई। अन्तको १ दिसबरको पार्लमेण्टके एक दालानमें आयरिश सभासदोंकी एक अलग सभा हुई जिसमें स्वय पार्नेल ही सभापति हुआ। एक सभासदने प्रस्ताव किया कि अब पार्नेल नेता न रहे, पर उसने कुछ ओपचारिक कारण लगाकर वह प्रस्ताव रद्द कर दिया। इसके बाद यह कहा गया कि इस वादग्रस्त विषयपर विचार करनेके लिए डबलिनमे एक सभा हो, पर बहुमतसे यह भी अस्वीकृत हुआ। और तब यह निश्चय हुआ कि

पहले यह अच्छी तरह समझ लिया जाय कि पार्नेलको पदभ्रष्ट करनेसे आयरिश लोगोंको ग्लेडस्टन साहब देंगे क्या, और तब उसे पदभ्रष्ट किया जाय। लेकिन यह लोगोंको चकमा देना ही था। क्योंकि ग्लेडस्टन साहब होमरूलके सम्बन्धमें पहलेसे ही कोई वचन तो दे नहीं सकते थे। अस्तु। एक डेप्युटेशन ग्लैडस्टनके पास गया। उन्होने केवल इतना उत्तर दिया कि होमरूल बिल शीघ्र ही उपस्थित किया जायगा, उस समय सब बातें लोगोंको मालूम हो जायँगी। इसके बाद फिर आयरिश सभासदोंकी सभा हुई, पर उसमें झगडा होनेके कारण मेकार्थीके साथ २६ सभासद उठकर चले गये। इस प्रकार पार्नेलकी जीत तो हो गई, पर उससे प्रश्नकी मीमांसा नहीं हुई। जिस अन्त-कलहके लिए आयर्लैंड इतना प्रसिद्ध है वही आगे चलकर फिर सारे देशमें फैली हुई दिखाई दी। डेविट, टिलन आदि पार्नेलके नेतृत्वसे निकल गये। आयर्लैंडमे उसे केवल फीनियन युवकोंका भरोसा रह गया था। रेडमण्डसरीसे भी कुछ अनुयायी थे, जो उसे मरण-पर्य्यन्त नहीं छोडना चाहते थे। इस लिए गाँव गाँवमें उसके पक्षपाती और विरोधी दोनो दल खडे हो गये। डेविट सरीखे लोग जो पहले स्वयं फीनियन लोगोंमें सम्मिलित थे कहने लगे कि पार्नेल फीनियन लोगोंको उत्तेजित करके देशमें उपद्रव खडा करता है। इसी प्रकार एक वर्ष तक और भी बहुत सी बातों पर कहा सुनी होती रही। पार्नेलने पद-भ्रष्ट न होनेके लिए सैकडों कारण दिये पर फल कुछ भी न हुआ। लेकिन एकबार गई हुई बात फिर हाथ नहीं आती। इसी बीचमें ३१ सितंबर १८९१ को वह बीमार पडा और १० अक्टूबरको इंग्लैण्डमें ही मर गया। उसकी लाश दूसरे दिन आयर्लैंड लाई गई और बडे स-मारोहसे लाखों आदमियोंकी मौजूदगीमें दफन की गई।

पार्नेल बहुत ही योग्य, बुद्धिमान् और चलता हुआ आदमी था,

पर वह अच्छा वक्ता नहीं था। विद्वत्ता भी उसमें बिलकुल नहीं थी, वह इतिहास भी कुछ नहीं जानता था। तो भी अपने समयके सब नेताओंसे वह केवल इसीलिए बढ गया था कि उसमें अँगरेजोंके प्रति द्वेष बहुत अधिक था, और जिस समय वह राजनीतिक क्षेत्रमें उतरा वह समय ऐसा था कि सब लोग अँगरेजोंके द्वेष्टाकी बात माननेके लिए तैयार रहते थे। अँगरेजोंसे द्वेष करनेवाले और भी बहुतसे लोग थे, पर आदर उसीका हो सकता था जो आन्दोलनके मुख्य केन्द्र पार्लमेंट-में वह द्वेष प्रकट करनेका साहस करता। लोगोंको यद्यपि पार्लमेण्टसे कुछ आशा न रह गई थी, तो भी उसकी हँसी उडाना लोगोंको बहुत पसन्द था। और पार्नेलको यह काम खूब आता था। उसने केवल यही देश-सेवा की कि पार्लमेण्टका ध्यान बलपूर्वक आयर्लैण्डकी ओर आकृष्ट किया। उससे पहले पार्लमेण्टके नक्कारखानेमें आयर्लैण्डकी तूतीकी आवाज कोई नहीं सुनता था। लेकिन यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि कुछ समयके लिए उसने पार्लमेंटका नक्कारा बन्द कर दिया और अपनी तूती ससारको सुना दी। आयरिश सभासदोंका पहले पार्लमेंटमें रहना और न रहना दोनों बराबर होता था, पर पार्नेल-ने पार्लमेंटमें पहुँचकर हलचल मचा दी थी। वह भरी सभामें बेधडक होकर अँगरेजोंको फटकार बताता था और इसीलिए उसका इतना यश हुआ। वह परिस्थितिको खूब ताड लेता था और सबसे अधिक अनु-कूल उपाय निकाल लेता था। वह बहुत थोडी बातें कहता था, पर लोग उन थोडी बातोंको ही विशेष और महत्त्वपूर्ण समझते थे। वह पहलेसे अपने विचार प्रकट नहीं करता था, पर जब जो कुछ कह देता था वह वज्रलेप हो जाता था। किसीकी बातमें आकर वह अपना मत या विचार नहीं बदलता था, सब प्रश्नोंकी मीमासा स्वय ही करता था। वह आयरिश सभासदोंको अपने अधिकारमें रखकर अँगरेजोंको तग करता था। उसने समझ लिया था कि विना कुचेष्टाके प्रतिष्ठा

नहीं बढती, और इसीलिए सबका ध्यान उसकी ओर लगा रहता था। वह लोगोंमें अपना आदर कराना नहीं चाहता था। उसे केवल द्वेषकी धुन सवार थी। विद्या, कला, धैर्य्य, नीति, परोपकार आदिसे उसका कोई सरोकार नहीं था। राजनीतिक कार्य्यको छोडकर समाज-हितका और कोई कार्य्य उसने नहीं किया। तो भी उसने जो कुछ किया उससे उसके राष्ट्रका हित अवश्य हुआ।

ओकानेल और पार्नेलका साधर्म्य भी ध्यानमें रखने योग्य है। दोनों ही पार्लमेंटमें नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले थे, और उसीके द्वारा वे सब काम करना चाहते थे। लेकिन दोनों ही समझते थे कि पार्लमेंट हमारे शत्रुओंसे भरी हुई है, इसलिए वे कानूनको खींच तान कर लडते थे। दोनों ही निर्भय होकर भरी सभा पर टूट पडते थे। लेकिन दोनोंमें अन्तर बहुत था। ओकानेल अधिक बुद्धिमान था और लोगोंके साथ खूब मिल-जुल कर काम करता था। यों तो सारा आयर्लेंड उसका साथ देता था, पर पार्लमेंटमें ३०–४० सभासद ही उसके सहायक थे। पर पार्नेलके आज्ञाकारी ८० सभासद थे। ओकानेल लोगोंमें राजभक्ति उत्पन्न करना भी खूब जानता था और जब चाहता था तब उन्हें विद्रोहके लिए भी तैयार कर लेता था। पर पार्नेलका सिद्धान्त सदा एकसा रहता था। वह समझता था कि बिना खूब झगडे कुछ भी नहीं मिल सकता। तो भी वह कभी कोई काम नियम-विरुद्ध नहीं करता था। हाँ नियम-विरुद्ध काम करनेवालोंसे अपने काममें सहायता अवश्य लेता था। पर ओकानेल उनसे बात करना भी पसन्द नहीं करता था। ओकानेल लोगोंको अपने अनुकूल करता था और पार्नेल स्वय लोकमतके अनुकूल चलता था। पार्नेलकी पार्लमेंटके सभी सभासद खुशामद करते थे। ओकानेल हँसता हुआ पार्लमेण्टमें जाता था और पार्नेल खिन्न-वदन होकर। ओकानेल इंग्लैण्ड और आयर्लेंडका सम्बन्ध

रखना चाहता था पर पार्नेलका उस ओर ध्यान ही नहीं था। ओकानेलका मत था कि इग्लैण्डके साथ सद्भाव रखकर स्वतत्र पार्लमेण्ट प्राप्त की जाय, पर पार्नेलका मत था कि आयरिश लोग जो कुछ मॉगें वह इग्लैण्डको देना पडे। ओकानेलकी तरह पार्नेल खुले-आम गुप्त सभाओंका विरोध नही करता था, बल्कि उसकी समझमें उन्हें दबाना सिर्फ सरकारका काम था। वह कहता था कि बिना आयरिश नेताओंकी सहायताके तीन सौ वर्ष तक राज्य करके भी यदि ॲगरेज लोग शान्ति नहीं रख सके तो उन्हें राज्य छोडकर अलग हो जाना चाहिए और देशको नेताओंके सपुर्द कर देना चाहिए। ओकानेलके विरुद्ध उसका यह भी मत था कि जब तक अनुग्रह करनेके साधन हमारे पास न हों तब तक हम व्यर्थ निग्रहके झगडेमें क्यों पडें?

पार्नेलके समय आयरिश पक्ष सबसे अधिक प्रबल था। १८९० वाली दलबन्दीसे पहले आयरिश सभासदोंमें उसने खूब एकता रक्खी थी। उसके अनुयायी अच्छे अच्छे विद्वान्, वक्ता और लेखक थे। पर ओकानेलके वैसे साथी नहीं थे, उसे अधिकाश कार्य्य अकेले ही करने पडते थे। पर पार्लमेण्टमे पार्नेलकी मण्डली कभी कभी भारी पडती थी और इसी लिए उसके प्रयत्नोंमें सफलता भी होती थी। मौका पाते ही कभी उसकी मण्डली तालियॉ बजाकर, कभी हास्यकारक बातें कहकर, कभी व्याख्यान देकर और कभी पार्लमेण्टका काम रोकनेका उपक्रम करके चलती गाडीके आगे काठ डालती थी। वह मन्त्रि-मण्डलको दिक् करके आयरिश लोगोंकी बातोंकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट कराती थी। सब तरहके दाव-पेच करके, आक्रमण करके और लड-झगडके वह सदा राजनीतिक रण-क्षेत्रमें आगे बढ़नेके लिए तैयार रहती थी। इस सम्बन्धमें वह कवायद करना खूब जानती थी और इस कवायदका श्रेय पार्नेलको था।



परिशिष्ट*।

'राष्ट्रीय स्वतन्त्रताका आन्दोलन' शीर्षक छठे प्रकरणके अन्तमें हम बतला चुके हैं कि ब्रिटिश सरकारने आयरिश समस्याकी मीमांसाके लिए वहाँके प्रायः सभी राजनीतिक दलों तथा अन्यान्य समाजों और वर्गोंके प्रतिनिधियोंको एक महासभा या कनवेनशन करके यह निश्चय करनेका अधिकार दिया था कि वे सब लोग मिलकर स्वयं यह निश्चित करें कि भविष्यमें आयर्लैण्डका शासन किस प्रकार हो। उस समय हमने यह भी लिखा था कि—"इस समय जो दल इससे अलग रहेगा उसके नेताओं पर बड़ा भारी दायित्व रहेगा और यदि वह कनवेनशन कुछ सिद्धान्त स्थिर न कर सकी तो इसमें स्वयं आयरिश ही दोषी होंगे और यही समझा जायगा कि समस्त आयर्लैंड स्वराज्य नहीं चाहता। × × × × × × × × आयरिश लोगोंकी उच्चाकांक्षाओंकी पूर्ति और स्वराज्य-पात्रताकी सिद्धि आकर इसी कनवेनशन पर निर्भर हुई है। आशा है आयर्लैण्ड ऐसा अमूल्य अवसर अपने हाथों नष्ट न करेगा।" (देखो पृष्ठ १५७)

लेकिन जिस घरकी फूटके लिए आयर्लैण्ड इतना प्रसिद्ध है और जिस फूटके कारण सैकड़ों वर्षोंसे उसे पराधीनताके गड्ढेमें पड़े रहना पड़ा है, देखते हैं, उस फूट और मतभेदने अभीतक उसका पीछा नहीं छोड़ा। सर होरेश प्लंकेटकी अध्यक्षतामें कनवेनशनके अधिवेशन हुए और गत अप्रैल (१९१८) के मध्यमें उसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई। यद्यपि प्रायः आठ मासतक आयर्लैण्डके सभी दलोंको ठीक

* इस पुस्तकका अनुवाद ४–५ मास पहले ही तैयार हो चुका था, पर इसके छपनेमें बहुत अधिक विलम्ब हो गया। अतः इस परिशिष्टमें आयर्लैण्ड-सम्बन्धी इधरकी कुछ नई बातें दी जाती हैं।—रामचन्द्र वर्मा।

रास्ते पर लाने और एकमत करनेके लिए कठिन परिश्रम किया गया था तथापि उसमें सफलता नहीं हुई और जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई सर्व॰ सम्मतिसे नहीं वल्कि वहुमतसे हुई। उस रिपोर्टको इग्लैण्डके महामत्री मि० लाइड जार्जके पास भेजते हुए उन्होंने साथमें एक पत्र भी भेजा था जिसमें उन्होंने उस रिपोर्टकी मुख्य मुख्य बातें दे दी थीं। उस रिपोर्ट तथा पत्रको देखनेसे ज्ञात होता है कि कनवेनशनमें वहुमतसे यह तो निश्चय हो गया कि आयर्लैण्डमें ६४ सदस्योंका एक सिनेट तथा २०० सदस्योंका एक हाउस आफ कामन्स हो, और नेशनलिस्ट अथवा जातीय दलके लोगोंने यह वात भी कह दी थी कि यदि आवश्यकता हो और यूनियनिस्ट दलके लोग चाहें तो वे हाउस आफ कामन्सके लिए ४० प्रति सैकडे अर्थात् २०० में से ८० सभासद स्वय मनोनीत कर सकते है। अलस्टरवालोंने अपने प्रान्तसे सभासदोंको मनोनीत करना भी अस्वीकृत किया और अपने दलकी ओरसे एक अलग रिपोर्ट लिखकर उसमें इस वात पर जोर दिया कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य दिया भी जाय तो हमारा प्रान्त अलस्टर उससे बिलकुल अलग और स्वतत्र रक्खा जाय। उनमेंसे कुछ लोगोंका मत था कि यदि आयर्लैण्डको यूनाइटेड किंगडम (United kingdom) से अलग हो जानेका अधिकार है तो अलस्टरको भी शेष आयर्लैण्डसे अलग हो जानेका अधिकार है! थोडेसे नेशनलिस्ट भी ऐसे निकले, स्वराज्य-सम्वन्धी वातोंमें जिनका मत और लोगोंसे भिन्न था। शेष सब नेशनलिस्ट, समस्त दक्षिणी यूनियनिस्ट और मजदूर-दलके सात प्रतिनिधियोंमेंसे पाँच प्रतिनिधि होमरूल या स्वराज्यके पूरे पक्षपाती थे और इन्हीं लोगोंकी सख्याकी अधिकताके कारण वहुमतसे यह रिपोर्ट भी प्रकाशित हो सकी जो होमरूल या स्वराज्यके पक्षमें है। यदि अलस्टरवाले यूनियनिस्ट भी इन लोगोंका साथ देते तो कहा जा सकता

था कि यह रिपोर्ट सर्वसम्मतिसे प्रकाशित हुई है। अलस्टरवालोंको मिलानेके लिए नेशनलिस्ट लोगोंने उनकी और कई बातें मान ली थीं, पर फिर भी स्वराज्यके सम्बन्धमें नेशनलिस्ट लोगोंकी बातें अलस्टरवालोंने नहीं मानीं और एक विवादात्मक प्रश्न उपस्थित कर ही दिया। तथापि कनवेनशनने बहुमतसे यही निश्चित किया कि सारे आयर्लैण्डके लिए एक पार्लमेण्ट हो जिसे देशके सब प्रकारके आन्तरिक प्रबन्ध आदिके लिए पूरा पूरा अधिकार हो, वह अपने देशके लिए कानून बना सके, उसका शासन कर सके और लोगों पर स्वय ही टैक्स आदि लगा सके। साधारणत आयरिश लोग चाहते हैं कि हमें वैसा ही स्वराज्य मिले जैसा कि उपनिवेशों आदिको प्राप्त है। उपनिवेशोंमें अपने यहाँकी जल तथा स्थल-सेनाका प्रबन्ध स्वय ही किया जाता है, साम्राज्य-सरकार उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखती। परन्तु आयर्लैण्डकी भौगोलिक स्थिति ऐसी नहीं है—वह इग्लैण्डके इतना पास है, कि वहाँ जल तथा स्थल-सेनाका स्वतत्र प्रबन्ध नहीं हो सकता। इस लिए कनवेनशनने भी यही निश्चित किया कि जल तथा स्थल-सेनासम्बन्धी सब अधिकार ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश पार्लमेण्टके ही हाथमें रहे।

स्वराज्यका दूसरा महत्त्वपूर्ण अग अर्थ-प्रबन्ध है। यदि स्वराज्य मिल जाने पर भी किसी देशको अपने यहाँका आर्थिक प्रबन्ध करनेका अधिकार न हो तो वह स्वराज्य अधूरा ही ठहरेगा, उससे लोगोंकी उच्चाकाक्षाओंकी पूर्ति नहीं हो सकती। लेकिन मि० लाइड जार्जने पहले ही एक अवसर पर बतला दिया था कि कमसे कम जबतक युद्ध समाप्त न हो जाय तब तक आयर्लैण्डको आर्थिक स्वतत्रता मिलना सम्भव नहीं है और ब्रिटिश सरकार चाहती है कि ग्रेटब्रिटेन तथा आयर्लैण्डमें इस समय जो आर्थिक सम्बन्ध है वह ज्योंका त्यों बना रहे, उसमें किसी प्रकारका व्यत्यय न हो। और यह बात बहुतसे अशोंमें ठीक भी थी।

गवर्नमेण्टका यह भी विचार था कि युद्धके दो वर्ष बाद तक आयर्लैण्डके आयात-सम्बन्धी करों तथा आबकारी पर ब्रिटिश पार्लमेण्टका पूरा पूरा अधिकार रहे और ज्यों ही आयरिश पार्लमेण्ट स्थापित हो त्यों ही एक सयुक्त एक्सचेकर बोर्ड इस बातका निश्चय करनेके लिए स्थापित हो कि आयर्लैण्डकी वास्तविक आय क्या होनी चाहिए, और तब इस बातकी जाँचके लिए एक रायल कमीशन नियुक्त हो कि आयर्लैण्ड कितना धन प्रतिवर्ष साम्राज्य सरकारको साम्राज्यसम्बन्धी व्ययके लिए दिया करे और दोनोंका आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध किस प्रकारका हो। पुलिस और डाक-विभागको भी सरकार युद्ध-कालतक अपने ही अधिकारमें रखना चाहती थी। इन बातों पर कनवेनशनमें बहुत कुछ वादविवाद हुआ था और कुछ लोगोंने अपनी अपनी सम्मतिके अनुसार इस सम्बन्धमें भिन्न भिन्न प्रस्ताव उपस्थित किये थे। पर उनमेंसे लार्ड मेकडानलका प्रस्ताव कनवेनशनको अधिक पसन्द आया, क्योंकि उसमें मि० लाइड जार्ज तथा सरकारकी मुख्य मुख्य बातोंका समावेश होगया था। तदनुसार कनवेनशनने निश्चित किया कि आबकारी और बाहरसे आनेवाले माल पर महसूल लगानेका अधिकार अभी तो साम्राज्य सरकारको ही रहे, पर उनके सम्बन्धकी सब बातोंका अन्तिम निर्णय युद्ध समाप्त होनेके सात वर्षके अन्दर ही हो जाय, ग्रेटब्रिटेनके व्यापारमें किसी प्रकारकी बाधा न हो इसके लिए दोनों देशोंमें मुक्तद्वार या स्वच्छन्द वाणिज्य होता रहे, युद्धकालमें पुलिस और डाक-विभाग पर आयरिश तथा साम्राज्य दोनों सरकारोंका सयुक्त अधिकार रहे, और सयुक्त एक्सचेकर बोर्ड तो बने पर रायल कमीशनकी नियुक्त न हो। अलस्टर यूनियानिस्टोंने इस सम्बन्धकी अनेक बातोंको अस्वीकृत किया और उनके विषयमें अपनी स्वतन्त्र रिपोर्ट दी। कुछ नेशनलिस्टोंका कहना था कि इम्पीरियल पार्लमेण्टको

इस बातका अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह आयर्लैण्डके लिए अनिवार्य्य सैनिक सेवाका विधान करे। पर कुछ नेशनलिस्टोंने कहा कि नहीं, इस कठिन समयमें हमें साम्राज्य-सरकारकी धन और जनसे कुछ सहायता करनी चाहिए। देश-रक्षा और पुलिस-सम्बन्धी जो सब कमेटी नियुक्त हुई थी उसने अपनी रिपोर्टमें कहा था कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य मिल जाय तो उस दशामें विना आयरिश पार्लमेण्टकी स्वीकृति और सहायताके आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्तीका कानून जारी न हो सकेगा। आगे बढ़नेसे पहले इस अवसरपर इस रिपोर्टके सम्बन्धमें हम केवल दो बातें बतला देना चाहते हैं। एक तो यह कि कनवेनशनकी बैठक आरम्भ होनेसे पहले आयरिश लोगोंमें जो मत भेद था, वह मत-भेद कनवेनशनकी रिपोर्टतकमें बना रहा। और दूसरी बात यह कि कुछ तो युद्धके कारण और कुछ इस मत-भेदके कारण कनवेनशनकी स्वराज्य-सम्बन्धी अधिकारोंकी माँगे अनेक अशोंमे घट गई। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं इस रिपोर्टके आधार पर आयर्लैण्डको मिलनेवाला स्वराज्य प्राय अधूरा ही ठहरेगा—उससे नेशनालिस्टोंकी उच्चाकाक्षाओंकी पूर्त्ति नहीं होगी। इसी बीचमें (अप्रेल १९१८ के आरम्भमें) हाउस आफ कामन्समें जन बल सम्बन्धी बिल पर विचार हो रहा था। विचार क्या हो रहा था, उस बिलको जल्दी जल्दी रस्म अदा करके पास करनेकी चिन्तामें लोग लगे हुए थे। युद्धके लिए सैनिकोंकी आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जाती थी। सरकार चाहती थी कि अट्ठारहसे पचास वर्ष तककी अवस्थाके सब लोग और पचपन वर्षतककी अवस्थाके कुछ विशिष्ट योग्यता तथा शिक्षाप्राप्त लोग सैनिक सेवामें लिये जा सकें, पहले कुछ विशिष्ट नियमोंके अनुसार जो लोग सैनिक सेवा करनेसे मुक्त हो सकते थे, वे आगे मुक्त न हो सकें और सम्राट्को इस बातका अधिकार प्राप्त हो जाय कि वे इस आश-

गवर्नमेण्टका यह भी विचार था कि युद्धके दो वर्ष वाद तक आयर्लैण्डके आयात-सम्बन्धी करों तथा आवकारी पर ब्रिटिश पार्लमेण्टका पूरा पूरा अधिकार रहे और ज्यों ही आयरिश पार्लमेण्ट स्थापित हो त्यों ही एक सयुक्त एक्सचेकर बोर्ड इस वातका निश्चय करनेके लिए स्थापित हो कि आयर्लैण्डकी वास्तविक आय क्या होनी चाहिए, और तब इस वातकी जॉचके लिए एक रायल कमीशन नियुक्त हो कि आयर्लैण्ड कितना धन प्रतिवर्ष साम्राज्य सरकारको साम्राज्यसम्बन्धी व्ययके लिए दिया करे और दोनोंका आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध किस प्रकारका हो। पुलिस और डाक-विभागको भी सरकार युद्ध-कालतक अपने ही अधिकारमें रखना चाहती थी। इन बातों पर कनवेनशनमें बहुत कुछ वादविवाद हुआ था और कुछ लोगोंने अपनी अपनी सम्मतिके अनुसार इस सम्बन्धमें भिन्न भिन्न प्रस्ताव उपस्थित किये थे। पर उनमेंसे लार्ड मेकडानलका प्रस्ताव कनवेनशनको अधिक पसन्द आया, क्योंकि उसमें मि० लाइड जार्ज तथा सरकारकी मुख्य मुख्य वातोंका समावेश होगया था। तदनुसार कनवेनशनने निश्चित किया कि आवकारी और बाहरसे आनेवाले माल पर महसूल लगानेका अधिकार अभी तो साम्राज्य सरकारको ही रहे, पर उनके सम्बन्धकी सब बातोंका अन्तिम निर्णय युद्ध समाप्त होनेके सात वर्षके अन्दर ही हो जाय, ग्रेटब्रिटेनके व्यापारमें किसी प्रकारकी वाधा न हो इसके लिए दोनों देशोंमें मुक्तद्वार या स्वच्छन्द वाणिज्य होता रहे, युद्धकालमें पुलिस और डाक-विभाग पर आयरिश तथा साम्राज्य दोनों सरकारोंका सयुक्त अधिकार रहे, और सयुक्त एक्सचेकर बोर्ड तो बने पर रायल कमीशनकी नियुक्ति न हो। अलस्टर यूनियनिस्टोंने इस सम्बन्धकी अनेक बातोंको अस्वीकृत किया और उनके विषयमें अपनी स्वतत्र रिपोर्ट दी। कुछ नेशनालिस्टोंका कहना था कि इम्पीरियल पार्लमेण्टको

इस बातका अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह आयर्लैण्डके लिए अनिवार्य्य सैनिक सेवाका विधान करे। पर कुछ नेशनलिस्टोंने कहा कि नहीं, इस कठिन समयमें हमें साम्राज्य-सरकारकी धन और जनसे कुछ सहायता करनी चाहिए। देश-रक्षा और पुलिस-सम्बन्धी जो सब कमेटी नियुक्त हुई थी उसने अपनी रिपोर्टमें कहा था कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य मिल जाय तो उस दशामें बिना आयरिश पार्लमेण्टकी स्वीकृति और सहायताके आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्तीका कानून जारी न हो सकेगा। आगे बढ़नेसे पहले इस अवसरपर इस रिपोर्टके सम्बन्धमें हम केवल दो बातें बतला देना चाहते हैं। एक तो यह कि कनवेनशनकी बैठक आरम्भ होनेसे पहले आयरिश लोगोंमें जो मत भेद था, वह मत-भेद कनवेनशनकी रिपोर्टतकमें बना रहा। और दूसरी बात यह कि कुछ तो युद्धके कारण और कुछ इस मत-भेदके कारण कनवेनशनकी स्वराज्य-सम्बन्धी अधिकारोंकी माँगें अनेक अशोंमें घट गईं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं इस रिपोर्टके आधार पर आयर्लैण्डको मिलनेवाला स्वराज्य प्राय अधूरा ही ठहरेगा—उससे नेशनलिस्टोंकी उच्चाकाक्षाओंकी पूर्त्ति नहीं होगी। इसी बीचमें (अप्रेल १९१८ के आरम्भमें) हाउस आफ कामन्समें जन-बल सम्बन्धी बिल पर विचार हो रहा था। विचार क्या हो रहा था, उस बिलको जल्दी जल्दी रसम अदा करके पास करनेकी चिन्तामें लोग लगे हुए थे। युद्धके लिए सैनिकोंकी आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जाती थी। सरकार चाहती थी कि अट्ठारहसे पचास वर्ष तककी अवस्थाके सब लोग और पचपन वर्षतककी अवस्थाके कुछ विशिष्ट योग्यता तथा शिक्षाप्राप्त लोग सैनिक सेवामें लिये जा सकें, पहले कुछ विशिष्ट नियमोंके अनुसार जो लोग सैनिक सेवा करनेसे मुक्त हो सकते थे, वे आगे मुक्त न हो सकें और सम्राट्को इस बातका अधिकार प्राप्त हो जाय कि वे इस आज्ञा-

यकी एक घोषणा प्रचारित कर दें कि इस जातीय सकटके समय कोई मनुष्य सैनिक सेवासे मुक्त न हो सकेगा—सबके लिए सैनिक सेवा अनिवार्य्य हो जाय। ९ अप्रैलको मि० लाइड जार्जने हाउस आफ कामन्समें युद्धकी तत्कालीन स्थिति तथा अन्यान्य अनेक वातोंके सम्बन्धमें एक बहुत बडा व्याख्यान दिया था जिसमें उक्त जन बल-सम्बन्धी बिल पर भी कुछ बातें कही थीं और उनके स्वीकृत होनेकी आवश्यकता तथा लाभ बतलाये थे। जिस समय आयर्लैण्डका जिक्र आया और उन्होंने कहा कि ऐसे अवसर पर आयर्लैण्डको अलग छोड देना और उससे जन-बलकी सहायता न लेना न्याय-संगत न होगा उस समय पार्लमेण्टके आयरिश सदस्योंने अपना असन्तोष और अस्वीकृति प्रकट की थी। मि० लाइड जार्जने कहा था कि—"हाउस आफ कामन्समें आजतक होमरूलसम्बन्धी कोई ऐसा प्रस्ताव उपस्थित नहीं हुआ, जिसमें जल तथा स्थल-सेनासम्बन्धी पूर्ण अधिकारोंसे साम्राज्यकी पार्लमेण्टको वचित रखनेकी बात कही गई हो, इसलिए इस नये बिलसे जातीय अधिकारों पर किसी प्रकारका आक्रमण नहीं होता। इस युद्धके साथ इग्लेण्डका जितना सम्बन्ध है आयर्लैण्डका भी उसके साथ उतना ही बल्कि उससे भी कुछ बढकर सम्बन्ध है। युद्धके आरम्भमें आयर्लैण्टने अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट की थी। अमेरिका भी युद्धमें सम्मिलित है और आयर्लैण्डकी अपेक्षा अमेरिकाके सयुक्त राज्योंमें अधिक आयरिश निवास करते है, जो सबके सब वहाॅं सैनिक सेवा करनेके लिए बाध्य है। इसी प्रकार ग्रेटब्रिटेन और कनाडामें रहनेवाले आयरिश लोग भी सैनिक सेवाके लिए बाध्य है। एक छोटेसे कैथोलिक देश (बेलजियम) की स्वतत्रताकी रक्षाके लिए इंग्लैण्ड, वेल्स और स्काटलेण्डके १८ से ५० वर्ष तकके व्याहे और बालबच्चेवाले लोग तो सेनामें ले लिये जायॅं और २० से २५ वर्ष तकके आयरिश सेनामें भर्त्ती होनेसे बच जायॅं,

यह अनुचित और अन्याय ही है।" आदि आदि बातें कहकर मि० लाइड जार्जने कहा कि इसी लिए आयर्लैण्डमें भी उन्हीं शर्तों पर मिलिटरी सरविस एक्ट (Military Ser vice act) का व्यवहार करनेका प्रस्ताव किया जाता है जिन शर्तों पर ब्रिटेनमें उसके व्यवहृत होनेकी बात है। साथ ही आयर्लैण्डवालोंको सन्तुष्ट करनेके लिए उन्होने यह भी बतला दिया कि सरकार चाहती है कि पार्लमेण्टसे तुरन्त आयरिश होमरूल बिल पास करनेके लिए कह दिया जाय। इस पर आयरिश मेम्बरोंने बहुत शोर मचाया और कहा—'रहने दीजिए'। मि० लाइड जार्जने यह भी कह दिया कि होमरूल और अनिवार्य्य सैनिक सेवाको एक दूसरे पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। दोनो पर अलग अलग और उनके महत्त्वके अनुसार विचार होना चाहिए। पर आयरिश लोग चिल्लाते ही जाते थे और कुछ तो यहाँतक कहते थे कि—'दोनोंको रहने दीजिए।' कनवेनशनकी रिपोर्टके सम्बन्धमें उन्होंने यह भी बतला दिया था कि यद्यपि वह रिपोर्ट बहुमतसे तैयार हुई है तथापि उससे भली भाँति यह सिद्ध नहीं होता कि सब दलोंमें पूरा समझौता हो गया है, इसी लिए उन्होंने यह भी बतला दिया कि इस सम्बन्धमे भविष्यमें क्या होना चाहिए। उन्होंने कहा कि कनवेनशनकी रिपोर्टके आधार पर पार्लमेण्टके सामने स्वय सरकारको ऐसे प्रस्ताव उपस्थित करने चाहिए जो कि बिना किसी भारी विरोध या आपत्तिके स्वीकृत हो जायँ। सरकार शीघ्र ही ऐसा मसौदा पार्लमेण्टमें उपस्थित करेगी और उसको शीघ्र पास कर देनेकी सम्मति भी उसे देगी। जिस समय बहुतसे आयरिश युवक रणक्षेत्रमे लडते हों उस समय उनके मनमें यह भाव उत्पन्न होना चाहिए कि वे अपने देशके बाहर उस सिद्धान्तकी स्थापनाके लिए नहीं लड रहे हैं जो स्वय उन पर प्रयुक्त नहीं हुआ है। इस पर आयरिश दलने खूब तालियाँ पीटकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी।

उसी अवसरपर मि० डिलनने जो स्वर्गीय मि० जान रेडमडकी +मृत्युके उपरान्त आयरिश दलके नेता हुए हैं, खडे होकर भरी पार्लमेण्टमें कह डाला कि आयर्लैण्डमें सरकारका जवरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करना पागलपनका काम है। उसी समय उन्होंने यह भी प्रस्ताव किया था कि यह जन-वलसम्वन्धी विल अभी स्थगित कर दिया जाय, परन्तु उनके पक्षमें केवल ८५ मत आये और विपक्षमें ३०१ मत रहे, जिससे वह स्थगित न हो सका। तात्पर्य यह कि विना स्वराज्यका निपटारा हुए आयरिश लोग जवरदस्ती भर्त्तीका विल स्वीकृत करनेके लिए तैयार नहीं थे। मजदूर दलने भी स्पष्ट कह दिया था कि आयर्लैण्डको विना स्वराज्य दिये वहाँ कभी जवरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी नहीं करना चाहिए। जिस समय पार्लमेण्टमें जन-वल-विल पर वादविवाद हो रहा था, उस समय मि० डिलनने यह भी प्रस्ताव किया था कि इस विलमेंसे आयर्लैण्ड शब्द निकाल दिया जाय, परन्तु प्रधान मन्त्री मि० लाइड जार्जने इसके उत्तरमें कहा था कि आयर्लैण्डमें जवरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करनेसे पहले ही होमरूल विल पास कर दिया जायगा। इसपर मि० हीलीने प्रश्न किया कि हाउस आफ लार्ड्सने आयरिश होमरूल विल अस्वीकृत कर दिया तो क्या उस दशामें मन्त्रिमडल इस्तीफा दे देगा ? उत्तरमें मि० वार्नेसने

+ मि० जान रेडमड व्रिटिश पार्लमेण्टमें आयरिश नेशनालिस्ट दलके प्रधान नेता थे। सन् १९१२ वाला आयरिश होमरूल विल पार्लमेण्टमे उन्हींके अविश्रात परिश्रम और प्रयत्नसे पास हुआ था। आयरिश कनवेनशनमें सब दलोंको मिलाने और भावी होमरूलकी स्कीम तैयार करनेमें भी ये ही अग्रगण्य थे। ये स्वराज्यके कट्टर पक्षपाती होनेके अतिरिक्त साम्राज्यके भी कट्टर भक्त थे और आयर्लैण्डको साम्राज्यसे कभी अलग नहीं करना चाहते थे। इनकी मृत्युसे जो ६ मार्च १९१८ को हुई, आयर्लैण्डकी वहुत वडी जातीय और राजकीय हानि हुई है।

कहा कि हाँ यदि हाउस आफ लार्डसने होमरूल बिल अस्वीकृत कर दिया तो हम लोग इस्तीफा दे देंगे। इसी अवसर पर प्रधान मन्त्री मि० लाइड जार्जने और भी कई महत्त्वपूर्ण बातें कहीं थीं, जिनसे सिद्ध होता था कि विशेषत अमेरिकाकी प्रसन्नताके लिए आयर्लैण्डको होमरूल देना और भी आवश्यक था। उन्होंने कहा था कि अमेरिकामें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी हो गया है और अमेरिकन सेना हम लोगोंकी सहायताके लिए आ रही है। ऐसी दशामें यदि हम भी अपने देशमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी न करें तो यह बात ठीक न होगी। साथ ही अमेरिकाका भी यह मत है कि आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करनेसे पहले उसे स्वराज्य दे देना चाहिए। यद्यपि अपने देशके आन्तरिक शासन और प्रबन्धके सम्बन्धमें अमेरिकाको हम पर आज्ञा चलानेका अधिकार नहीं है, तथापि राष्ट्रपति विलसनका मत है कि यदि इस समय आयर्लैण्डको स्वराज्य दे दिया गया तो अमेरिकन लोग सन्तुष्ट हो जायँगे और हमारे युद्ध-सम्बन्धी कार्योंमें सुगमता हो जायगी। इसी लिए हम लोग होमरूल बिलको युद्धकी समाप्तिका एक साधन समझते हैं और आयर्लैण्डको होमरूल देना चाहते हैं। यदि इस समय आयरिश लोग यह होमरूल बिल स्वीकृत न करेंगे तो उसके कारण जो खराबी होगी उसकी जवाबदेही उन्हीं लोगों पर रहेगी। बिना स्वराज्य दिये आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करना अन्याय ही है। सब लोगोंको सन्तुष्ट करनेके लिए हम आयर्लैण्डको स्वराज्य भी देंगे और वहाँ जबरदस्ती भर्त्तीका कानून भी जारी करेंगे।

तात्पर्य यह कि उस समय इग्लैण्डको महासमरके लिए जन-बलकी बहुत बढ़ी आवश्यकता थी, इस लिए उसने आठ दस दिनके अन्दर ही कामन्स तथा लार्डस दोनों सभाओंमें जन-बल-बिल पास कर डाला

और सम्राट्की स्वीकृतिसे वह कानून भी बन गया। उस समय आयर्लैण्डके सम्बन्धमें दो कठिनाइयाँ उपस्थित थीं। एक तो यह कि यदि उसे स्वराज्य न दिया जायगा तो उससे जबरदस्ती जन-बलकी भी सहायता न ली जा सकेगी, और दूसरी यह कि उसे स्वराज्य न देनेसे अमेरिका भी असन्तुष्ट होगा और युद्धमें यथेष्ट सहायता न देगा। यहाँ तक कि मंत्रिमण्डलकी ओरसे कामन्स सभामें कह दिया गया था कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य न दिया जायगा तो अमेरिकासे यथेष्ट सहायता नहीं मिलेगी। इसके अतिरिक्त स्वयं ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अनेक बार कह चुका था कि यह महासमर छोटे बडे देशों तथा जातियोंकी स्वाधीनताकी रक्षा और वृद्धि आदिके लिए हो रहा है। ऐसे समयमें यदि इग्लेण्ड अपने घरमें ही आयर्लैण्डको स्वराज्य न देता तो बहुत सम्भव था कि अमेरिका समझ लेता कि इग्लेण्ड हमें धोखेमें डालकर अपना काम निकाल रहा है। इसी लिए प्रधान मन्त्री मि० लाइड जार्जने निश्चित किया कि जहाँ तक शीघ्र हो सके, आयर्लैण्डको स्वराज्य दे ही देना चाहिए। ऐसे अवसर पर अलस्टरवालोंके नेता सर एडवर्ड कारसन भी यह समझकर स्वराज्यके पक्षमें हो गये कि स्वराज्यसे हमारा चाहे उतना अधिक हित न हो, पर तो भी उससे साम्राज्यका बहुत कुछ हित होगा और साथ ही आयर्लैण्ड पर जर्मनीका कोई चक्र नहीं चल सकेगा। आदि आदि कई कारणोंसे इस समय इंग्लैण्डके राजनीतिज्ञ जहाँ तक शीघ्र हो सके, आयर्लैण्डको स्वराज्य दे डालना चाहते हैं। कनवेनशनकी रिपोर्टके आधार पर होमरूल-बिलका मसौदा तैयार करनेके लिए एक कमेटी बनाई गई है, जिसमें निम्नलिखित सज्जन सम्मिलित हैं —मि० वाल्टर लाग, मि० चेम्बरलेन, मि० ड्यूक, सर जार्ज केव, लार्ड कर्जन, डा० एडिसन, मि० फिशर, मि० गार्डन, मि० ह्यूवर्ट, मि० बार्नेस और जनरल स्मट्स। यह कमेटी बहुत शीघ्रता और तत्प-

रतासे अपना काम कर रही है और आशा है कि दस-पाँच दिनके अन्दर ही पार्लमेण्टमें भी आयरिश होमरूल बिल उपस्थित होगा। आशा है यह बिल किसी न किसी प्रकार पास हो ही जायगा और उसके अनुसार शीघ्र ही आयर्लैण्टको स्वराज्य भी मिल जायगा। यह भी प्राय निश्चय हो चुका है कि जब तक आयर्लैण्डको स्वराज्य न दे दिया जाय तब तक वहाँ जबरदस्ती भर्तीका कानून भी जारी न किया जाय।

अब अपने देश भारतवर्षको भी लीजिए। भारत-मंत्री मि० माटेगू भारत आये और कई महीने तक यहाँ रहकर यहाँके भिन्न भिन्न वर्गोंकी बातें सुनकर और भारतसरकारसे परामर्श करके इंग्लैण्ड लौट गये। यहाँ उन्होंने अपने श्रीमुखसे एक भी शब्द नहीं निकाला, जिससे भारतवासियोंका थोडा बहुत सन्तोष होता। उलटे भारतवर्षसे स्वराज्यका जो डेपुटेशन विलायत जा रहा था उसे अँगरेजी समर मंत्रीमण्टलने मार्गमेंसे ही लौटा दिया। केवल इतना ही नहीं जिस विलायती कम्यूनिकमें उक्त समर-मन्त्रिमण्डलकी भारतीय स्वराज्य-डेपुटेशनके विलायत आनेके सम्बन्धमें मनाहीकी आज्ञा छपी थी, उसका स्वर इतना कर्कश और सहानुभूतिरहित था कि उसके सम्बन्धमें इस देशके समझदार निवासियोंको अपना असन्तोष और दु:ख प्रकट करने की आवश्यकता पडी। गत अप्रैल मास (१९१८) के अन्तमें दिल्लीमें जो युद्ध-महासभा हुई थी उसमें श्रीयुक्त खापर्डेने स्वराज्य सम्बन्धी जो प्रस्ताव उपस्थित करना चाहा था उसे भारतीय स्वराज्यके बहुत बड़े पक्षपाती बडे लाट लार्ड चेम्सफोर्ड तकने अस्वीकृत कर दिया। तात्पर्य्य यह कि अभीतक भारतवासी अपनी भावी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें बिलकुल अन्धकारमें ही पडे हुए हैं। अभीतक उन्हें कोई विशेष सन्तोषजनक और उत्साहवर्द्धक बात दिखाई या सुनाई नहीं दी है। बहुतसे भारतवासी

और सम्राट्की स्वीकृतिसे वह कानून भी बन गया। उस समय आयर्लैण्डके सम्बन्धमें दो कठिनाइयाँ उपस्थित थीं। एक तो यह कि यदि उसे स्वराज्य न दिया जायगा तो उससे जबरदस्ती जन-बलकी भी सहायता न ली जा सकेगी, और दूसरी यह कि उसे स्वराज्य न देनेसे अमेरिका भी असन्तुष्ट होगा ओर युद्धमें यथेष्ट सहायता न देगा। यहाँ तक कि मन्त्रिमण्डलकी ओरसे कामन्स सभामें कह दिया गया था कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य न दिया जायगा तो अमेरिकासे यथेष्ट सहायता नहीं मिलेगी। इसके अतिरिक्त स्वय ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अनेक बार कह चुका था कि यह महासमर छोटे बडे देशो तथा जातियोंकी स्वाधीनताकी रक्षा और वृद्धि आदिके लिए हो रहा है। ऐसे समयमें यदि इग्लैण्ड अपने घरमें ही आयर्लैण्डको स्वराज्य न देता तो बहुत सम्भव था कि अमेरिका समझ लेता कि इग्लैण्ड हमें धोखेमें डालकर अपना काम निकाल रहा है। इसी लिए प्रधान मन्त्री मि० लाइड जार्जने निश्चित किया कि जहाँ तक शीघ्र हो सके, आयर्लैण्डको स्वराज्य दे ही देना चाहिए। ऐसे अवसर पर अलस्टरवालोंके नेता सर एटवर्ड कारसन भी यह समझकर स्वराज्यके पक्षमें हो गये कि स्वराज्यसे हमारा चाहे उतना अधिक हित न हो, पर तो भी उससे साम्राज्यका बहुत कुछ हित होगा और साथ ही आयर्लैण्ड पर जर्मनीका कोई चक्र नहीं चल सकेगा। आदि आदि कई कारणोंसे इस समय इग्लैण्डके राजनीतिज्ञ जहाँ तक शीघ्र हो सके, आयर्लैण्डको स्वराज्य दे डालना चाहते है। कनवेनशनकी रिपोर्टके आधार पर होमरूल-बिलका मसौदा तैयार करनेके लिए एक कमेटी बनाई गई है, जिसमें निम्नलिखित सज्जन सम्मिलित है —मि० बाल्टर लाग, मि० चेम्बरलैन, मि० ड्यूक, सर जार्ज केव, लार्ड कर्जन, डा० एडिसन, मि० फिशर, मि० गार्डन, मि० ह्यूवर्ट, मि० बार्नेस और जनरल स्मट्स। यह कमेटी बहुत शीघ्रता और तत्प-

रतासे अपना काम कर रही है और आशा है कि दस-पॉच दिनके अन्दर ही पार्लमेण्टमें भी आयरिश होमरूल बिल उपस्थित होगा। आशा है यह बिल किसी न किसी प्रकार पास हो ही जायगा और उसके अनुसार शीघ्र ही आयर्लैण्डको स्वराज्य भी मिल जायगा। यह भी प्राय निश्चय हो चुका है कि जब तक आयर्लैण्डको स्वराज्य न दे दिया जाय तब तक वहाँ जबरदस्ती भर्तीका कानून भी जारी न किया जाय।

अब अपने देश भारतवर्षको भी लीजिए। भारत-मत्री मि० माटेगू भारत आये और कई महीने तक यहाँ रहकर यहाँके भिन्न भिन्न वर्गोंकी बातें सुनकर और भारतसरकारसे परामर्श करके इग्लैण्ड लौट गये। यहाँ उन्होंने अपने श्रीमुखसे एक भी शब्द नहीं निकाला, जिससे भारतवासियोंका थोडा बहुत सन्तोष होता। उलटे भारतवर्षसे स्वराज्यका जो डेपुटेशन विलायत जा रहा था उसे अँगरेजी समर मत्रीमण्डलने मार्गमेंसे ही लौटा दिया। केवल इतना ही नहीं जिस विलायती कम्यूनिकमें उक्त समर-मन्त्रिमण्डलकी भारतीय स्वराज्य-डेपुटेशनके विलायत आनेके सम्बन्धमें मनाहीकी आज्ञा छपी थी, उसका स्वर इतना कर्कश और सहानुभूतिरहित था कि उसके सम्बन्धमें इस देशके समझदार निवासियोंको अपना असन्तोष और दु ख प्रकट करने की आवश्यकता पडी। गत अप्रेल मास (१९१८) के अन्तमें दिल्लीमें जो युद्ध-महासभा हुई थी उसमें श्रीयुक्त खापर्डेने स्वराज्य सम्बन्धी जो प्रस्ताव उपस्थित करना चाहा था उसे भारतीय स्वराज्यके बहुत बडे पक्षपाती बडे लाट लार्ड चेम्सफोर्ड तकने अस्वीकृत कर दिया। तात्पर्य्य यह कि अभीतक भारतवासी अपनी भावी स्वतंत्रताके सम्बन्धमें बिलकुल अन्धकारमें ही पडे हुए है। अभीतक उन्हें कोई विशेष सन्तोषजनक और उत्साहवर्द्धक बात दिखाई या सुनाई नहीं दी है। बहुतसे भारतवासी

अभी आयरिश स्वराज्यकी ओर टक लगाये है। वे समझते है कि उसके निपटारेके उपरान्त वेचारे भारत पर भी इंगलैण्डकी कृपादृष्टि होगी। मि० वैपुटिस्टाने विलायतसे लिखा है कि जान पडता है कि शीघ्र ही भारतवर्ष के वहुत अच्छे दिन आनेवाले है। मि० माटेगू भी लदन पहुँच गये है और भविष्यमें भारतमें होनेवाले राजनीतिक सुधारोका मसौदा जल्दी जल्दी तैयार कर रहे है। सर सुब्रह्मण्य ऐयरने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रार्थनापत्र अमेरिकाके राष्ट्रपति विलसनकी सेवामें भेजकर उनका ध्यान इस देशकी दशाकी ओर आकृष्ट किया है। वह पत्र अमेरिकाके प्रायः सभी पत्रोंमें और यहॉके भी कई पत्रोंमें प्रकाशित हो गया है। आशा है, उस पत्रसे अमेरिकावालोंके मनमें भारतवासियोंके प्रति भी कुछ सहानुभूति उत्पन्न होगी। अभी हालमें भारत सरकारने भारतीय जनवलका भी अधिक मानमें उपयोग करना विचारा है। उसने निश्चय किया है कि इस वर्ष भारतसे पॉच लाख मनुष्य सैनिक सेवाके लिए लिये जायँगे। आयर्लैण्डवालोंकी तरह भारतवासियोंके मनमें भी यह भाव जागृत करनेकी आवश्यकता हे कि हम लोग विदेशमें उन तत्त्वोंके लिए नहीं लड़ रहे है जो हमारे देशमें प्रयुक्त नहीं हो रहे है, उन्हें भी यह समझानेकी आवश्यकता है कि जिस स्वतत्रताकी स्थापनाके लिए हम लोग अपना रक्त वहा रहे है वह स्वतंत्रता हमें कमसे कम अपने देशमें प्राप्त है। आदि आदि प्राय सभी सयोग अच्छे और स्वराज्यके अनुकूल है। परन्तु फिर भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि भारतको शीघ्र आयर्लैण्डकी ही तरह वहुत वडे वड़े अधिकार मिल जायँगे। क्योंकि स्वय आयर्लैण्डके इतिहाससे ही यह वात सिद्ध है कि प्राय सब वातोंके बिलकुल ठीक हो जाने पर भी ठीक समय पर कभी कभी स्वराज्य-प्राप्तिमें भारी वाधा पड जाती है। भारतके सौभाग्य-सूर्य्यके उदय होनेका यह ठीक अवसर आया है। यदि इस समय वह सूर्य्य उदय हो

जायगा—भारतको यथेष्ट राजकीय अधिकार मिल जायँगे—तो उसमें भारतका जो हित होगा वह तो होगा ही, साथ ही उससे इस समय भी और भविष्यमें भी, स्वय इंग्लैण्ड तथा साम्राज्यका भी बहुत बड़ा हित होगा। भारत-सरीखे विशाल देशसे और नहीं तो कमसे कम जन-बलकी कितनी अधिक सहायता मिल सकती है, यह हर समझदार आदमी खुद समझ सकता है। गत बड़े दिनोंके अवसर पर श्रीमती बीसेन्टने इंग्लैण्डके मजदूर-दलको जो संदेसा भेजा था उसमें उन्होंने कहा था कि यदि भारतको अधिकार मिल जायँगे तो वह स्वय अपनी ही रक्षा नहीं करेगा, बल्कि आस्ट्रेलियाके तटोंकी भी रक्षा कर सकेगा। सर सुब्रह्मण्य ऐयरने राष्ट्रपति विलसनको जो सन्देसा भेजा है उसमें उन्होंने बतलाया है कि यदि भारतवर्षको अधिकार मिल जायँ तो थोड़े ही समयमें भारतमें दसलाख सैनिक तैयार हो सकते हैं। और ये दोनों ही बातें बहुतसे अशोंमें ठीक भी हैं। कौन कह सकता है कि बड़े बड़े अँगरेज राजनीतिज्ञ इन बातोंको मन ही मन न समझते हों और अपनी पुरानी सकुचित नीतिके लिए न पछताते हों? और साथ ही यह भी कौन कह सकता है कि फिर सौ-पचास वर्ष बाद ब्रिटिश साम्राज्य पर इसी प्रकारका और कोई भारी सकट न आ पड़ेगा? और फिर सौ-पचास वर्षोंकी बात जाने दीजिए। भारतमें वर्त्तमान महासमरके लिए सैनिक भर्त्ती करनेका जिन लोगोंको थोड़ा बहुत अनुभव है उनमेंसे कितने आदमी ऐसे समझदार हैं जो यह कह सकते हों कि भारतवासी बिना यथेष्ट अधिकार प्राप्त किये ही कितनी अधिक सख्यामें और वह भी हार्दिक सहानुभूति तथा दृढतापूर्वक मित्रोंका साथ देने और अपना खून बहानेके लिए तैयार हो जायँगे? गत चार पाँच वर्षोंका अनुभव सारे संसारको बतला चुका है कि भारतवासियोंका अविश्वास करना और

उनकी साम्राज्य-निष्ठामें सन्देह करना बिलकुल निरर्थक और मूर्खता-पूर्ण है। आशा है, इस कठिन समयमें अँगरेज राजनीतिज्ञ बुद्धिमत्ता तथा उदारतासे काम लेकर भारतको सदाके लिए ब्रिटिश साम्राज्यका परम प्रिय, सच्चा और विश्वासपात्र साथी तथा सहायक बना लेंगे और अपने स्वराज्य-वादी होनेका संसारको एक और उत्कट तथा ज्वलन्त प्रमाण दिखला देंगे। इन दोनों कामोंके लिए इससे अच्छा अवसर जल्दी हाथ न आवेगा। २३-५-१९१८।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।

हमारे यहाँसे उक्त नामकी एक ग्रन्थमाला निकलती है जिसमें बहुत ही उच्च श्रेणीके उत्तमोत्तम ग्रन्थ निकलते हैं। स्थायी ग्राहकोंको सीरीजके तमाम ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । स्थायी ग्राहक बननेकी प्रवेश फीस आठ आने है जो पहिले जमा करानी पड़ती है। अबतक नीचे लिखे ग्रन्थ निकल चुके हैं —

१–२ स्वाधीनता	२)	१७ दुर्गादास	॥।=)
३ प्रतिभा	१)	१८ बंकिम निबन्धावली	॥।)
४ फूलोंका गुच्छा	॥-)	१९ छत्रसाल	१॥)
५ आँखकी किरकिरी	१॥)	२० प्रायश्चित्त	।)
६ चौबेका चिट्ठा	॥।)	२१ अब्राहम लिंकन	॥=)
७ मितव्ययता	॥।=)	२२ मेवाड़पतन	॥।)
८ स्वदेश	।=)	२३ शाहजहाँ	॥।=)
९ चरित्रगठन और मनोबल	=)	२४ मानव-जीवन	१।=)
१० आत्मोद्धार	१)	२५ उस पार (नाटक)	१)
११ शान्तिकुटीर	॥।)	२६ ताराबाई (पद्य नाटक)	१)
१२ सफलता	॥=)	२७ देशदर्शन	३)
१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर	॥।)	२८ हृदयकी परख (उपन्यास)	॥।=)
१४ स्वावलम्बन	१।)	२९ नव निधि (गल्पगुच्छ)	॥।=)
१५ उपवासचिकित्सा	॥।)	३० नूरजहाँ	१)
१६ सूमके घर धूम	=)	३१ आयर्लेण्डका इतिहास	१॥।=)
		३२ शिक्षा (निबन्धावली)	॥=)